राजस्थान प्रकाशन, जयपुर

आधुनिक फलोत्पादन

रामअवतार पोरवाल
एम०एस-सी०एजी०, बी०एड० (कृषि)

अनुक्रमणिका

खण्ड (अ) फल-उत्पादन

अध्याय 1

फल व्यवसाय–स्थिति तथा महत्व

प्राचीनकाल से ही भारत में उद्यान-कला पूर्ण विकसित थी जिसका विवरण संस्कृत के प्राचीन साहित्य-उपवन विनोद, विष्णु धर्मोत्तर, नीतिसार, अग्निपुराण, पाराशर-संहिता, केदार कल्प आदि विविध ग्रन्थों में पर्याप्त मात्रा में मिलता है। उस काल में फल-फूल हमारी संस्कृति के अभिन्न अंग थे। इनका प्रचुर मात्रा में उत्पादन तथा उपयोग गौरवास्पद समझा जाता था। लगभग दो सहस्र वर्षों पूर्व से ही फल वृक्षों के उत्पादन की विभिन्न विधियों तथा इनको प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों का विस्तृत ज्ञान था। उन दिनों वृक्षों को लगाकर उनकी देखभाल बालकों की भाँति करते थे।

'वृक्षारोपण विधि' पुस्तक में लेखक ने फल-वृक्षों के लैंगिक-अलैंगिक विधियों का विशेष उल्लेख किया। ईसा से 500 वर्ष पूर्व व्यक्तियों को दाब कलम, भेंट कलम तथा कलिकायन विधियों का ज्ञान था।

मुगल शासकों के फल-फूलों के प्रेम के कारण अनेक विश्व प्रसिद्ध उद्यान लगाए जो ब्रिटिश काल तक अच्छी स्थिति में थे। ब्रिटिश काल में यूरोपीय देशों से विभिन्न फल अनन्नास, शरीफा, अमरूद, पपीता, अलूचा आदि का प्रवर्त्तन हुआ। पर्वतीय क्षेत्रों में सेब, नाशपाती, चेरी, आड़ू, अलूचा आदि शीतोष्ण फलों की बागवानी विकसित की गई। हिमाचल प्रदेश के कोटगढ़ क्षेत्र में डेलिसस सेब, मैदान भागों में नीबू वर्ग के माल्टा, ग्रेपफ्रूट आदि का विकास हुआ।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के संस्थापन से देश के विभिन्न राज्यों में फल-अनुसंधान कार्य संगठित किया गया। विभिन्न राज्यों में परिषद की सहायता से क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र मशोबरा (हिमाचल प्रदेश), अबोहर (पंजाब), सहारनपुर (उ० प्र०), काह्किुची (आसाम), पूना व चेपाली (महाराष्ट्र), कोदूर (आंध्र-प्रदेश), सबौर (बिहार) स्थापित किया गया। द्वितीय पंचवर्षीय योजना काल में

स्नातकोत्तर शिक्षा मे 'उद्यान विज्ञान' विभाग प्रारम्भ कर इस दिशा में विशेष कार्य किया। राज्यो में विभिन्न क्षेत्रीय फल अनुसंधान केन्द्र स्थापित कर इस अनुसंधान कार्य को राज्य सरकारों को सौंप दिया। अखिल भारतीय समन्वित फल सुधार योजना के अन्तर्गत विभिन्न विषयो के सहयोग से फल उद्योग की विभिन्न समस्याओं के समाधान हेतु दिल्ली के अलावा हेसरघट्टा (बंगलौर) में केन्द्र स्थापित किया गया। विभिन्न केन्द्रों के अतिरिक्त देश की विभिन्न जलवायु क्षेत्रों में उपकेन्द्र स्थापित किए गए जहाँ पर आम, अंगूर, पपीता, नीबूवर्गीय फल, केला, अनन्नास आदि फलों पर विशेष अनुसंधान हो रहा है।

बेर मे कलिकायन, पुराने फलवृक्षों में शिखारोपण (Top-Work) के काम का मानकीकरण किया गया। बीजू पेड़ों को अच्छी किस्म मे बदलने का कार्य किया गया। फलो के प्रवर्धन की विधियों के अलावा बीमारियों को रोकने के लिए बाग की उचित देखभाल पर विशेष ध्यान दिया गया। अंगूर में पौधा संधानें तथा काट-छांट की विधियो का मानकीकरण किया।

वैज्ञानिक विधियों से फलों को उगाने अनुसंधान का संगठन ठोस हो जो फलोद्यान की विभिन्न समस्याओ का निराकरण कर अच्छी व्यावसायिक किस्मो को विकसित करें, इस पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

राज्य मे बेर, अनार, अंगूर, आंवला, करौंदा, खजूर आदि फलों के अतिरिक्त आम उत्पादन किया जाता है। शुष्क जलवायु होने से जोधपुर केन्द्र पर विशेष अनुसंधान कार्य किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त राज्य के कृषि अनुसंधान केन्द्रो पर 'प्रयोगशाला से खेतो की ओर' योजनान्तर्गत विभिन्न प्रशिक्षण दिया जा रहा है। उत्पादन के साथ इनकी बिक्री व्यवस्था तथा अन्य उत्पाद बनाने के विस्तृत प्रशिक्षण की व्यवस्था सरकार ने की है। राज्य की परिस्थितियों में फलोत्पादन का भविष्य उज्ज्वल है।

अखिल भारतीय समन्वित अनुसधान योजना के अन्तर्गत राज्य के निम्न केन्द्रो पर विभिन्न फलो पर अनुसंधान कार्य किया जा रहा है—

❀ श्री कर्णनरेन्द्र कृषि महाविद्यालय, जोबनेर (जयपुर)–बेर, अनार,
❀ केन्द्रीय शुष्क प्रदेशीय अनुसंधान केन्द्र, जोधपुर–बेर, अनार,
❀ खजूर अनुसधान केन्द्र, बीकानेर–खजूर,
❀ अनुसंधान परियोजना, कृषि महाविद्यालय, उदयपुर–आम, अमरूद,
❀ भारतीय कृषि अनुसंधान उपकेन्द्र–बांसवाड़ा–आम,

इसके साथ चौमूं (जयपुर), डीग (भरतपुर) क्षेत्र मे बेर, छबड़ा (झालावाड़) मे नारंगी, जोधपुर में अनार, गंगानगर में माल्टा, बांसवाड़ा में केला उत्पादन की विस्तृत योजना पर काम हो रहा है जिससे राज्य मे इनका अपना

विशिष्ट स्थाना है ।

फलोत्पादन में आने वाली विभिन्न समस्यायें—रोग कीट, प्रवर्धन, स्थानीय मृदा—जलवायु में की जाने वाली कृषि क्रियाओं आदि का विस्तृत अध्ययन करके उद्यान पालकों को विस्तृत जानकारी प्रदान किए जाने की योजना है जिससे भविष्य में शुष्क राजस्थान में, इन्दिरा गांधी नहर परियोजना एक वरदान सिद्ध होगी तथा लहलहाते सुन्दर उद्यान होंगे ।

फलों का महत्व :

भारतीयों के भोजन मे अनाज-दालों के बाद दूध और इसके बने पदार्थों, शाकों तथा फलों का स्थान आता है । अधिकांश भारतीयों के शाकाहारी होने से शाक तथा फल साधारण जनों के आहार का विशिष्ट अंग बन गए हैं । देश में शाकों-फलों का उत्पादन अपेक्षाकृत काफी कम है । धान्यों तथा शाकों की अपेक्षा फलों से अपेक्षाकृत अधिक उत्पादन आय प्राप्त की जा सकती है जिससे इस क्षेत्र में काफी विकास की संभावना है ।

मानव के दैनिक भोजन में फलो-शाको की मात्रा काफी न्यून (46 ग्राम प्रति व्यक्ति) है । फलों के प्रयोग से पाचनशक्ति की वृद्धि के साथ विभिन्न रोगों से बचाव के साथ स्वास्थ्य में वृद्धि करते है । इनका महत्व निम्नलिखित वर्णन से सुस्पष्ट होता है—

कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrates)—ये शरीर को शक्ति एवं ताप प्रदान करते हैं । इनके अभाव से दुर्बलता तथा शक्ति हीनता आ जाती है ।

विभिन्न प्रकार के ताजे फलों, खजूर, छुहारा, चीकू, किसमिस, केला आदि फलों से प्राप्त होता है ।

प्रोटीन (Protien)—यह शरीर वृद्धि के साथ स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं जो कैथा, खजूर, काजू, करौंदा, सूखे मेवों से प्रचुरता से मिलते है ।

वसा (Fat)—ये भी शरीर को शक्ति तथा ताप बनाए रखने मे सहायक हैं । इनकी अल्प मात्रा ही काफी शक्ति प्रदान करती है । ये नट (बादाम), अखरोट, काजू, नारियल आदि से मिलती हैं ।

खनिज पदार्थ (Mineral Matters)—शारीरिक रक्षा, हड्डी-दांतो की मजबूती एवं निर्माण, पाचक रसों के बनाने के लिए आवश्यक हैं । शरीर मे लगभग 10 प्रकार के खनिज आवश्यक हैं जिनमें मैग्नीशियम, कैल्सियम, गन्धक, फास्फोरस लोहा, आयोडीन आदि प्रमुख हैं । इनके अभाव से शरीर में कई विकार हो जाते हैं ।

कैल्सियम—संतरा, नीबू, मौसम्बी, अंजीर, लोहा, फास्फोरस—खजूर, करौंदा, पपीता, आम आदि फलो से प्रचुर मात्रा मे मिलता है। विविध फलों से अन्य खनिज प्राप्त हो जाते हैं।

विटामिन (Vitamins)—स्वास्थ्य रक्षा में इनका विशेष महत्व है। इनकी कमी से स्वस्थ जीवन असंभव-सा है। ये कई प्रकार के होते हैं।

विटामिन 'ए'—यह केरोटिन के रूप में मिलता है। इसकी कमी से रतौंधी आँखो का दुखना, नवजात की वृद्धि रुकना आदि व्याधियाँ हो जाती हैं। यह आम, पपीता, खजूर, नारंगी, कटहल आदि मे प्रचुर मात्रा में मिलता है।

विटामिन 'बी-$_1$'—इसे 'थायमिन' कहते हैं। इसकी कमी से बेरी-बेरी रोग, लकवा होना, भूख मे कमी, शरीर भार तथा तापमान कम हो जाता है। काजू, केला, अंगूर, सेव, नारंगी, खुबानी आदि फलों से प्राप्त होती है।

विटामिन 'बी-$_2$'—इसे 'राइबोफ्लोबिन' कहते हैं। इसकी कमी से भार में कमी, भूख न लगना, गला सूखना, आँखों का लाल होना आदि रोग हो जाते हैं। इसकी पूर्ति लीची, अनन्नास, अनार, कैथा आदि से होती है।

विटामिन 'सी'—इसे 'एस्कार्बिक अम्ल' कहते हैं—कमी से स्कर्वी, दाँतों का क्षय होना, त्वचा रुखता, शक्ति में कमी आदि विकार हो जाते हैं जो आंवला, अमरूद, संतरा, नीबू, अनन्नास, चकोतरा, सेव, आदि फलों में मिलते हैं।

फलो के पोषणिक महत्व के अतिरिक्त अन्य महत्व भी हैं।

औषधिक महत्व—फल तथा फलो के रस विभिन्न प्रकार के रोग—स्कर्वी, रतौंधी, श्वासरोग, बुखार, रक्त न्यूनता, पेट-विकारों में अति लाभप्रद हैं। बिल्व फल, पपीता पेट रोगो मे लाभप्रद है। मौसम्बी रस, अंगूर कमजोरी दूर करता है। सेव के प्रतिदिन सेवन से चिकित्सक की आवश्यकता नही होती है।

फल वृक्षो की छाल, पत्तो, जड़, फल आदि से विभिन्न औषधियाँ बनाई जाती हैं। हर्र, बहेड़ा, आंवला से त्रिफला चूर्ण, च्यवनप्राश बनाए जाते हैं। अनार से अनारदाना चूर्ण, मुनक्का बुखार मे लाभप्रद हैं। आंवले का मुरब्बा गर्मी को शांत करता है। इस प्रकार फल 'संरक्षी भोजन' कहलाते हैं।

आर्थिक महत्व—फल वृक्षों को उद्यान, खेतों के किनारे तथा घर के आस-पास लगाकर इनसे फसलो की अपेक्षा अधिक आय प्राप्त करते हैं। इनकी लकड़ी-ईंधन, पत्तियो-पशुओ के चारे के काम आता है। उद्यान में फल वृक्षों के बीच सब्जी तथा अल्प कालीन फल फालसा, पपीता, रसभरी आदि उगा सकते हैं। ताजे फल आहार को सन्तुलित बनाते हैं। स्थानीय बाजार में बिक्री के अतिरिक्त फलों आम, सेव, सूखे मेवो आदि का निर्यात कर विदेशी मुद्रा अर्जित करते हैं। प्रतिवर्ष आम के निर्यात मे लगभग 2 करोड़ की विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है।

धार्मिक महत्व—फलों को देवी-देवताओं की पूजा, वैवाहिक तथा त्यौहार के शुभ अवसरों में उपयोग में लाते हैं। बिल्वपत्र एवं फल-शिवपूजन, केला, आमके पत्ते की बन्दनवार, लकड़ी-हवन में काम आती है। इनके अभाव में धार्मिक कार्य नहीं हो पाते हैं।

सामाजिक महत्व—सामाजिक दृष्टि से अतिथि सत्कार, सामाजिक जलसों में अन्य सामग्रियों के साथ फल तथा इनसे बने पदार्थों का उपयोग अनिवार्य माना जाता है। विभिन्न फलों के अचार, पेय पदार्थ के अतिरिक्त ताजे फलों का सेवन एक सामाजिक प्रतिष्ठा का सूचक है।

औद्योगिक महत्व—फलों के परिरक्षण, शीतभण्डारण, अलकोहल निर्माण, रेशम उद्योग में विविध फलों का विशिष्ट महत्व है। पपीता से पपेन प्राप्त किया जाता है जो चर्म उद्योग में प्रयुक्त होता है। नारियल से गिरी तथा तेल जो खाद्य तथा सौन्दर्य प्रसाधनो के निर्माण में काम आता है। रेशे से रस्सियां, कार्पेट आदि का निर्माण होता है। चटाइयां, पंखे, झाडू निर्माण में पत्तों का विशिष्ट योगदान है। फल परिरक्षण में विविध अचार, मुरब्बा, चटनी, सॉस, पानक, डिब्बाबन्दी आदि बनाते हैं। लकड़ी फर्नीचर बनाने में काम आती है।

इन विविध उद्योगों में लाखों व्यक्ति काम में लगे हैं, जो व्यक्तियों को रोजगार प्रदान करने के साथ राष्ट्रीय तथा विदेशी मुद्रा अर्जन के मुख्य स्रोत हैं।

विविध महत्व—फल विभिन्न भोज्य तत्वों के प्रदान करने के साथ भोजन को शीघ्र पचाने में सहयोग करते हैं जिससे ये सभी आयु के व्यक्तियों, बालकों तथा गर्भवती महिलाओं के लिए स्फूर्तिदायक तथा स्वास्थ्यवर्धक हैं। भोजन के अभाव में शरीर को स्वस्थ बनाए रखते हैं जिसमें आम, पपीता, केला, अमरूद, जामुन, फालसा के ताजे फल, सूखे मेवे, काजू, अखरोट, खजूर, काजू आदि का सेवन उत्तम है।

फलों से कई प्रकार के अम्ल मिलते हैं जो शरीर वृद्धि तथा पाचन में सहायक हैं। इनसे भोजन का स्वाद तथा गंध अच्छी हो जाती है।

फलों से प्राप्त रुक्षांश (Bulk) शरीर में पूरे पचे बिना आंतों की मांस-पेशी को सबल बनाते तथा मल बाहर निकालने में सहायक होते हैं।

पर्यावरण सुधार—फलोद्यान वायुमण्डलीय प्रदूषण को ठीक बनाने में सहायक होते हैं। इनकी पत्तियां आदि भूमि में जीवांश पदार्थ की वृद्धि के साथ क्षरण को रोकने में सहायता करते हैं। मानसिक शांति के अतिरिक्त वातावरण को

सौन्दर्यात्मक अभिरुचि प्रदान करते हैं जिसका मानव मन पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. फलोत्पादन व्यवसाय के महत्व एवं इसके प्रसार के बारे में अपने विचारों को लिखिए।
2. मानव आहार में फलों की क्या उपयोगिता है ? वर्णन कीजिए।
3. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—
   (1) पर्यावरण सुधार में फल वृक्षों का योगदान।
   (2) शारीरिक स्फूर्ति के लिए फलों का उपयोग।

———

फलोद्यान के लिए भूमि एवं जलवायु

(Soil & Climate for Orchad)

फलोद्यान के लिए भूमि :

फलोद्यान के अच्छे विकास के लिए भूमि आधारभूत तत्व है। क्योंकि फल वृक्ष स्थाई होते हैं और अपनी वृद्धि एवं विकास के लिए पोषक तत्वों को भूमि से ग्रहण करते हैं। भूमि की उपयुक्तता फल-वृक्षों के विकास तथा अन्य सभी क्रियाओं को प्रभावित करते हैं।

भूमि एक स्थाई तत्व है जिसकी विस्तृत जानकारी सफल उद्यानकर्ता के लिए आवश्यक है। भूमि का निर्माण चट्टानों से हुआ है। चट्टानों की टूट-फूट से पृथ्वी का ऊपरी धरातल सूक्ष्म कण समूहों को ढंक लेता है जिसमें वनस्पति पोषक तत्वों का अभाव होता है क्योंकि ये तत्व पौधों के ग्राह्य रूप में नहीं होते हैं परन्तु विभिन्न प्राकृतिक क्रियाओं के कारण उसकी ग्राह्यता हो जाती है।

प्राकृतिक क्रियाओं के द्वारा निर्मित चट्टानों के चूर्ण की पतली परत पृथ्वी के ऊपरी भाग को ढंकती है और उचित जल और वायु की मात्रा के साथ पौधों के सम्हाले एवं कुछ सीमा तत्व भोजन का अवलम्बन हो, मिट्टी कहलाती है।

भूमि के अंश (Constituents and Soil)—इस प्रकार देखते हैं कि भूमि में चट्टानों के चूर्ण की पर्त के अतिरिक्त कुछ अन्य अवयव मिले होते हैं जिनको भूमि के अंश कहते हैं।

भूमि में मुख्य रूप से चार अंश पाये जाते हैं—

(1) खनिज पदार्थ	(3) जल
(2) जैव पदार्थ	(4) वायु

1. खनिज पदार्थ (Mineral Matters)–चट्टानों का निर्माण विभिन्न खनिज समूहों से होता है और इन्हीं चट्टानों के चूर्ण से भूमि में बनती है। मृदा का ठोस अंश अधिकांश खनिजों से बना होता है जिनमें अनेक तत्व होते हैं। भूमि का लगभग अर्धांश (45 प्रति.) खनिज पदार्थ होता है।

खनिज पदार्थों में फेलसपार 60 प्रति., अभ्रक 7 प्रति., क्वार्ट्ज 12 प्रति; हार्न ब्लैण्ड 17 प्रति. तथा सिलीकेट 4 प्रति. होता है, जो सम्पूर्ण खनिजों का 75 प्रति. होता है।

2. जैव पदार्थ (Organic Matter) पौधों तथा जन्तुओं के अंशों के सड़ने गलने से मृदा उर्वरता बढ़ती है तथा पौधों को भोज्य तत्व प्रदान करते हैं, जैव पदार्थ कहलाता है। इनका लगभग 5 प्रति. भाग होता है।

ये पदार्थ भूमि की उर्वरा शक्ति के आवश्यक अंग हैं जिनके अभाव में भूमि कृषि उपयोग की नहीं रहती है। हर भूमि में इनकी मात्रा समान नहीं होती है। पीट भूमि में जैव पदार्थ अधिक जबकि बलुई भूमि में कम होता है।

3. जल (Water)—मृदा कणों के मध्य रन्ध्राकाशों (Porespace) में जल प्रवेश करके वायु को हटाकर स्थान ग्रहण कर लेता है। यह मृदा के सम्पूर्ण आयतन का लगभग 25 प्रति. होता है। इसमें विभिन्न खनिज तत्व तथा गैसें घुली होती हैं जो पौधों के भोजन के काम आते हैं।

4. वायु (Air)—मृदा कणों के बीच जो रंध्राकाश होते हैं उनमें जल या वायु भरी होती है। वायु का अंश लगभग 25 प्रति. होता है। रन्ध्रों में नाइट्रोजन, आक्सीजन, कार्बन डाई आक्साइड आदि गैसें होती हैं जिनको पौधे तथा मृदा में पाये जाने वाले जीवाणु उपयोग करते हैं जो पौधों की संरचना, विभिन्न क्रियाओं के अतिरिक्त मृदा निर्माण करते हैं।

सभी प्रकार की भूमियों में इन तत्वों का अनुपात समान नहीं होता है बल्कि किसी में खनिज का अंश अधिक तो किसी में जीवांश अधिक होता है। वायु और जल की मात्रा में परिवर्तन शीघ्रता से होता है। जल संतृप्त भूमि में जल भरे रहने से वायु का अंश कम होता है जबकि मृदा के सूखने पर जल की मात्रा कम तथा वायु अधिक होती है जिससे जीवाणुओं की संख्या तथा सक्रियता प्रभावित होती है।

भूमि के प्रकार (Types of Soil) :

भूमि में विभिन्न खनिज पदार्थों के कणों के आकार तथा इनकी प्रतिशतता के अनुपात के आधार पर भूमियाँ कई प्रकार की होती हैं। खनिज पदार्थों तथा जीवांश पदार्थ के आधार पर ही ये भूमि पौधों के लिए अच्छी या बुरी होती है।

देश में पाई जाने वाली भूमियों को कई भागों में विभाजित करते हैं—

1 कंकरीली पथरीली भूमि (Concrate Soil)—ऐसी भूमि पर्वतीय क्षेत्रों मे अधिकता से पाई जाती है जिसमे चिकनी मिट्टी के साथ कंकड़-पत्थर भी मिले होते

हैं। इस भूमि का धरातल असमतल होता है जो फलोत्पादन के लिए बेकार है। ऐसी भूमि से कंकड़-पत्थर निकालने, जंगली लकड़ी लेने, चरागाह के उपयोग में कर सकते हैं।

2. बलुई भूमि (Sandy Soil) – इसे 'भूड़' मिट्टी भी कहते हैं। ऐसी भूमि में चिकनी मिट्टी का अंश कम तथा बालू कण अधिक होने से चिपक बिल्कुल न होती है। भूमि में 32-49 प्रति. रन्ध्र-कूप होने से जल सोखने की शक्ति अधिक परन्तु धारण शक्ति न होने पर जल रिस कर निचली तहों में चला जाता है।

भूमि मे 50 प्रति. मोटी रेत, और पतली रेत 30 प्रति. होती है। रिक्त छिद्र 32·5 प्रति. तक है। इस प्रकार की भूमि उद्यान के लिए विशेष अच्छी नहीं है फिर भी पर्याप्त मात्रा में चिकनी मिट्टी तथा जीवांश खाद मिलाकर कुछ सीमा तक ठीक कर सकते हैं।

3. बलुई दोमट (Sandy Loam)—इस बलुई तथा दोमट भूमि के मध्य की किस्म हैं। इसमें 60-80 प्रति. बालू के कण होते हैं तथा रिक्त छिद्र 34-49 प्रति. तक है। जल संचय शक्ति बलुई की अपेक्षा ठीक है। भूमि में जीवांश खादें मिलाकर शाक-भाजी तथा फल वृक्षों को लगाया जा सकता है।

4. दोमट भूमि (Loam Soil) – यह कृषि के लिए सर्वोत्तम भूमि है। इस प्रकार की भूमि में 40-60 प्रति. रेत तथा चिकनी मिट्टी का भी अंश होता है। जल रोकने की शक्ति अधिक होती है। सभी कृषि क्रियाओं को आसानी से किया जा सकता है। यह विभिन्न फसलों शाक-भाजी उगाने तथा फलोत्पादन के लिए अच्छी है।

5. दोमट मटियार (Clay Loam Soil)—इस भूमि में चिकनी मिट्टी के आने से थोड़ी कठोर हो जाती है। जल रोकने की शक्ति अपेक्षाकृत अधिक होने से जल निकास अच्छा नहीं होता है। भूमि में बालू के 20-40 प्रति. कण होते हैं तथा रन्ध्रकूप 47-10 प्रति. तक होते हैं। पानी रुकने से अम्लीयता पैदा हो जाती है जिसको चूना तथा जीवांश खाद मिलाकर अम्लीय प्रभाव को उदासीन कर सकते हैं। अपेक्षाकृत अधिक जल चाहने वाली फसलें तथा फल-केला आदि उगाते हैं।

6. मटियार भूमि (Clay Loam)—इस प्रकार की भूमि में बालू ›6 प्रति. तक होती है तथा रन्ध्रकूप लगभग 52-94 प्रति. होते हैं। ऐसी भूमि भीगने पर कणों के चिपकने से मुलायम तथा लसदार हो जाती है। रेत की मात्रा काफी कम होती है। सूखने पर मिट्टी कड़ी तथा चटक जाती है। पानी के रुकने पर कीचड़, दलदल हो जाता है। कृषि क्रियाओं के करने में काफी असुविधा होती है।

अतः ऐसी भूमि कृषि योग्य नहीं होती है। पौधों की जड़ें अधिक नहीं फैल पाती हैं और पानी की अधिकता से जड़ें सड़ जाती हैं।

भूमि का फलोत्पादन पर प्रभाव :

भूमि का पौधों से सीधा सम्बन्ध है क्योंकि यह वृक्ष को आधार प्रदान करती है। वृक्षों की जड़ें अधिक गहराई पर जाकर उसे स्थिरता प्रदान करती हैं तथा निचली तहो से जल तथा पोषक तत्वो को घोल रूप में ग्रहण करते हैं जिससे उद्यान की भूमि अपेक्षाकृत गहरी होनी चाहिए। बीच में कोई कठोर, पथरीली तह न होनी चाहिए।

भूमि में किन्ही कारणों से जड़ें गहरी नही जा पाती हैं तो वृक्ष की मजबूती अच्छी नहीं रहती है। साधारण हवा या आँधी उनके उखड़ने की आशंका रहती है।

फलोद्यान की भूमि का तल समतल या अपेक्षाकृत ऊँचा हो जिससे आस-पास का पानी न रुके और भूमि में जल निकास व्यवस्था न करनी पड़े। ऐसी भूमि में, जिसमें जल रुकता है उसको ताप की कमी और वायु संचार नहीं हो पाता है। लाभदायक जीवाणुओं की सक्रियता न रहने से दिए गए जैव पदार्थ पौधों के योग्य नही बन पाते हैं।

भूमि में पर्याप्त मात्रा मे जीवांश पदार्थ हो। ऐसी भूमि का रंग अपेक्षाकृत गहरा होता है तथा भूमि की भौतिक दशा अच्छी होती है। वृक्षों को उचित मात्रा में पोषक तत्वों के मिलने से उनकी वृद्धि अच्छी होती है और फसल अच्छी मिलती है।

फलोत्पादन की दृष्टि से भूमि का तल गहरे के साथ पानी भी अधिक गहराई पर मिलता हो क्योकि तल ऊँचे होने से भूमि में जड़ें गहराई पर न जाकर ऊपर ही रहेंगी और ऐसे स्थानों पर क्षारो की अधिकता होती है और वायु का संचार नही हो पाता है। जिससे पौधे वृद्धि न करके सूख भी जाते है।

अतः यह आवश्यक है कि फलोद्यान के लिए समतल नदियो से लाई मिट्टी से निर्मित मैदान, बलुई दोमट, दोमट भूमि सर्वोत्तम है। विभिन्न प्रकार की मिट्टयो में भिन्न प्रकार के फलों को उगाते हैं। पर्वतीय क्षेत्र की मिट्टी भी फल उत्पादन के लिए काफी अच्छी है क्योकि इसमें नमी पर्याप्त मात्रा में रहती है और फल अच्छी तरह उगाए जा सकते हैं।

फलोत्पादन एवं जलवायु
(Fruit Production and Climate)

फलोद्यान के लिए अच्छी, गहरी, जल निकासयुक्त, उपजाऊ भूमि के साथ

उस स्थान की जलवायु की उपयुक्तता आवश्यक है। भूमि की अपेक्षा जलवायु का फलोत्पादन पर काफी प्रभाव पड़ता है। फलों के लिए निश्चित प्रकार की जलवायु आवश्यक है। इसी कारण निश्चित जलवायु के फल दूसरे स्थान की जलवायु में अच्छी तरह नहीं उगाए जाते हैं। नागपुर क्षेत्र में संतरे, बम्बई क्षेत्र में केला, उत्तरी पर्वतीय क्षेत्र में सेब अधिक फसल देते हैं जबकि ये दूसरे क्षेत्र में कम उपज देते हैं।

जलवायु—यह जल तथा वायु दो शब्दों से मिलकर बना है। जल का अर्थ-आर्द्रता, वर्षा से है और वायु का हवाओं की दिशा, गति, वायुमण्डल की अन्य दशाओं से है जिसके अन्तर्गत तापक्रम भी सम्मिलित है। तापक्रम का सामान्य अर्थ सर्दी एवं गर्मी है। अतः किसी भी स्थान की जल और वायु की सामूहिक स्थिति जलवायु है।

वर्ष के विभिन्न महीनों में किसी स्थान के वायुमण्डल में परिवर्तन की अवस्था, ताप, वातावरण में नमी के परिणाम और वर्षा आदि के निश्चित प्रभाव को जलवायु कहते हैं।

किसी भी स्थान की जलवायु उसकी भौगोलिक एवं अक्षांश देशान्तर रेखाओं में स्थिति, समुद्रतट से दूरी एवं ऊँचाई, पर्वतों की स्थिति, मृदा संरचना, उसका वास एवं वनस्पतियाँ, समुद्री हवा एवं धाराओं आदि से प्रभावित होती हैं। इन सभी का एकाकी तथा सामूहिक प्रभाव उस स्थान पर प्रकट होता है। इसी के अनुसार वहाँ विविध प्रकार के फलों को सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है।

(1) उष्ण प्रदेशीय फल
(2) उपोष्ण प्रदेशीय फल
(3) शीत प्रदेशीय फल।

(1) उष्ण प्रदेशीय फल (Tropical Fruits)—ये प्रदेश भूमध्य रेखा के निकट प्रायः मैदानी क्षेत्र होते हैं जहाँ गर्मी अधिक पड़ने के साथ वर्षा भी अधिक होती है। इस प्रदेश के फल वृक्षों की पत्तियाँ बड़ी होती हैं जो सर्दी में पाई जाती हैं और बसन्त में नई निकलती हैं। गर्मी में ताप 40° सें० ग्रे० भी अधिक पहुँच जाता है। इन फलों को कम तापक्रम वाले प्रदेशों में नहीं उगाया जा सकता है।

मुख्य फल—आम, कटहल, पपीता, केला, नारियल, शरीफा, जामुन, अननास, कोको, कहवा, आदि।

(2) उपोष्ण प्रदेशीय फल (Sub Tropical Fruit)—ये प्रदेश शीत प्रदेशीय तथा उष्ण प्रदेश की अपेक्षा कम ताप वाले हैं जहाँ के पौधे अधिक ताप में मुरझा जाते हैं परन्तु कुछ वृक्ष खजूर अधिक ताप तथा कम वर्षा, शुष्क जलवायु

में सफलता से उगाए जा सकते हैं। वर्षा की अपेक्षाकृत न्यून मात्रा की आवश्यकता होती है परन्तु पौधों की वृद्धि तथा फसल के समय पानी की आवश्यकता रहती है। ये पौधे वर्ष भर हरे रहते हैं।

मुख्य फल—अंजीर, लीची, कमरख, अनार, अंगूर, बेर।

(3) शीत प्रदेशीय फल (Temperate Fruits)—ये स्थान समुद्रतट से 1000-3000 मीटर की ऊँचाई वाले हैं जहाँ की जलवायु अधिकतर ठण्डी रहती है। शीत में ताप जमाव बिन्दु 0° सें० ग्रे० से नीचे तक चला जाता है। वार्षिक वर्षा 125 सें०मी० से भी अधिक होती है परन्तु पर्वतीय क्षेत्र होने से पानी नहीं रुकता है। इस क्षेत्र के वृक्ष एक निश्चित समय तक शीत ऋतु में सुप्तावस्था में रहकर पत्तियों को गिरा देते हैं। गर्मी प्रारम्भ होते ही वृद्धि प्रारम्भ कर देते हैं।

इस प्रकार की जलवायु पर्वतीय क्षेत्रों, कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, अफगानिस्तान आदि में पाई जाती है। इस प्रदेश के फलों को कम वर्षा वाले भागों में सिंचाई व्यवस्था होने पर उगाए जा सकते हैं।

मुख्य फल—सेब, अंगूर, नाशपाती, अखरोट, आलू बुखारा, चेरी, स्ट्राबेरी, आड़ू (Peach), अलूचा आदि।

परन्तु यह विभाजन पूर्णरूप से नहीं किया जा सकता है क्योंकि आम जैसा फल उष्ण और उपोष्ण दोनों जलवायु में पैदा होता है, इसी भाँति आड़ू शीत तथा उपोष्ण जलवायु में पैदा किया जा सकता है।

फलोद्यान पर जलवायु का प्रभाव
(Effect of Climateon Orchad) :

तापमान (Temperature)— सर्वविदित है कि तापमान का फल वृक्षों की वृद्धि तथा फूलने-फलने आदि की विभिन्न क्रियाओं पर प्रभाव पड़ता है। फल वृक्षों का जीवन भी ताप की स्थिति पर सुरक्षित रहता है। इसकी न्यूनता तथा अधिकता पौधों के विभिन्न भागों को नष्ट कर उनको सुखा देता है।

चौड़ी पत्ती वाले सदाबहार वृक्ष उष्ण तथा उपोष्ण प्रदेश में वृद्धि कर सकते हैं जबकि ठण्डी जलवायु को सहन नहीं कर सकते है। इसी प्रकार शीत प्रदेशीय पौधे पतली पत्ती वाले जो सर्दी में पत्तियों को गिराकर सुप्तावस्था में रहते हैं और गर्मी प्रारम्भ होते ही पुन वृद्धि करने लगते हैं।

तापक्रम की मात्रा फूलों के विकास, पराग के फटने, इनकी परिपक्वता, फलों की वृद्धि तथा इनको पकाने के लिए आवश्यक होती है। अधिक ताप होने पर पौधों की कोमल पत्तियाँ, कलियाँ तथा फूलों के वर्तिकाग्र (Stigma) सूख जाते हैं जिससे उत्पादन नहीं मिलता है।

कुछ फल जैसे खजूर गर्म प्रदेशों में सफलता से पैदा होता है। इसके लिए 38° से० ग्रे० तापमान अच्छा रहता है जबकि यह अधिक शीत भी सह सकता है। तापक्रम को साधारणतया व्यवस्थित नहीं किया जा सकता है।

नमी (Moisture)—फल वृक्षों के उचित विकास के लिए उचित तापक्रम के साथ उचित नमी का होना आवश्यक है क्योंकि पौधों के लगाने के बाद उनका पोषण, वृद्धि, मौसम से रक्षा, पुष्पन-फलत आदि सभी क्रियाओं को नमी प्रभावित करती है।

वायुमण्डल में गर्मी, वर्षा तथा सर्दी में नमी की मात्रा भी भिन्न होती है इसी से पौधों की जल की माँग प्रभावित होती है। अधिक तापमान होने पर उत्स्वेदन तथा वाष्पीकरण से अधिक नमी उड़ती है और पौधों में बार-बार सिंचाई करनी होती है। वर्षाकाल में वायु में नमी अधिक होने से उनकी वृद्धि अन्य मौसमों की अपेक्षा सबसे अच्छी होती है परन्तु अधिकता से कुछ फलों में जल की मात्रा बढ़ जाने से इनका स्वाद खराब हो जाता है।

जिन स्थानों पर वर्षा अधिक होती है वहाँ की भूमि में जल भरा रहता है जिससे पौधों की जड़ों के न बढ़ने से वे नष्ट हो जाते हैं और उनका पुष्पन प्रभावित होता है। वर्षा से परागकण धुल जाते है तथा कीटों की उड़ान न होने से पराग नहीं होता है तथा अनेक रोगों के फैलने की आशंका रहती है, इसी से वर्षा का पूरे वर्ष समान वितरण आवश्यक है जिससे पौधों को समय-समय पर पानी मिल जावे। औसत 100 से० मी० वर्षा फलों के लिए उपयुक्त मानी गई है।

आर्द्रता (Humidity)—वर्षा के साथ आर्द्रता भी फलोत्पादन को प्रभावित करती है। यह वर्षा की कमी को तो पूरा करती है परन्तु वर्षा की भाँति लाभ नहीं दे पाती है। वर्षा के साथ ताप अधिक होने से यह लाभकर होती है जबकि आर्द्रता वाले क्षेत्रों मे ताप कम होने से पत्तियों से उत्स्वेदन कम होता है और पौधों को पानी की कम आवश्यकता होती है।

आर्द्रता वाले क्षेत्रों में केला, अनन्नास, जामुन आदि फल अच्छे गुणों के साथ अधिक उपज देते है। अमरूद के लिए आर्द्रता हानिकर है। वर्षा के अमरूद रंग, रूप और स्वाद में अच्छे नहीं होते हैं। अधिक आर्द्रता होने से कीट-रोगों आदि के वृक्षों पर आक्रमण होने की आशंका रहती है।

वायु (Wind)—वायु की गति तथा दिशा दोनो फलों को प्रभावित करता है।

गर्म वायु (Hot ware)—ग्रीष्म ऋतु की गर्म हवा जिसमे नमी कम होती है। छोटे पौधों को अग्रकलिका, पत्तियाँ जल या भुन जाती हैं और बड़े वृक्षों की कोमल पत्तियाँ फल-फलों को झुलसाकर नष्ट कर देती हैं।

हवाओं के तेज चलने पर उत्स्वेदन, वाष्पीकरण की तीव्रता बढ़ जाती है और सभी पौधों को हानि होती है। ये शाखाओं, फलों को तोड़कर गिरा देते हैं, कांटेदार वृक्षों के फल हिलकर नष्ट हो जाते हैं या टूट जाते हैं। जोर की आंधी, तूफान तो फलों के नष्ट करने के साथ वृक्षों को अधिक हानि पहुँचाते हैं वे जड़ समूल उखड़ जाते हैं।

ठण्डी वायु (Cold Wave)—शीत तथा ठण्डे वातावरण की अपेक्षा ठण्डी वायु पौधों पर अधिक प्रभाव डालता है। ठण्डी हवा के चलने से तापक्रम कम हो जाता है जिससे पाले की अपेक्षा अधिक हानि होती है।

पाले की स्थिति में तापमान प्रातः एवं शाम कम रहने के साथ मौसम शांत रहता है परन्तु इसी समय तेज ठण्डी वायु के चलने से यह अधिक हानि पहुँचाती है जो काफी भयानक होती है।

उत्तरी भारत में पश्चिमी अवनमन (Depress on) से ठण्डक प्रभावित होती है जो प्रति सप्ताह भारत में प्रवेश करती है। जब तिब्बत और मंगोलिया में प्रति चक्रवात (Anticyclone) होता है तो उत्तरी भारत व यूरोप में तेज ठण्डी हवायें आती है जो अधिक हानि पहुँचाती है।

ये ठण्डी हवायें छोटे, बड़े पौधों, दोनों को हानि पहुँचाते हैं तथा फसल को भी हानि पहुँचाते हैं।

शीतकाल में ओले पड़ने से पौधो की शाखायें, पत्तियाँ, फल टूटकर नीचे गिर जाते हैं। केले की पत्तियां बुरी तरह प्रभावित होती हैं तथा पपीते के फलों के गिरने तथा पत्तियों के फटने से हानि होती है। ओलो से तापमान के भी कम होने से वृक्षों की दैनिक क्रियायें भी प्रभावित हो जाती हैं और यह स्थिति सभी प्रकार के पौधों के लिए हानिकर होती है।

राजस्थान के कृषि-जलवायु प्रक्षेत्र
(Agroclimatic Zones of Rajasthan) :

राजस्थान का कुल क्षेत्रफल 3,42,23,900 हेक्टेयर (3,42,239 कि.मी.) है। राज्य में विभिन्न प्रकार की भूमि तथा जलवायु पाई जाती है। पश्चिमी भाग विशाल रेगिस्तान तथा दक्षिणी भाग में अरावली की विशाल पर्वतीय मालायें। कुल क्षेत्रफल का 78% भाग कृषि योग्य भूमि होते हुए सिर्फ 44% में ही कृषि होती है इस 44 प्रतिशत भाग में मात्र 17 प्रतिशत भूमि पर ही सिंचाई सुविधा है शेष वर्षा पर निर्भर है। राज्य को निम्न सात प्रक्षेत्रों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

Zone I (A). पश्चिमी शुष्क मैदान (Western Arid region)—भाग में पूरा जैसलमेर जिला, जोधपुर, बाड़मेर जिलों का उत्तरी पश्चिमी भाग,

दक्षिणी बीकानेर, दक्षिणी पश्चिमी चुरू के अतिरिक्त नागौर जिले के पश्चिमी भाग शामिल हैं।

पूरा संभाग रेगिस्तानी जिसमें 10-25 से०मी० से भी कम वर्षा होती है इस क्षेत्र का अन्तिम भाग अन्तर्राष्ट्रीय पाकिस्तानी सीमा तक फैला है। ग्रीष्मकाल में अत्यधिक गर्मी से तापमान 32-48° से० ग्रे० तक पहुँच जाता है।

इसका क्षेत्रफल व 92·2 लाख हेक्टर है। क्षेत्र में बेर, अनार, अंगूर फल उगाए जाते हैं। अनुसंधान कार्य, जोधपुर के केन्द्रीय शुष्क क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र काजरी एवं मण्डोर फार्म पर किया जा रहा है।

Zone I (B). सिंचित उत्तरी पश्चिमी मैदान (Irrigated North Westren Plains) – इस भाग में गंगानगर, इन्दिरा गाँधी नहर के सिंचित भाग जैसलमेर और बीकानेर का पूर्वी भाग है। इस क्षेत्र की मिट्टी, घग्घर नदी की लाई हुई मिट्टी से बनी हुई है। क्षेत्रफल 36·6 लाख हेक्टर है। जहाँ वर्षा में 100-300 मिमी० वर्षा होती है तथा 20·5–42·1° से. ग्रे. ताप हो जाता है। फलों पर अनुसंधान गंगानगर में रहा है। क्षेत्र में खजूर, नींबू वर्गीय फल-माल्टा आदि उगाए जाते हैं।

Zone II (A). अंत:स्रावी जलनिकास से निर्मित मैदान—इस क्षेत्र का अधिकांश भाग लूनी तथा इसकी सहायक नदियों के जल के बहने (Draind) से बना है जिसमें उत्तरी जोधपुर, पूर्वी चूरू, उत्तरी पश्चिमी अलवर, जयपुर, नागौर, सीकर तथा झुन्झुनू जिले की 43·4 लाख हेक्टर भूमि है जिसके पश्चिम में 300 मिमी० वर्षा होती है तथा तापमान 27·5-50·3° से.ग्रे. तक रहता है। क्षेत्र की अधिकांश भूमि बलुआर दोमट है। जल स्तर ऊंचा होने से अम्लीयता पाई जाती है। अनुसंधान कार्य फतेहपुर (सीकर) तथा जोबनेर (जयपुर) केन्द्रों पर हो रहा है। बेर, अनार, आम, खजूर आंवला आदि फल उगाए जाते हैं।

Zone II (B). लूनी नदी से निर्मित मैदान— इस क्षेत्र में पश्चिमी सिरोही पूर्वी बाड़मेर, जोधपुर, अरावली, पर्वतीय माला का पश्चिमी क्षेत्र, पाली आदि जिले की 37·7 लाख हेक्टर भूमि पाई जाती है जहाँ 300-600 मिमी० वर्षा होती है। क्षेत्र के 27% भाग में नहरों से सिंचाई की जाती है। अनुसंधान कार्य सुमेरपुर (पाली) तथा जालोर केन्द्रों पर हो रहा है। आम, पपीता, अनार आदि फल उगाए जाते हैं।

Zone III A. पूर्वी अर्द्ध शुष्क क्षेत्र—इस क्षेत्र का मैदान बनास तथा इसकी सहायक नदियों से बना हुआ है जिससे बलुआर दोमट भूमि पाई जाती है।

है। वार्षिक वर्षा 500-600 मिमी० तथा 22-40·6° से०ग्रे० तापमान रहता है। फलों पर अनुसंधान कार्य दुर्गापुरा (जयपुर) केन्द्र पर हो रहा है। क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के फल उगाए जाते हैं।

Zone III (B). *बाढ़ग्रस्त ढालू पूर्वी भाग*—इस क्षेत्र के मैदान में दक्षिणी पूर्वी अलवर, भरतपुर, धौलपुर तथा दक्षिणी सवाईमाधोपुर जिले का 21·14 लाख हेक्टर क्षेत्र स्थित है जिसका अधिकांश क्षेत्र ढालू होने से अधिक वर्षा होने से जल-मग्न हो जाता है क्योंकि जल-निकास का प्रबन्ध अच्छा नहीं है। मृदा अम्लीय-क्षारीय है फिर भी सभी फसलें उगाई जाती हैं। बेर, पपीता, अमरूद, नीबू आदि फल अधिकता से उगाए जाते है। फल अनुसधान, नोगांव (अलवर) केन्द्र पर किया जा रहा है।

Zone IV (A.) अर्द्ध आर्द्र दक्षिणी मैदान (Semi Arid Southern region)—इस क्षेत्र मे पूर्वी सिरोही, उदयपुर, भीलवाड़ा, चित्तौड़ जिले का 31·8 लाख हेक्टर भाग है। क्षेत्र के पूर्व मे अरावली की पर्वतीय माला, दक्षिण-पूर्व मे बनास तथा दक्षिण में माही नदी स्थित है। इस क्षेत्र मे राज्य की सर्वाधिक वर्षा 500-900 मिमी० तथा तापक्रम 24·2-38 6° से० रहता है। क्षेत्र में आम, केला, अंगूर, अमरूद, नीबू वर्गीय फल, अमरूद आदि फल होते हैं। फल-अनुसधान, उदय-पुर केन्द्र पर किया जा रहा है।

Zone IV (B). आर्द्र दक्षिणी मैदान (Arid Southern region)—इस क्षेत्र का मैदान माही तथा इसकी सहायक नदियों से घिरा हुआ है जिसमे डूंगरपुर, बासवाड़ा, दक्षिणी-पश्चिमी उदयपुर तथा दक्षिणी चित्तौड़गढ जिले का 16·53 लाख हेक्टर भूमि है। उत्तरी भाग में सर्वाधिक वर्षा 700 मिमी. तक होती है। सभाग मे आम, आंवला, पपीता, खजूर आदि फल बहुतायत से पैदा किए जाते हैं। बांसवाड़ा जिले मे केले को व्यावसायिक स्तर पर उगाने के प्रयास किए जा रहे हैं। बांसवाडा के अनुसंधान केन्द्र पर आम पर काम किया जा रहा है।

Zone V आर्द्र दक्षिणी-पूर्वी मैदान (Arid South Eastern region)—इस क्षेत्र मे झालावाड़, कोटा, बूंदी, पूर्वी चित्तौड़, दक्षिणी-पूर्वी टोंक तथा पश्चिमी सवाईमाधोपुर जिले का लगभग 29·13 लाख हेक्टर भूमि है जो चम्बल तथा इसकी सहायक नदियो की लाई अलूवियल मिट्टी से कोटा जिले की, निर्मित भूमि है। क्षेत्र मे 650-1000 मिमी. वर्षा तथा तापमान 24·5-41·5° से.ग्रे. रहता है। कृषि क्षेत्र का 26% भाग नहरो से सिंचित है। राज्य प्रसिद्ध छवड़ा (झालावाड़) सतरा, नारंगी उत्पादन क्षेत्र हैं। विविध प्रकार के फल उगाए जाते है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. फलोद्यान के लिए भूमि आधार है ? भूमि की उपयुक्तता को बताते हुए इस बिन्दु पर विचार लिखिए ?
2. जलवायु फलोत्पादन को किस प्रकार प्रभावित करती है ? वर्णन कीजिए।
3. भूमि एवं जलवायु फल वृक्षों के विकास एवं फलत को प्रभावित करते हैं, विभिन्न कारकों का समाधानों सहित वर्णन कीजिए।
4. निम्न के कारण लिखिए—
   (अ) फल वृक्षों के लिए गहरी, जल निकास युक्त अच्छी भूमि आवश्यक है ?
   (ब) शीत लहर पाले की अपेक्षा अधिक हानिकारक है ?
   (स) वायुरोधी वृक्ष वायु से बचाव करते हैं।
5. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—
   (i) राजस्थान का कृषि जलवायु के आधार पर वर्गीकरण।
   (ii) शीत प्रदेशीय फल।
   (iii) भूमि के अंश।

उद्यान संस्थापन
(Establishing of Orchard)

स्थान का चुनाव—फलोद्यान लगाने से पहिले इसकी योजना पर पूर्ण रूप से विचार कर लेना चाहिये क्योंकि फल वृक्ष दीर्घकालीन होते हैं। जलवायु प्रकृति आधीन है तथा भूमि मनुष्य के आधीन है। उस स्थान की जलवायु में सफलतापूर्वक उगने वाले फल तथा वहाँ की उपयुक्तता का ज्ञान होना भी आवश्यक है। एक प्रसिद्ध अमेरिकी विद्वान का कथन है कि 'सफल फलोत्पादन की कुंजी अन्य दूसरे कारण न होकर मुख्यतः 'स्थान तथा भूमि' हैं। स्थान निर्धारित करने के लिए विभिन्न परिस्थितियों पर ध्यान दिया जाना अति आवश्यक है। अच्छा तो यह होगा कि फल विज्ञान विशेषज्ञ से राय लेने के बाद योजना को अन्तिम रूप दिया जाना चाहिए। अतः निम्न बातों का ध्यान रखना आवश्यक है—

1. भूमि—भूमि बागवानी का आधार है अतः उचित भूमि का चुनाव करना आवश्यक है। बाग के लिए दोमट या बलुई दोमट भूमि सर्वोत्तम रहती है। मिट्टी में जीवांश पदार्थ तथा चूना पर्याप्त मात्रा में होने से फलों के गुण अच्छे हो जाते हैं। मिट्टी की परत 2–2.5 मीटर गहरी होनी चाहिए। इसमें कंकड़ तथा चट्टान की तह नहीं होनी चाहिए। भूगर्भ जल का स्तर भूमि से 2·5-3 मीटर गहरा होना चाहिये तथा जल निकास का प्रबन्ध होना चाहिए। अम्लीय, क्षारीय तथा कंकरीली भूमि बाग के लिए अनुपयोगी रहती है।

2. जलवायु—किसी भी स्थान की जलवायु गर्मी, प्रकाश, नमी, आर्द्रता, ताप, वर्षा, वायु का दाब तथा गति आदि बातों पर निर्भर करती है। जलवायु प्रकृति के आधीन है। अतः बाग की स्थिति निश्चित करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि जो फल हम लगाना चाहते है उसके लिए कैसी जलवायु उपयुक्त है। अतः जिस जलवायु में जो फल के वृक्ष अच्छी तरह लग सकते हैं उन्हें ही उगाना चाहिए। जलवायु के आधार पर फलों को निम्न प्रकार से विभाजित करते हैं—

(1) शीतोष्ण फल सदाबहार फल (Temperate Fruits)—सेब, नाशपाती, आड़ू, अलूचा, बादाम, चेरी, खुबानी, अखरोट, चेस्टनट, स्ट्राबेरी आदि।

(ii) उपोष्ण फल (Sub-tropical Fruits)—शहतूत, जैतून, नींबू प्रजाति के फल, अंगूर, फालसा, लुकाट, अनार, अंजीर, आंवला आदि।

(iii) उष्णफल (Tropical Fruits)—जामुन, आम, अमरूद, करौंदा, खिरनी, जैतून, पपीता, लीची, केला, नींबू प्रजाति के फल, अनन्नास, अंगूर, शरीफा, बेर, कटहल आदि।

सदाबहार फल वृक्ष उष्ण तथा उपोष्ण जलवायु में उग सकते हैं परन्तु ठंडी जलवायु में नहीं। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि पौधों पर पाले का बुरा प्रभाव न पड़े क्योंकि पाला अधिक हानि पहुँचाता है। तेज, गर्म व ठण्डी हवा से भी बचाव के लिए वायु अवरोधों का प्रयोग करते हैं।

3. भूमि का तल—उद्यान वाली भूमि का तल समतल होना चाहिये और चारो ओर की भूमि से ऊँची या नीची न हो। असमतल भूमि मे कृषि क्रियायें करने में असुविधा होती है तथा सिंचाई, निरीक्षण तथा आवागमन में परेशानी होती है।

4. भूमि का मूल्य – नगरों के समीपस्थ 8–16 किमी. के क्षेत्र की भूमि के दाम अधिक होते हैं परन्तु उद्यान नगरों के समीप होने चाहिए। इनके मूल्य अधिक नहीं होने चाहिए।

5. सिंचाई एवं जल निकास—शुष्क स्थान जहाँ वर्षा का पानी वृक्षों की आवश्यकता की पूर्ति नहीं कर पाता है वहाँ कृत्रिम सिंचाई द्वारा पूरा करना पड़ता है। सिंचाई का पानी मीठा, सस्ती दर पर पर्याप्त मात्रा में, वर्ष भर मिलता रहना चाहिए। नगर के गंदे नाले का निकास भूमि के निकट हो तो इसका लाभ उठाया जा सकता है।

सिंचाई के साथ भूमि में अतिरिक्त मात्रा में पानी भरा रहना पौधो के लिए हानिकर है। इससे पौधे सड़ने-गलने लगते हैं। अतः जल निकास का उचित प्रबन्ध होना चाहिए।

6. खाद—भूमि मे पौधो के लिए आवश्यक पोषक तत्व होने चाहिए। तत्व न होने पर भूमि में जांच के अनुसार, फल वृक्ष की आवश्यकतानुसार खाद देनी चाहिए जिससे पौधे समुचित वृद्धि कर सकें। पौधे के फलन के बीच काल में दाल वाली फसलों को बोकर भूमि की भौतिक दशा तथा उर्वरा शक्ति में वृद्धि की जा सकती है।

7. श्रम की उपलब्धता—उद्यान की सफलता सस्ते तथा दक्ष मजदूरो पर भी निर्भर होती है क्योंकि बाग में काम सही समय पर ठीक तरह से होना चाहिए। ये श्रमिक दो प्रकार के होते हैं।

(i) कुशल श्रमिक—वे व्यक्ति जो अपने कार्य में दक्ष हों तथा स्वतन्त्र रूप में बाग के सभी कार्यों को निरीक्षण के अभाव में भी कर सकें। इनकी दरें ऊँची होती हैं।

(ii) अकुशल श्रमिक या बेलदार—ये व्यक्ति कार्य में कुशल नहीं होते हैं बल्कि जो काम बता दिया जाता है उतना ही करते हैं। परन्तु इनकी दरें अपेक्षाकृत कम होती हैं।

नगरों के निकट के श्रमिक बाग तथा खेतों के कार्यों में निपुण नहीं होते हैं बल्कि फैक्ट्री तथा उद्योग में काम करने से इनकी दरें अधिक होती हैं। अतः ग्रामीण श्रमिकों को निरीक्षण में कार्य कराकर कुशल बना लेना चाहिए।

8. बाजार एवं आवागमन की सुविधा— बाग नगर के निकट होने से उत्पादित वस्तुयें तुरन्त बिक्री के लिए भेज दी जाती हैं जिससे वे खराब नहीं होती हैं। नगर तथा बाग के बीच आवागमन के उचित तथा सरल साधन हो। बाग सड़क के पास होने से बाजार की मांग के अनुसार फलो को बिक्री के लिए भेजा जा सकता है।

9. स्थिति—बाग जंगल के समीप नहीं होने चाहिए अन्यथा जंगली जानवरों से काफी हानि होती है तथा सुरक्षा में अधिक व्यय करना पड़ता है। बाग ईंटों के भट्टे के पास होने पर आम के बाग प्रभावित होते हैं।

स्थानीय लोगों की रुचि, सामाजिक सांस्कृतिक स्तर तथा उनकी आदतों का फलों के उत्पादन पर भी प्रभाव पड़ता है। मण्डी तथा भण्डारण के संसाधन होने पर फलो के अधिक उत्पादन को सुरक्षित रखा जा सकता है तथा उन्हें अन्य स्थानों को भेजा जा सकता है।

इन बातो के अलावा अन्य और जो कुछ आवश्यक हो उन सभी को ध्यान में रखकर बाग की भूमि का चुनाव करना चाहिए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. उद्यान स्थापित करने के लिए किन-किन प्रमुख बातों का ध्यान रखा जाता है, वर्णन करो।
2. जलवायु किस प्रकार उद्यान को प्रभावित करता है ?
3. उद्यान किस स्थान पर स्थित हो ?

उद्यान विन्यास
(Layout of Orchard)

प्रारम्भिक तैयारियाँ—भूमि तथा स्थिति के चुनाव के बाद यह आवश्यक है कि भूमि की भलीभाँति तैयारी करनी चाहिए। इसके लिए निम्न प्रारम्भिक तैयारियाँ सम्मिलित हैं—

(अ) भूमि की तैयारी

(ब) वायु अवरोधों का प्रबन्ध

(स) किस्मों का चुनाव

(अ) भूमि की तैयारी—उद्यान लगाने से पूर्व भूमि की तैयारी करना आवश्यक है जिससे पौधों की वृद्धि अच्छी हो तथा भूमि की उर्वरा शक्ति बनी रहे। भूमि तैयारी में निम्न कार्य सम्मिलित हैं—

(i) भूमि को समतल करना

(ii) खाद का प्रबन्ध

(iii) सिंचाई तथा जल निकास का प्रबन्ध

(iv) बाड़ तथा मेड़बन्दी।

(v) भूमि की सफाई और जुताई

(i) भूमि को समतल करना—यथासम्भव उद्यान के लिए समतल भूमि का चुनाव करना चाहिए। असमतल भूमि में जल निकास ठीक नहीं रहता तथा अन्य कृषि क्रियायें अच्छी तरह से नहीं हो पाती हैं।

भूमि के समतल न होने पर एक ओर सम ढाल वाली भूमि काम में लायी जा सकती है। ऐसी भूमि में जल निकास की समस्या नहीं रहती है। ऊँची भूमि की मिट्टी को निचली भूमि में धीरे-धीरे हटाकर एकसार करना चाहिए। अधिक ढाल होने पर पट्टीदार खेत बनाए जा सकते हैं।

(ii) खाद का प्रबन्ध—कृषि वाली भूमि उर्वर होती है, इसमें खाद देने की आवश्यकता नहीं रहती है। बंजर या बेकार भूमि में खाद देना आवश्यक होता है। इसके लिए भूमि की जाँच करना अच्छा रहता है, उसी के अनुसार खाद देनी चाहिए।

(iii) सिंचाई तथा जल निकास का प्रबन्ध—उद्यान के विन्यास से पूर्व पौधों के लिए सिंचाई की व्यवस्था कर देनी चाहिए। बाग में सिंचाई का साधन, विधि तथा उत्थापक व्यवस्था (Water Lifts) आदि निश्चित कर लेनी चाहिए। ये साधन बाग के अन्दर या समीप में होने चाहिए। नहरी क्षेत्रों में पानी संग्रह की व्यवस्था होनी चाहिए।

बाग में कहीं भी वर्षा आदि का पानी जमा नहीं होना चाहिए। इसका भूमि की दशा तथा पौधो की वृद्धि पर बुरा प्रभाव पड़ता है। जल निकास के लिए आवश्यकतानुसार नालियां बना लेनी चाहिए।

(iv) बाड़ तथा मेड़बन्दी—उद्यान के चारों ओर पशुओं के प्रवेश न होने के लिए व्यवस्था होनी चाहिए। इसके लिए निम्न विधियां काम में लायी जा सकती हैं—

(1) झाड़-झंखाड़—उद्यान के चारों ओर कंटीले पेड़ों की टहनियां व झाड़ियो को लगा दिया जाता है जिससे पशुओं तथा व्यक्तियों के प्रवेश में बाधा होती है। यह प्रबन्ध अस्थाई तथा अल्पकाल के लिए होता है।

(2) मिट्टी की दीवाल—उद्यान के बाहर की मिट्टी खोदकर चारों ओर मिट्टी की मेड़ या दीवार बना देते हैं। मिट्टी बाहर नाली बनाकर ली जा सकती है जो जल-निकास के काम आती है तथा नाली से होकर पशु दीवार पार नहीं कर सकते हैं। वर्षा ऋतु में इसकी मरम्मत करना आवश्यक होता है।

(3) पक्की दीवार—यह दीवार पक्की ईंट, चूने, सीमेन्ट से बनाई जाती है जो स्थायी तथा मजबूत होती है। परन्तु बनवाने में अधिक व्यय होता है, दीवार के पास छाया रहने से पौधे ठीक नहीं पनप पाते हैं।

(4) तार लगाना (Wire Fencing)—बगीचे के चारों ओर लोहे के तार लगाना सुरक्षित तथा लाभप्रद रहता है। यह स्थान कम घेरती है। पौधों पर कोई कुप्रभाव भी नहीं पड़ते हैं। इसके लिए सादे, कांटेदार तथा जालीदार तार आदि कोई सुविधानुसार काम में लाए जाते हैं।

(5) झाड़ियां—यह सस्ती, सरल तथा कुशल विधि है। बाग के चारों ओर नाली खोदकर इनके बीज, कलम या पौधे लगा दिये जाते हैं। ये सादा, कांटेदार, फूल व फल देने वाली बौनी तथा लम्बे पौधे हो सकते हैं जिनमें करौंदा, मेंहदी, बबूल, बांस, जंगल जलेबी आदि प्रमुख हैं।

(v) भूमि की सफाई तथा जुताई—भूमि पर उगी अनावश्यक झाड़ियां तथा बेकार के पौधों को जड़ से निकाल कर साफ कर देना चाहिए फिर एक गहरी मिट्टी पलटने वाले हल से जुताई करके देसी हल, हैरो या कल्टीवेटर से कई जुताइयां पाटा लगाकर समतल तथा मिट्टी को भुरभुरा कर देना चाहिए। भूमि से घास-फूस तथा अन्य गन्दगी को दूर कर देना चाहिए।

(ब) वायु-प्रवरोध का प्रबन्ध—जिन स्थानों पर वर्ष के अधिकांश महीनों में तेज, ठण्डी, गरम हवायें चलती रहती हैं तथा मौसम गरम रहता है उनसे बाग के छोटे नाजुक पौधों की रक्षा करना आवश्यक होता है।

बाग की बाड़ के सहारे झाड़ीदार तथा दीर्घजीवी पौधे लगा दिये जाते हैं। जिनको वायु-प्रवरोध कहा जाता है।

जो पौधे वायु-प्रवरोध (Windbreaks) के लिए चुने जायें उनमें निम्न विशेषतायें होनी चाहिये—

1. पौधे शीघ्र बढ़ने वाले हों जिससे ये बाग के अन्य पौधों से बढ़कर अपना सुरक्षा कार्य कर सकें।
2. शीघ्र फैलने वाले हों जिससे शीघ्र फैलकर पक्का और स्थाई प्रवरोध बनावें।
3. झाड़ीनुमा या कांटेदार पौधे बाड़ तथा प्रवरोध दोनों कार्य करते हैं।
4. पौधे सहनशील हों जो अधिक सर्दी, गर्मी, वर्षा, कम खार, पानी तथा देखरेख में वृद्धि कर सकें।

वायु प्रवरोध के लिए बेर, बबूल, कमरख, शहतूत आदि प्रयोग किए जा सकते हैं। ये वृक्ष उत्तर से पूर्व तथा दक्षिण से पश्चिम की ओर लगाये जाते हैं। इनको कई पंक्तियों में उचित दूरी पर लगाया जाता है।

(स) किस्मों का चुनाव—भूमि और स्थिति के चुनाव की भांति फल वृक्षों तथा इनकी किस्मों का चुनाव करना अत्यन्त आवश्यक है। सभी प्रबन्ध अच्छे होने पर यदि पौधों की किस्में अच्छी या उपयुक्त नहीं हैं तो उद्देश्य सफल नहीं हो पाता है। इसलिए भूमि और स्थिति के कारणों को ध्यान में रखते हुए फलों की किस्म निश्चित करनी चाहिए तथा इन फलों की उस क्षेत्र की भूमि तथा जलवायु में होने वाली उपयुक्त किस्म के पौधों का चुनाव करना चाहिए।

2. विन्यास के अंग—उद्यान की प्रारम्भिक तैयारी के बाद वहां योजना के अनुसार कार्य करना चाहिए जिससे उद्यान में सिंचाई, जल-निकास की नालियाँ बनाकर, भूमि को टुकड़ों में बांटना, सड़कें, इमारतें व स्टोर बनाना तथा पौध घर आदि की व्यवस्था करना शामिल है क्योंकि बाग की पूर्ण सफलता सही विन्यास पर निर्भर करती है। इसके बाद ही पौधों के लिये रेखांकन किया जाना ठीक रहेगा। सफल विन्यास के निम्न अंग हैं—

1. बाड़ लगाना—उद्यान की हानिकारक जानवर, चोरों तथा दुश्मनों से बचाव के लिए चारों ओर तार, ईंट, झाड़ियाँ, मिट्टी या अन्य किसी भी प्रकार की उपयुक्त बाड़ की व्यवस्था करनी चाहिये।

2. फाटक—यह उद्यान का सदर द्वार होता है जो मुख्य सड़क पर खुलता

है । यह स्थिति, आर्थिक स्थिति के अनुसार लकड़ी, लोहे की टीन, एंगिल या बांस आदि का बनाया जा सकता है ।

3. सड़कें तथा रास्ते—उद्यान की मुख्य इमारतों तथा स्टोर तक एक चौड़ा, सीधा रास्ता होना चाहिए जो उद्यान के बाहर भी सड़क से जुड़ा हुआ हो । उद्यान के चारों ओर तथा प्रत्येक क्षेत्र तक पहुँचने के लिये उचित आकार के रास्ते होने चाहिए जिससे साधनों को पहुँचाया जा सके ।

4. सिंचाई तथा जल-निकास की नालियाँ—सिंचाई के साधन से योजनानुसार नालियाँ उचित आकार की बनानी चाहिए जिससे पानी प्रत्येक भाग में पहुंच सके । नालियाँ रास्ते के समानान्तर एक ओर बनाना अच्छा रहता है ।

जिन स्थानों पर अधिक वर्षा होती है या पानी भी जमा होता है वहाँ अतिरिक्त पानी को निकालने के लिए जल निकास की नालियाँ बनानी चाहिए ।

5. बाग की क्यारियाँ एवं पौध घर—इतना विन्यास करने के बाद बचे स्थान में फलों व सब्जियों की क्यारियाँ बनाई जाती हैं । इनकी आवश्यकतानुसार लम्बाई व चौड़ाई रखी जा सकती है । बाग में इनकी पौध तैयार करना अच्छा है । इसमें उचित आकार की सिंचाई के साधन व इमारत के समीप सुरक्षित स्थान पौध घर के लिए तय करना चाहिए ।

6. इमारतें—व्यावसायिक उद्यान में उद्यानपाल का कार्यालय, यन्त्र कक्ष, भण्डार तथा सहायकों के लिए इमारतें होनी चाहिए । इमारतें ऐसे स्थान पर बनानी चाहिए जहाँ पर पौधे न लगाने हो । इमारतें सदैव ऊँचे स्थान पर होनी चाहिए जहाँ से पूरा उद्यान दिखाई दे तथा प्रबन्ध अच्छी तरह से किया जा सके ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. उद्यान के लिए भूमि व स्थिति निश्चित हो जाने के बाद किन-किन बातों को अपनाया जाता है ?
2. निम्न क्यों आवश्यक हैं—
   (i) बाड़
   (ii) जल निकास प्रबन्ध
3. (i) सिंचाई की नालियाँ रास्ते के............होना अच्छा है ।
   (ii) उद्यान में अन्य स्थिति की व्यवस्था के साथ............होना आवश्यक है ।
4. संक्षिप्त टिप्पणी लिखो—
   (i) बाड़ प्रबन्ध
   (ii) वायु अवरोध प्रबन्ध ।

वृक्षारोपण की विधियाँ
(Methods of Plantation)

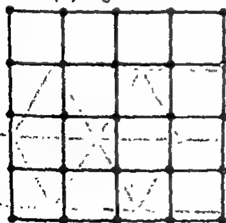
वृक्षों को लगाने से पूर्व उनकी योजना बना लेनी चाहिए, जिसमें पौधों की स्थिति निश्चित करदी जाती है। अच्छी विधि वही है जिससे प्रत्येक वृक्ष की ज तथा तने को पूर्ण विकसित होने के लिए उचित स्थान मिल जावे, तथा इन सम्बन्धित कृषि क्रियायें सरलता से की जा सकें।

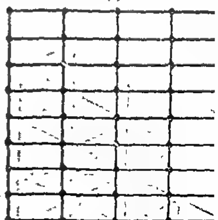
बाग में विभिन्न समय में फलने वाले वृक्षों को अलग लगाना चाहिए क्यों इनकी देखभाल, सिंचाई आदि व्यवस्थायें अलग-अलग करनी होती हैं। बाग सुविधाजनक व्यवस्था हो जाने पर अधिक वृक्षों को लगाया जा सकता है, फिर जहाँ तक संभव हो, वृक्षों को पंक्ति में लगाना चाहिए।

बाग में वायुरोधी वृक्षों से 5 मीटर जगह छोड़कर रेखांकन करना चाहिए इनके तथा फल वृक्षों के बीच एक मीटर गहरी नाली खोद देनी चाहिए जिससे ज का प्रभाव फल-वृक्षों पर न पड़े। इस प्रकार बाड़ से निश्चित दूरी पर आधार रे खींचकर विधियों के अनुरूप रेखांकन करना चाहिए।

फल-वृक्षों को लगाने की निम्न विधियाँ प्रचलित हैं—

(1) वर्गाकार विधि
(2) आयताकार विधि
(3) त्रिभुजाकार विधि
(4) षटभुजाकार विधि
(5) पूरक
(6) तारा विधि
(7) समोच्च विधि


वर्गाकार विधि


आयताकार विधि

(1) वर्गाकार विधि (*Square Method*)—वृक्षों को लगाने की आसा

तथा सर्वाधिक प्रचलित विधि है, इसमें पंक्ति तथा पौधो की दूरी समान होती है। इसमें चार वृक्षों से वर्ग बनता है। एक हैक्टर में 325 पौधे लगते हैं।

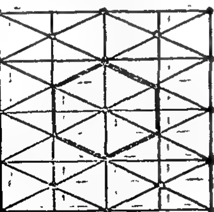
(2) आयताकार विधि (Rectangular Method)—यह वर्गाकार विधि की भांति है परन्तु पंक्ति की पारस्परिक दूरी अधिक होती है जिससे जुताई-गुड़ाई आदि कृषि क्रियाओं में आसानी रहती है। एक हेक्टर में 390 वृक्ष लगाये जा सकते हैं।

(3) त्रिभुजाकार विधि (Triangular Method)—इसमें पौधे त्रिभुज के तीनों कोणों पर लगाये जाते हैं। इसमें दूसरी पंक्ति का बिन्दु पहली पंक्ति के दोनों बिंदुओं के बीच का बिन्दु होता है, इसे समद्विबाहु त्रिभुज विधि भी कहते हैं। इसमें पंक्ति तथा वृक्ष की दूरी अलग-अलग होती है। इस विधि में एक हैक्टर में 312 पौधे लगाये जाते हैं।

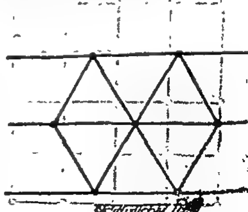
(4) षट्भुजाकार विधि (Hexagonal Method)—यह त्रिभुजाकार विधि का ही रूप है जिसके प्रत्येक पौधे के बीच की दूरी समान होती है। रेखांकन में परेशानी होने से यह विधि अधिक प्रचलित नहीं है।

इसके रेखांकन के लिए आयताकार विधि के अनुरूप पंक्ति में वृक्षों के निशान लगा देते हैं। इसके किनारों पर निश्चित दूरी का चाप लगाकर सामने निशान कर देते हैं, इसको केन्द्र मानकर इसी दूरी का चाप लगाते हैं और इसी चाप से निशान बनाते जाते हैं।

इसमें षटभुज के आकार में 6 वृक्ष लगते हैं और बीच में सातवां पूरक वृक्ष लगता है। वर्गाकार विधि से 15 प्रतिशत अधिक वृक्ष लगते हैं। एक हेक्टर में 375 पौधे लगाये जा सकते हैं। भूमि कम तथा मंहगी होने से यह विधि नगरों के समीप प्रयोग में लानी चाहिए।



त्रिभुजाकार विधि



षट्भुजाकार विधि

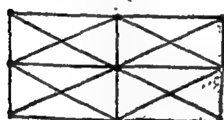
(5) पूरक विधि (Quin cunx Method)—वर्गाकार या आयताकार

विधि से पौधे लगाकर इनके बीच में एक पौधा और लगा दिया जाता है, जिसे पूरक कहते हैं। इससे पौधों के बीच का स्थान कम हो जाता है जिससे कृषि कार्यों में असुविधा होती है। इससे अस्थाई पौधों को लगाते हैं जिससे स्थाई के बढ़ने पर इनको काट देते हैं जैसे आम के बीच पपीता।

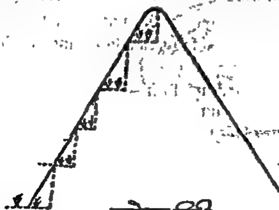
इसमें पौधों की संख्या का निश्चित करना कठिन-सा होता है फिर भी 75 प्रतिशत पेड़ बढ़ जाते हैं।

(6) तारा विधि (Star Method)—यह त्रिभुजाकार विधि का ही सुधरा रूप है। इसमें पौधे से पौधे की दूरी बढ़ा दी जाती है तथा पंक्ति की दूरी अपेक्षाकृत कम कर दी जाती है। इसमें त्रिभुजाकार की तुलना में अधिक वृक्ष लगाये जा सकते हैं परन्तु पौधों के फैलने के लिए उचित स्थान का ध्यान रखा जाना चाहिये। एक हेक्टर भूमि में 425 पौधे लगाये जा सकते हैं।

(7) समोच्च विधि (Contour Method)—यह विधि पर्वतीय स्थानों तथा असमतल और ढलवां भूमि में अपनाई जाती है। इसमें ढाल पर सीढ़ीनुमा पट्टी बनाते हुए वृक्षों को निश्चित दूरी पर लगाते हैं। पौधों के लिए निशान नीचे से ऊपर की ओर लगाते हैं।


तारा विधि


पूरक विधि


समोच्च विधि

वृक्षों की संख्या ज्ञात करना—

आयताकार तथा वर्गाकार विधि से लगे उद्यान के वृक्षों की संख्या निम्न सूत्र से ज्ञात की जाती है—

$$\text{वृक्षों की संख्या} = \frac{\text{क्षेत्रफल (वर्ग मीटर)}}{\underset{\text{(मीटर में)}}{\text{पंक्ति से पंक्ति की दूरी}} \times \underset{\text{(मीटर में)}}{\text{पौधो से पौधो की दूरी}}}$$

त्रिभुजाकार विधि से लगे उद्यान में वृक्षों की संख्या—

$$\text{पौधों की संख्या} = \frac{\text{क्षेत्रफल (वर्ग मीटर)}}{\left(\text{त्रिभुज का क्षेत्रफल} = \frac{\text{आधार} \times \text{लम्बाई}}{2}\right)}$$

उदाहरण—वर्गाकार विधि द्वारा आम के वृक्ष 5 हेक्टर में लगाने हैं यदि पंक्ति तथा वृक्षों की दूरी 10 मीटर है तो वृक्षों की संख्या ज्ञात करो।

सूत्र के अनुसार—

$$\text{आम के वृक्षों की संख्या} = \frac{5 \times 10{,}000}{10 \times 10}$$

$$= 500 \text{ वृक्ष}$$

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. उद्यान लगाने की प्रमुख विधियों का सचित्र वर्णन करो।
2. नगरीय क्षेत्र मे उद्यान लगाने की सर्वोत्तम विधि कौनसी है और क्यों ?
3. पूरक विधि में किस प्रकार के पौधे को मध्य में स्थान देते हैं और क्यों ?
4. 500 वर्ग मीटर क्षेत्र के लिए पूरक विधि से आम के पौधे लगाने के लिए रेखांकन करो।
5. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखो—
   (i) षटभुजाकर विधि
   (ii) समोच्च विधि।

फल वृक्षों में प्रसारण
(Propagation in Fruit Plants)

पौध प्रवर्धन का अर्थ है—पौधों की जाति की वृद्धि। यह कार्य प्रकृति द्वारा स्वतः ही किया जाता है जिससे पौधे अपनी जाति बनाए रखने का प्रयास करते हैं।

'वृक्षों की संख्या बढ़ाने या नया पौधा तैयार करने के लिए बीज या अन्य वानस्पतिक अंगों को प्रयोग करना, प्रवर्धन या प्रसारण कहलाता है।

प्रसारण की विधियाँ (Methods of Propagation)—दो वर्गों में बाँटते हैं—

(अ) लैंगिक विधि (ब) अलैंगिक विधि

(अ) लैंगिक विधि (Sexual Method)—इस विधि में वृक्षों के नर और मादा अंग सेचन तथा गर्भाधान से बीज का निर्माण करते हैं। ये बीज अनुकूल परिस्थितियों (उचित नमी, ताप एवं वायु) में अपने अनुरूप पौधों में विकसित हो जाते हैं। इसे बीज द्वारा प्रसारण भी कहते हैं।

अधिकांश फसलें, शाक-भाजी, अलंकृत फूल, बाड़, कुछ फल, जंगली बेर, जामुन, आम, फालसा, पपीता, आंवला, नीबू वर्गीय फलों के पौधे इसी विधि से तैयार होते हैं। स्तम्भ या मूल वृन्त को बीज से ही तैयार करते हैं।

बीज द्वारा पौधों को तैयार करना एक प्राचीन प्रचलित तरीका है। अतः कृषि के सतत् विकास के लिए अच्छे बीजों का होना अति आवश्यक है।

अच्छे बीज का चयन—

(1) जिन फलों से बीजों को लेना है, वे स्वस्थ, नीरोग, स्वादिष्ट एवं परिपक्व हों।

(2) बीजों का भण्डारण अच्छी तरह से किया गया हो। वे एक वर्ष से अधिक पुराने न हों।

(3) बीजों की अंकुरण क्षमता 80-85% तक हो।

(4) बीजों को सदैव ही विश्वसनीय विक्रेता से क्रय किया जाए। राष्ट्रीय, राज्य बीज निगम से बीज क्रय करना अच्छा है।

फलों के पूर्णतया पकने पर ये पौधों से स्वतः अलग हो जाते हैं। इन गूदेदार फलों से बीजों को निकालकर धोकर अच्छी तरह सुखाने के बाद वायुरोधी शीशियों या पालीथीन की थैलियों में संग्रह करते हैं जिससे वायु, नमी, कीट आदि हानि न पहुँचा सके।

अंकुरण परीक्षण (Viability Test)—बीज कितने समय बाद अंकुरण कर सकता है, उसको अंकुरण क्षमता कहते हैं। यह भिन्न-भिन्न बीजों की अलग-अलग होती है। एक वर्षीय पौधों के बीजों में 6-12 माह तक अंकुरण शक्ति रहती है, जबकि कुछ 2-10 वर्ष तक अंकुरित हो सकते हैं। आम का बीज दो माह बाद अंकुरित नहीं हो सकता है।

अंकुरण क्षमता की जाँच के लिए किसी प्लेट में जीवाणु रहित मिट्टी लेकर उसमें गिनकर 100 बीजों को बोने के बाद आवश्यक सिंचाई करते रहते हैं। अंकुरित बीजों को गिनकर उनका प्रतिशत ज्ञात कर लेते हैं। अच्छी अंकुरण क्षमता 80-85 तक होती है।

बीजों की बोआई (Sowing of Seeds)—बीजों को कई विधियों से बोते हैं—

(1) पौधघर में बोना।

(2) गमले या मिट्टी की नांद में बोना।

(3) लकड़ी के बक्सों में बोना।

(4) पालीथिन की थैलियों में बोना।

बीज कहीं भी बोया जाए, उस स्थान की मिट्टी को अच्छी तरह से तैयार करके पर्याप्त जीवांश खाद मिलाकर मिट्टी को भुरभुरा व समतल करें। गमलों आदि के लिए 2 भाग मिट्टी, 1 भाग रेत तथा 1 भाग पत्ती या गोबर की खाद का मिश्रण बनाकर, प्रयोग करते हैं।

बीजों के अच्छे अंकुरण के लिए 24-36 घण्टे के लिए पानी में भिगो दें तथा आवश्यक रसायनों या पादप-वृद्धि नियामक (Harmone) से उपचार के बाद क्यारी में निश्चित गहराई पर सदैव ही पंक्ति में निश्चित दूरी पर बोते हैं। बड़े बीजों को गहरा तथा छोटे-महीन बीजों को 3-4 से. मी. की गहराई पर बोकर बारीक खाद की पर्त से ढक देते हैं। सिंचाई, निराई आदि की आवश्यक व्यवस्था के साथ तेज धूप, वर्षा आदि से बचाव रखते हैं। इन पौधों को यथासमय पौध घर से सावधानीपूर्वक निकालकर तैयार गड्ढों में प्रतिरोपित कर देते हैं।

बीजों द्वारा प्रसारण से लाभ—

(1) यह सस्ती एवं सरल विधि है क्योंकि यह एक प्राकृतिक क्रिया है।
(2) एक साथ अनेकों पौधे तैयार हो सकते हैं।
(3) बीज से तैयार वृक्ष आकार में बड़े और फलने वाले होते हैं।
(4) वृक्षों की आयु अधिक होती है।
(5) इन वृक्षों से फलन 4-5 वर्ष की आयु में होता है।
(6) वृक्षों पर अधिक फलों के लगने से अधिक आय प्राप्त होती है।
(7) बीजू पौधे सूखा, पाला, कीट-रोग, जलमग्नता आदि दैविक प्रकोपों के सहिष्णु होने से ये आसानी से हर जगह पनप सकते हैं।
(8) कुछ फल वृक्ष जैसे—पपीता, फालसा, आदि इसी विधि से तैयार किए जाते है।
(9) वानस्पतिक प्रसारण के लिए स्तम्भ बहुधा बीज से तैयार किए जाते है।
(10) नई प्रजातियों का विकास इसी विधि से किया जाता है।

हानियाँ—

1. फल वृक्षों का आकार बड़ा होने से अधिक स्थान घेरते हैं जिससे उद्यान में कम पौधे लगते हैं।
2. फल वृक्षों के आकार बड़े होने से इनकी देखभाल, कृंतन, रसायनों का छिड़काव, फलो को तोड़ना आदि कार्यों में असुविधा होती है।
3. इन वृक्षों में फलन देर से होता है।
4. कुछ बिना बीजों के वृक्ष केला, अंगूर, अनन्नास आदि के पौधे को इस विधि से तैयार नहीं कर सकते हैं।
5. बीजू पौधों के गुणों तथा उपज का पूर्वानुमान नहीं लगा सकते है।

(ब) अलैंगिक प्रसारण (Asexual Method)—बीजों के अतिरिक्त पौधे के किसी भी वानस्पतिक भाग, जड़, तना, पत्ती, शाखा, कली आदि से जब नए पौधे तैयार किए जाते है, तो इसे, "अलैंगिक या वानस्पतिक प्रसारण" कहते है।

आवश्यकता—

1. इस तरह से तैयार पौधे अपने मातृ पौधे की भांति होते है।
2. पौधे विभिन्न वातावरण को सह सकते हैं।
3. खराब किस्म या आँधी आदि विपदाओं से नष्ट वृक्षों को अच्छी किस्म के वृक्षों में बदल सकते हैं।
4. एक ही पौधे पर एक से अधिक किस्मों को लगा सकते हैं।

5. ये पौधे आकार में छोटे होते हैं जिससे प्रति हेक्टर अधिक पौधे होने से उत्पादन अधिक प्राप्त होता है।
6. पौधों की देखरेख करने में सुविधा रहती है तथा कम व्यय होता है।
7. इन पौधों से फलन जल्दी और अधिक होता है।
8. बहुत से वृक्ष बीजो को पैदा नही करते हैं। उनके पौधों को इन्हीं विधि से तैयार किया जाता है।
9. इस विधि से पौधों के दुर्गुण-कांटे आदि को नष्ट कर सकते हैं।
10. सस्ते एवं सुलभ ढंग से दो किस्मो से नई तीसरी किस्म विकसित की जा सकती है। आम की दशहरी एवं नीलम किस्म से नई आम्रपाली किस्म तैयार की गई है।

दोष—

1. प्रवर्धन द्वारा तैयार वृक्ष बीजू पौधो की अपेक्षा कम वर्षों तक फल देते है।
2. तकनीकी ज्ञान के अभाव मे साधारण व्यक्ति इन विधियो से नया पौधा तैयार नही कर सकते हैं।
3. प्रसारण से तैयार पौधे बीजू की अपेक्षा कमजोर तथा सहिष्णु होते है।

वानस्पतिक प्रसारण की विधियाँ— मुख्य रूप में दो भागो में बाँटा जाता है—
(अ) प्राकृतिक वानस्पतिक प्रसारण; (ब) कृत्रिम वानस्पतिक प्रसारण।

(अ) प्राकृतिक वानस्पतिक प्रसारण— कुछ पौधे स्वतः ही अपने बीज के अतिरिक्त अन्य अगो से नए पौधो को जन्म देते है।

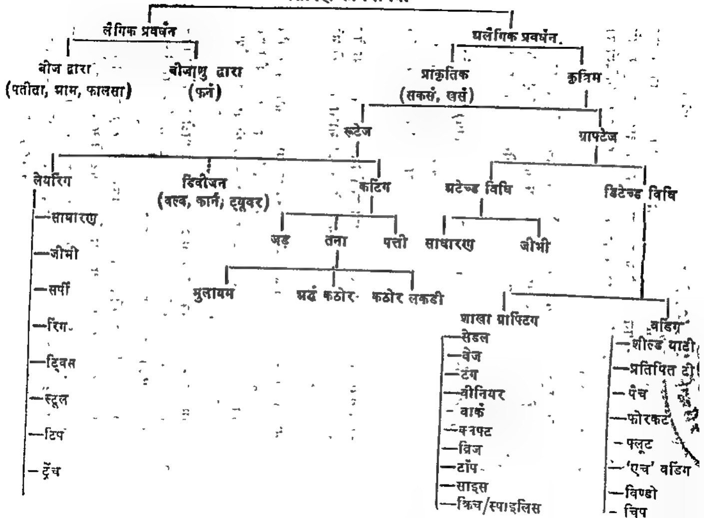
स्ट्रबेरी तथा दूब घासें, भूमि की नमी मे गाँठो से जड़ें निकलकर जमीन मे प्रवेश कर जाती है। तने के टूटने से नए पौधे तैयार होते है।

केले का प्रवर्धन पौधे के पास से भूमि से निकले अपस्थानिक कलियों से निकले अन्तभूस्तारी से किया जाता है। खजूर मे ऐसे प्ररोह भूमि के तल के पास से तथा अनन्नास मे फल के ऊपर के प्ररोह से पौधे तैयार करते हैं।

(ब) कृत्रिम वानस्पतिक प्रसारण—पौधों के विभिन्न वानस्पतिक भाग, जड़, पत्ती, शाखा, कलिका आदि से मातृ पौधों की भांति नए पौधे तैयार किए जाते हैं। निम्न विधियाँ प्रमुख हैं—

(क) जड द्वारा (ख) ग्राफ्टेज

(क) जड़ द्वारा (*Rootage*)—इस विधि मे पौधे के किसी भाग तने, पत्ती, जड़ के टुकड़े को उचित जड़ निकलने वाले माध्यम को देते हुए जड़ विकसित



प्रसारण की विधियां
लैंगिक प्रवर्धन
अलैंगिक प्रवर्धन
बीज द्वारा (पतीता, आम, फालसा)
बीजाणु द्वारा (फर्न)
प्राकृतिक (सकर्स, रनर्स)
कृत्रिम
स्टेज
ग्राफ्टेज
लेयरिंग
—साधारण
—जीभी
—सर्पी
—रिंग
—ट्विस्ट
—स्टूल
—टिप
—ट्रेंच
डिवीजन (बल्ब, कार्म, ट्यूबर)
कटिंग
जड़
तना
पत्ती
मुलायम
अर्द्ध कठोर
कठोर लकड़ी
अटेच्ड विधि
साधारण
जीभी
डिटेच्ड विधि
शाखा ग्राफ्टिंग
—सेडल
—वेज
—टंग
—वीनियर
—बार्क
—क्लेफ्ट
—ब्रिज
—टॉप
—साइड
—क्रिच/स्पाइलिस
बडिंग
—शील्ड या टी
—प्रतिपित टी
—पैच
—फोरकर्ट
—फ्लूट
—'एच' बडिंग
—विण्डो
—चिप

करके तना विकसित होता है और पूरा पौधा बन जाता है। इस क्रिया को 'स्टेज' कहते हैं। इस विधि को तीन भागों में बाँटते हैं—

(1) कलम (2) डिवीजन (3) लेयरेज

(1) कलम (Cutting)—इसे 'कर्तन' भी कहते हैं। इस विधि में पौधे के किसी भाग को काटकर अलग करने के बाद उसे आवश्यक दशाएँ देते हैं जिससे नये पौधे तैयार किए जाते हैं। इसके सस्ते व सरल होने से अन्य विधियों की अपेक्षा अधिक अपनाते हैं।

अंजीर, शहतूत, अनार, अंगूर आदि के पौधे इस विधि से तैयार करते हैं। ये दीर्घजीवी नहीं होते है परन्तु अपेक्षाकृत कम दिनों में फल देने लगते हैं। अनेकों बाड़ें, अलंकृत फूलों के पौधे भी कलम से तैयार होते हैं। तीन विधियाँ प्रयुक्त की जाती हैं—

(i) तना कर्तन (ii) जड़ कर्तन (iii) पत्ती कर्तन

(i) तना कर्तन (Stem Cutting)—इस विधि में पौधे की किसी शाखा का टुकड़ा लेकर तैयार क्यारी में, इसका कुछ भाग दबा देते हैं। कुछ समय बाद तने से जड़ें विकसित होने पर नया पौधा बन जाता है।

कलम तैयार करना—कलम के लिए पौधों की विभिन्न आयु की शाखा लेते है। कुछेक की नई हरी शाखा, अन्य की हल्के, भूरे रंग की शाखा तथा पकी भूरे रंग की शाखाएँ लेते हैं।

भूमि के निकट वाली शाखा की कलम से स्वस्थ अधिक फैलने वाले पौधे तैयार होते हैं जिनमे फूल-फल देर से आते है। ऊपर वाली शाखाओं के पौधे एक वर्ष मे ही फूल-फल देने लगते है। नई शाखाओं से अधिक फैलने वाले पौधे तैयार होते हैं जिनमें फूल देर तक रहते हैं।

कलम पेड़ से 1–2 वर्ष पुरानी 0.5—1.0 से मी मोटी स्वस्थ शाखा से 20—30 से. मी लम्बी कलम सिकेटियर या चाकू से काटते है जिस पर 3—4 फूली कलिकाएँ (Bud) हो। कटाव दो प्रकार से;

(i) ऊपर के सिरे को सीधा तथा नीचे के सिरे को तिरछा काटते हैं।

(ii) ऊपर के सिरे को तिरछा तथा नीचे के सिरे को सीधा काटते हैं।

कटाव नीचे की कलिका से 1.0 से.मी. तथा ऊपर का कटाव कलिका से 3—5 से. मी. दूर रहे तो अच्छा रहता है। इन पर पत्तियाँ होने या न होने का [illegible] प्रभाव नहीं पड़ता है परन्तु अधिक पत्तियों के होने पर कुछ तोड़ देते हैं।

लगाने का समय—कलम में प्राय: वर्षाऋतु मे, जब वायु में नमी तथा ताप अधिक होता है, लगाई जाती है। पतझड़ वाले फल वृक्षों की कलमें जनवरी-फरवरी में लगाते हैं।

पौधे तैयार करने की विधि—तैयार पौध घर, या गमलों में तिरछा 45° कोण पर या सीधा भूमि में 2/3 भाग अन्दर तथा 1/3 भाग ऊपर, रखकर गाड़ देते हैं। तिरछे कटान को उत्तर दिशा की ओर रखने पर सूर्य की किरणों से बचाव होता है और वर्षा की बूँदें नहीं ठहरती हैं।

कलमों में जड़ों के अच्छे तथा शीघ्र विकसित होने के लिए कुछ पादप वृद्धि नियामकों (Harmones) जैसे फिनाइल एसिटिक एसिड (पी.ए.ए.) इण्डोल एसिटिक एसिड (आई. ए. ए.) नेप्थलीन एसिटिक एसिड (एन. ए. ए.) ब्यूवर्स हैस्ट का भी प्रयोग किया जाता है। इनके 0·01% घोल में कलमों को 2 घण्टे तक डुबोते हैं। सिंचाई के साथ घूल का प्रयोग कर सकते हैं।

कलमों के लगाने के बाद हल्की सिंचाई करते रहने से कुछ समय बाद कलिकाएँ फूट आती हैं और शाखाएँ निकल आती हैं। कटाव में मेखला के ऊपर कैलस विकसित होने पर प्रांकुर बढ़ता है। कैलस [redacted] बड़े होने पर जड़े देर [redacted] निकलती हैं। अतः कैलस (Callus) का थोड़ा भाग काट देते हैं।

कलम के प्रकार—तीन प्रकार की कलमें होती हैं—

(i) मुलायम लकड़ी की कलमें (Herbacious or Shoftwood Cutting)—अधिकतर छाया में पनपने वाले कोमल पौधों की मुलायम, रसभरी, पतली शाखाएँ प्रयोग की जाती हैं। इनको विशेष ध्यान देकर अधिक ताप व नमी से बचाव करते हैं। उदाहरण—जिरेनियम, कोलियस, पिटुनिया।

(ii) अर्द्ध मुलायम लकड़ी की कलमें—इसमें वृक्ष और झाड़ियों की एक मौसम पुरानी, उभरी कलियों युक्त शाखा से 7·5–15·0 से.मी. लम्बी कलमें बनाते हैं फिर इनको क्यारियों में लगा देते हैं। उदाहरण—बेरी।

(iii) कठोर लकड़ी की कलमें (Hard Wood Cutting)—इसमें पौधों की परिपक्व, एक वर्ष पुरानी शाखा लेते हैं। सुप्तावस्था में हरी शाखा से 10-30 से.मी. कलम काटकर तैयार क्यारियों में लगा देते हैं।

सदाबहार वृक्ष जैसे—नींबू, अंगूर आदि के पौधे इसी विधि से तैयार किये जाते हैं।

लाभ—1. कम समय में अनेक पौधे तैयार होते हैं।
2. तैयार पौधे पैतृक गुणों के होते हैं।
3. पौधे छोटे तथा कम फैलने वाले होते हैं।
4. फलन अपेक्षाकृत शीघ्र प्राप्त होता है।

सावधानियां—

1. जड़ों के अच्छे विकास के लिए क्यारी में पर्याप्त जीवांश पदार्थ देकर भूमि को अच्छी तरह एकसार, भुरभुरा करें। जीवाणु रहित करना भी अच्छा रहता है।
2. कलमों के लगाने के बाद उचित मात्रा में सिंचाई करके भूमि को नम रखें।
3. जड़ो के शीघ्र विकास के लिए उचित वृद्धि नियामक (हार्मोन) के घोल में कलमों के डुबोने के बाद क्यारियों में लगाना अच्छा है।
4. कलमों पर कुछ पत्तियां रहने से प्रकाश संश्लेषण क्रिया से कार्बोहाइड्रेट की मात्रा बढ़ती है जो जड़ों के शीघ्र विकास में सहायक होती है।
5. कलमों मे शाखाओं के विकसित होने पर तैयार पौधों को क्यारियो से सावधानीपूर्वक निकालकर तैयार गड्ढों में सायंकाल या वर्षा के दिन प्रतिरोपित कर सिंचाई कर दें।

2. जड़ कर्तन (Root Cutting)—कुछ विशेष पौधे तने की कलम से तैयार नहीं किए जा सकते हैं उनकी जड़ों की कलम बनाते हैं। साधारण 1·0 से, मी. व्यास की जड़ से 5·0—15·0 से मी. लम्बी कलम काटकर भूमि में समानान्तर जड़ का थोड़ा भाग ऊपर रखते हुए, क्यारियों में लगा देते हैं। जड़ें तथा प्रांकुर के विकसित होने पर स्थानान्तरित कर देते हैं।

सेब, नाशपाती, आलू बुखारा, अमरूद, शीशम आदि में यही विधि प्रयुक्त होती है।

3. पत्ती की कर्तन (Leaf Cutting)—ऐसे पौधे जिनकी पत्तियां के मोटी रसदार होती है। उनकी पूरी पत्ती क्यारी में आधी दबा देते है। कभी-कभी पत्ती के दो से अधिक टुकड़े करके मिट्टी में लगाने से नया पौधा तैयार हो जाता है। उदाहरण—पथरचटा, स्नेक प्लान्ट आदि।

बड कर्तन (Bud Cutting)—इस विधि से लाहौर में अंगूर, इंगलैण्ड में गुलाब एवं कमेलिया के पौधो को तैयार करते है। गोरखपुर (उ. प्र.) में गुलाब, नींबू, नारंगी, चकोतरा के पौधे तैयार किए जाते हैं।

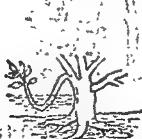
नई गूदेदार पत्ती एवं कलियायुक्त शाखा लेते हैं जिसको कली से 1·25 से.मी. ऊपर तथा नीचे तक लकडी का एक चौथाई भाग लेते हुए कली को निकाल लेते है। कली निकालते वक्त पत्ती न टूटे। कली को बालू में थोड़ा-सा हिस्सा दिखते हुए लगाकर हल्की सिंचाई करते रहते हैं। इसे शीशे के प्लेट से भी ढंक देते हैं। लगभग 3 सप्ताह में जड़ें और कली से शाख बनने लगती हैं। पौधों को सावधानी से बालू मे से निकाल कर गमलों मे लगाकर पौधों को तैयार करते हैं। पौधों की वृद्धि अधिक समय मे, 6 सप्ताह मे 25–30 से.मी. हो जाते हैं।

(2) डिवीजन (Division)—प्रकृति में कई प्रकार के पौधे होने के कारण इनके विशेष अंगों से पौधे तैयार किए जाते हैं। उपरिभूस्तारी (Runners)-खट्टी बूटी, ब्राह्मी; अन्तःभूस्तारी (Suckers)-पुदीना, गुलदावदी, मासिलया, युक्का; प्रकन्द (Rhizome) अदरक, हल्दी, अरबी, कन्द (Tubers) आलू, शल्ककन्द (Bulb) प्याज, लहसुन, घनकन्द (Corm) केशर, जिमीकन्द, ग्लाडि ओलुस आदि को कई टुकड़ों में काटकर क्यारियों में लगाते हैं जिनसे जड़ें और अंकुर निकलकर नए पौधों में बदल जाते हैं।

3. दाब कलम (Layerage)—जब पेड़ या पौधे की कोई टहनी या शाखा को मिट्टी के सम्पर्क में आने पर उस स्थान से जड़ें निकलकर एक स्वतन्त्र पौधा तैयार किए जाने की प्रक्रिया, 'लेयरिंग' कहलाती है।

यह विधि कर्तन विधि से थोड़ी भिन्न होती है। इसमें जड़ों के निकलने के बाद शाखा को काटकर मातृ पौधे से अलग कर देते हैं। शाखा को झुकाकर जड़ों के निकलने के माध्यम-मिट्टी में दबा देते हैं तथा न झुकने वाली ऊँची शाखा के पास माध्यम को ले जाते हैं। यह दो प्रकार से होती है—

(अ) भूमिगत दाब (Underground Layerage)—इस विधि में किसी टहनी या शाखा को भूमि की सतह पर मिट्टी में दबाते हैं। भूमि में शाखा दबाने की कई विधियाँ हैं। अमरूद, अनार, लेमन आदि फलों, मोगरा, फूलों के पौधे तैयार करते हैं।



साधारण दाब

1. साधारण दाब (Simple Layering)—यह साधारण विधि है जिसमें पौधे की बढ़ती हुई नई शाखा का ऊपरी सिरा छोड़ते हुए बीच में मिट्टी में दबा देते हैं। मिट्टी में दबी शाखा से एक खाँचा, घाव, छल्ला उमेठकर बना देते हैं जिससे ऊपरी सिरे में पत्तियों द्वारा खाद्य पदार्थ नीचे न आने से वहीं रुककर जड़ें निकलने में सहायता करता है। जड़ों के अच्छी तरह विकसित होने पर पौधे को धीरे-धीरे मातृ पौधे से काटकर अलग कर देते हैं।

सावधानियाँ—

1. जड़ों के अच्छे विकास के लिए क्यारी में पर्याप्त जीवांश पदार्थ देकर भूमि को अच्छी तरह एकसार, भुरभुरा करें। जीवाणु रहित करना भी अच्छा रहता है।
2. कलमों के लगाने के बाद उचित मात्रा में सिंचाई करके भूमि को नम रखें।
3. जड़ों के शीघ्र विकास के लिए उचित वृद्धि नियामक (हार्मोन) के घोल में कलमों के डुबोने के बाद क्यारियों में लगाना अच्छा है।
4. कलमों पर कुछ पत्तियाँ रहने से प्रकाश संश्लेषण क्रिया से कार्बोहाइड्रेट की मात्रा बढ़ती है जो जड़ों के शीघ्र विकास में सहायक होती है।
5. कलमों में शाखाओं के विकसित होने पर तैयार पौधों को क्यारियों से सावधानीपूर्वक निकालकर तैयार गड्ढों में सायंकाल या वर्षा के दिन प्रतिरोपित कर सिंचाई कर दें।

2. जड़ कर्तन (Root Cutting)—कुछ विशेष पौधे तने की कलम से तैयार नहीं किए जा सकते हैं उनकी जड़ों की कलम बनाते हैं। साधारण 1·0 से. मी. व्यास की जड़ से 5·0—15 0 से.मी. लम्बी कलम काटकर भूमि में समानांतर जड़ का थोड़ा भाग ऊपर रखते हुए, क्यारियों में लगा देते हैं। जड़ें तथा प्रांकुर के विकसित होने पर स्थानान्तरित कर देते हैं।

सेब, नाशपाती, आलू बुखारा, अमरूद, शीशम आदि में यही विधि प्रयुक्त होती है।

3. पत्ती की कर्तन (Leaf Cutting)—ऐसे पौधे जिनकी पत्तियाँ के मोटी रसदार होती है। उनकी पूरी पत्ती क्यारी में आधी दबा देते हैं। कभी-कभी पत्ती के दो से अधिक टुकड़े करके मिट्टी में लगाने से नया पौधा तैयार हो जाता है। उदाहरण—पथरचटा, स्नेक प्लान्ट आदि।

बड कर्तन (Bud Cutting)—इस विधि से लाहौर में अंगूर, इंगलैण्ड में गुलाब एवं कमेलिया के पौधो को तैयार करते हैं। गोरखपुर (उ. प्र.) में गुलाब, नींबू, नारंगी, चकोतरा के पौधे तैयार किए जाते हैं।

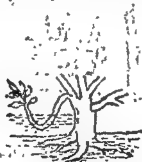
नई गूदेदार पत्ती एवं कलियायुक्त शाखा लेते हैं जिसको कली से 1·25 से.मी ऊपर तथा नीचे तक लकड़ी का एक चौथाई भाग लेते हुए कली को निकाल लेते है। कली निकालते वक्त पत्ती न टूटे। कली को बालू में थोड़ा-सा हिस्सा दिखते हुए लगाकर हल्की सिंचाई करते रहते हैं। इसे शीशे के प्लेट से भी ढंक देते है। लगभग 3 सप्ताह में जड़े और कली से शाख बनने लगती है। पौधों को सावधानी से बालू में से निकाल कर गमलों मे लगाकर पौधो को तैयार करते हैं। पौधो की वृद्धि अधिक समय में, 6 सप्ताह में 25–30 से.मी. हो जाते हैं।

(2) डिवीजन (Division)—प्रकृति में कई प्रकार के पौधे होने के कारण इनके विशेष अंगों से पौधे तैयार किए जाते हैं। उपरिभूस्तारी (Runners)-खट्टी बूटी, ब्राह्मी; अन्त:भूस्तारी (Suckers)-पुदीना, गुलदावदी, मासिलया, युक्का; प्रकन्द (Rhizome) अदरक, हल्दी, अरबी, कन्द (Tubers) आलू, शल्ककन्द (Bulb) प्याज, लहसुन, घनकन्द (Corm) केशर, जिमीकन्द, ग्लाडि ओलुस आदि को कई टुकड़ों में काटकर क्यारियों में लगाते हैं जिनसे जड़ें और अंकुर निकलकर नए पौधों में बदल जाते हैं।

3. दाब कलम (Layerage)—जब पेड़ या पौधे की कोई टहनी या शाखा को मिट्टी के सम्पर्क में आने पर उस स्थान से जड़ें निकलकर एक स्वतन्त्र पौधा तैयार किए जाने की प्रक्रिया, 'लेयरिंग' कहलाती है।

यह विधि कर्तन विधि से थोड़ी भिन्न होती है। इसमें जड़ों के निकलने के बाद शाखा को काटकर मातृ पौधे से अलग कर देते हैं। शाखा को झुकाकर जड़ों के निकलने के माध्यम–मिट्टी में दबा देते हैं तथा न झुकने वाली ऊँची शाखा के पास माध्यम को ले जाते हैं। यह दो प्रकार से होती है—

(अ) भूमिगत दाब (Underground Layerage)—इस विधि में किसी टहनी या शाखा को भूमि की सतह पर मिट्टी में दबाते हैं। भूमि में शाखा दबाने की कई विधियाँ हैं। अमरूद, अनार, लेमन आदि फलों, मोगरा, फूलों के पौधे तैयार करते हैं।



साधारण दाब

1. साधारण दाब (Simple Layering)—यह साधारण विधि है जिसमें पौधे की बढ़ती हुई नई शाखा का ऊपरी सिरा छोड़ते हुए बीच में मिट्टी में दबा देते हैं। मिट्टी में दबी शाखा में एक खाँचा, घाव, छल्ला उमेठकर बना देते हैं जिससे ऊपरी सिरे में पत्तियों द्वारा खाद्य पदार्थ नीचे न आने से वहीं रुककर जड़ें निकलने में सहायता करता है। जड़ों के अच्छी तरह विकसित होने पर पौधे को धीरे-धीरे मातृ पौधे से काटकर अलग कर देते हैं।

2. नोंक दाब (Tips Layer.ng)—यह साधारण दाब की भाँति है। इसमें शाखा का ऊपरी सिरा मिट्टी में दबाते हैं। करीब 8–10 से मी. गहरा दबाने पर जड़ें निकल आती हैं। पौधे के तैयार होने पर इसे मातृ पौधे से काटकर अलग कर देते हैं।

3. खाई दाब (Trench Layering)—इस विधि से एक ही शाखा से एक बार मे कई पौधे तैयार करते हैं। शाखा पर कई जगह खाँचे आदि बनाकर इसे लम्बी लगभग 25 से. मी. गहरी तैयार नाली की मिट्टी में दबा देते हैं। इसके बाद पौधों के तैयार होने पर इनको काटकर अलग कर देते हैं।

4. मरोड़ दाब (Twist Layering)—इस विधि में शाखा के मोड़ने पर छाल के ऊतक (Tissuss) टूटने से वहाँ पर कार्बोहाइड्रेट तथा ऑक्सन (Auxins) के एकत्रित होने पर तेजी से जड़ों का विकास होता है। शाखा को मिट्टी में दबा कर पौधो के तैयार हो जाने पर इसे दूसरे स्थान पर लगा देते हैं।

5. वलय दाब (Ring Layering)—इस विधि में शीघ्र जड़ों के निकलने के लिए कलिका के नीचे 1·5 से. मी. चौड़ी छल्ले की आकृति (Ring) बनाकर छाल हटाकर मिट्टी में दबा देते हैं। अन्य विधियों की अपेक्षा शीघ्र पौधे तैयार होते हैं।



6. खाँच दाब (Notch Layering)—इस विधि में शाखा के निचली ओर चाकू से उल्टी वी (Λ) आकार का भाग लकड़ी को काटते हुए अलग कर देते हैं। इसमे छाल के साथ थोड़ी-सी लकड़ी को भी काट देते हैं। मिट्टी में शाखा को दबाकर पौधे तैयार करते हैं।

7. जिह्वा दाब (Tongue Layering)—पौधे की शाखा पर अच्छी विकसित कली काट उसके नीचे की ओर लकड़ी का 2·0 से०मी लम्बा और मोटाई मे आधा नीचे से ऊपर की ओर जीभ की भाँति आकार में काट देते हैं। जीभ और शाखा के मध्य एक लकड़ी का टुकड़ा रखने से ये आपस मे नही मिल पाते हैं। कटे भाग को जमीन की ओर रखते हुए 5·7 से.मी. गहरी मिट्टी में दबा

देते हैं। उठने की आशंका होने पर शाखा को खूंटी से दबा देते है। आवश्यक सिंचाई आदि करने पर 3–4 सप्ताह में जीभ से जड़ें निकलने लगती हैं और बाद में पौधे को काटकर अलग कर देते हैं।

8. अवरोध दाब (Strangulated Layering)—इस विधि में अन्य की भाँति काट न लगाकर शाखा को तार से कसने पर छाल के तन्तु टूट जाते हैं और खाद्य पदार्थ रुकने से जड़ों के निकलने पर इसे काट कर नया पौधा तैयार कर लेते हैं।

9. ढेरी दाब (Mount Layering)—यह सरल विधि है। इसमें झाड़ीदार पौधों को बिना शाखा झुकाए एक ही बार में कई पौधे तैयार कर लेते हैं। ऐसे पौधे जिनकी शाखाएँ झुक नहीं पाती हैं, यह विधि प्रयुक्त की जाती है। पुरानी शाखाओं की अपेक्षा नई शाखाओं से अच्छे पौधे तैयार कर सकते हैं।

झाड़ी की शाखाओं को दूर करते हुए मिट्टी डालने पर जड़ें निकल आती हैं। मिट्टी को सावधानी से हटाकर पौधों को काटकर अलग कर लेते हैं।

10. इटियोलेशन दाब (Etiolation Layering)—यह विधि 'खाई दाब' की भाँति है जो इंग्लैण्ड में सेब में प्रयुक्त की जाती है। एक वर्ष की आयु के पौधे को 45° का कोण बनाते हुए भूमि पर रखते है। पौधे के स्थिर होने पर छिछली खाई में झुकाकर हल्की मिट्टी की तह से दबा देते हैं। कलियों के फूटने पर मिट्टी और डालते जाते हैं। नए प्रांकुर निकलने पर मिट्टी डालना बन्द कर देते हैं। इस समय मिट्टी की तह 15–20 सें.मी. हो जाती है। जड़ों के विकसित होने पर प्रांकुर वृद्धि करता है। कुछ समय बाद सावधानी से नए पौधे को अलग कर पौध घर में लगा देते हैं।

जड़ों के देरी से निकलने की सम्भावनाएँ होने पर आई. बी. ए. हार्मोन्स (500 ppm) का लेनो लीन में पेस्ट लगा देते हैं। लगभग 2 माह में जड़ें अच्छी तरह से विकसित होने पर इसे मातृ पौधे से अलग करके पौध घर में लगा देते हैं।

(घ) वायवीय दाब या गूटी (Aeriatyagering or Gootie)—यह दाब का संपरिवर्तित रूप है जिसमें मिट्टी और खाद का मिश्रण या अन्य माध्यम को शाखा तक ले जाते हैं। इस विधि में किसी भी ऊँचाई की शाखा से नया पौधा तैयार कर सकते हैं। यह विधि कटहल, लीची, अमरूद, कागजी नीबू, लेमन आदि में अपनाई जाती है।

पौधों से मार्च-अप्रैल से सितम्बर-अक्टूबर तक नए पौधे तैयार करते हैं।

एक वर्ष की स्वस्थ पेंसिल की मोटाई की शाखा चुनें। किसी कली के नीचे चाकू की सहायता से शाखा का लगभग 30-4·0 सेमी. लम्बाई का छिलका चारों ओर से सावधानी से हटा देते हैं। छाल हटाते समय लकड़ी को हानि न पहुँचे। कटे भाग पर आई. बी. ए. हार्मोन का (Sooppm) लेनोलीन पेस्ट लगाने से जड़ें शीघ्र निकलती हैं।

जड़ीय माध्यम—निम्न में से कोई एक माध्यम प्रयोग करते हैं—

1. चिकनी मिट्टी (2 भाग मिट्टी + 1 भाग पत्ती की खाद।
2 स्फेगमन मॉस (काई)
3. स्टरलाइट
4. वर्मीकोलाइट
5. परलाइट।

मिट्टी को आटे की भाँति गूंदकर कटाव पर 5·0 सेमी ऊपर-नीचे लगाकर टाट से नम करते हैं। नम करने के लिए एक छेदीय पानी वाला बर्तन शाखा के ऊपर लगा देते हैं और जड़ें निकलने तक नम रखने की व्यवस्था करते हैं।

काई (मॉस) को नम करके इसके ऊपर अल्का थीन (मोमजामा) के टुकड़े, को कसकर बाँध देते हैं। इसमें अन्दर नमी काफी समय तक बनी रहती है तथा पारदर्शक होने से जड़ों के विकास की स्थिति बिना खोले मालूम हो जाती है।



चित्र गूटी

लगभग 2 माह में जड़ों के निकलने पर शाखा को धीरे-धीरे 2-3 बार में काटकर नए पौधे को गमलो में लगाकर छाया मे रख देते हैं। पौधों को प्रातः सायं पानी देते हैं। लगभग 3-3 5 माह में पौधे तैयार होते हैं।

(ख) पैबन्द (Graftage)—इसे दो भागों में बाँटते हैं—

1. साइन ग्राफ्टिग (Scion Grafting)

2. बड ग्राफ्टिग (Bud Grafting)।

प्रचलित भाषा में इन्हें ग्राफ्टिग एवं बडिंग कहते हैं। इनमें मूलवृन्त तथा शाखा का चुनाव अत्यन्त आवश्यक है। अतः इनका चुनाव करते हैं।

मूलवृन्त (Root stock)—यह पौधे का वह भाग है जिस पर पूरा वृक्ष तैयार करने के लिए सायन लगाते हैं। मूलवृन्त जंगली किस्म के तने या सायन की जाति का भी पौधा हो सकता है। जंगली किस्म का पौधा बीज से तैयार करते हैं जिससे यह वहाँ की स्थिति में सायन की अच्छी वृद्धि हो सके। निम्न बातों का ध्यान रखते हैं—

1. मूलवृन्त स्वस्थ तथा निरोग हो।

2. बीमारी प्रतिरोधक हो तथा अधिक पुराना न हो।

3. मूलवृन्त की टहनी गोल, गड्ढे रहित वृद्धि करती हुई दशा में हो।

4. इसकी मोटाई शाख (Scion) के अनुरूप हो।

सायन (Scion) का चुनाव—यह पौधे का वह भाग है, जो अच्छी किस्म का होता है। पूरा नया पौधा तैयार करने के लिए मूलवृन्त पर लगाया जाता है जिससे जंगली पौधा अच्छी किस्म का बन जाता है। निम्न बातों का ध्यान रखते हैं—

1. सायन अच्छी किस्म का स्वस्थ एवं निरोग हो,

2. टहनी गोल, सीधी, चिकनी तथा गड्ढे रहित हो,

3. सायन की मोटाई 2-3 सेमी., मूलवृन्त की टहनी की मोटाई के अनुरूप हो,

4. टहनी पर पूरा छिलका हो,

5. यह बीमारी प्रतिरोधी हो।

मेट्रिक्स (Matrix)—यह मूलवृन्त पर निश्चित किया वह स्थान है जो कलिका (But) या शाख के लिए बनाया जाता है।

ग्राफ्टेज—इसे दो भागों में विभाजित करते हैं—

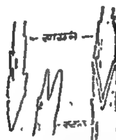
(1) संयुक्त ग्राफ्टेज, (2) पृथक ग्राफ्टेज।

(1) संयुक्त ग्राफ्टेज (Attached Graftage)—इसे 'भेंट कलम' (Inarching) कहते हैं। इसमें जब मूलवृन्त और सायन में जुड़ाव हो रहा हो तो शाखा को पैतृक वृक्ष से पूर्णतया अलग नहीं करते हैं। इसकी दो विधियाँ हैं—

1. साधारण भेंट कलम (Simple Inarching)—इस विधि में सायन शाखा मूलवृन्त से तब तक जुड़ी रहती है जब तक मूलवृन्त और शाख का जुड़ाव अच्छी तरह से न हो जाएँ।

भूमि से निश्चित ऊँचाई तक काटकर एक वेज (Wedge) के श्राकार का 2·0-2·5 सेमी. की नोचाई का कटान बनाते हैं। शाख पर इसी सम्बाई का 'वी' (V) श्राकार का खांचा बनाकर प्रकंद में भलीभाँति रखकर ग्राफ्टिग टेप से बाँध देते हैं जो 2-3 माह में पौधा विकसित हो जाता है।

2. स्फान ग्राफ्टिग (Wedge Grafting)—यह परयाण विधि की उल्टी विधि है। चुने प्रकंद पर वेज का श्राकार का 2-5 से मी. कटाव देते हैं। शाख पर 2-5 सेमी. गहराई का 'वी' श्राकार का कटाव बनाते हैं जिसको प्रकंद पर फिट कर बाँध देते हैं।



3. कशा ग्राफ्टिग (Whipor Splice Grafting)—मूलवृन्त और शाख समान मोटाई के चुनकर मूलवृन्त को काटकर एक सम्बा तिरछा कटाव देते हैं फिर शाख पर इसी भाँति नीचे से ऊपर की ओर कटाव बनाकर मूलवृन्त पर फिट करके बाँध देते हैं। यह विधि ग्राम में प्रयुक्त की जाती है। एक वर्ष में पौधे लगाने योग्य हो जाते हैं।



चित्र स   टंग ग्राफ्टिंग

4. जीभी ग्राफ्टिग (Tongue Grafting)—यह कुछ कठिन विधि है। इसमें चुने स्तम पर निश्चित ऊँचाई से एक किनारे से तिरछा काटकर लगाते काट देते

हैं। इसके बाद ऊपरी किनारे पर चाकू रखकर थोड़ी निचाई तक अन्दर की ओर गहरा कट लगाकर पहले लगाये कट से मिलाने पर एक पतली चिप काट कर निकाल देते हैं। इसी भाँति शाख पर भी काट लगाते हैं। स्तंभ पर शाख को बिठा कर ग्राफ्टिंग टेप से बाँध देते हैं।



5. पार्श्व ग्राफ्टिंग (Side Grafting)—इस विधि में मूलवृन्त के किसी भाग पर एक किनारे से ऊपर से नीचे की ओर 3-4 सेमी. लम्बा काट लगाते हैं इसकी मोटाई स्तंभ की मोटाई के अनुरूप रखते हैं। फिर उस स्थान पर जहाँ नीचे का कटाव समाप्त होता है, भूमि के समानान्तर काटकर पहिले वाले कट से मिलाने पर एक चिप निकल आती है।

अब उपयुक्त शाखा लेकर इस प्रकार कट लगाते हैं जो मूलवृन्त पर फिट हो जाये। इसे ग्राफ्टिंग टेप से बाँध देते हैं। पौधे के तैयार हो जाने पर मूलवृन्त को जोड़ से 3—5 सेमी. ऊपर से काटकर अलग कर देते हैं। पौधों को छायादार स्थान पर लगा देते हैं।



चित्र 8

6. बार्क ग्राफ्टिंग (Bark Grafting)—इसमें मूल स्तंभ को भूमि से कुछ ऊँचाई पर से काट देते हैं फिर तने की छाल में ऊपर से नीचे की ओर काट हैं। इसके बाद इधर-उधर की छाल को चाकू के मुठिया भाग से तने से देते हैं परन्तु छाल को अलग न करके जुड़ा रहने देते हैं।

इसके बाद शाख की पतली शाखा लेकर उसको पतली जीभ जैसी नुकीली बना लेते हैं। एक बार में दो या तीन शाखायें छाल में लगा देते हैं। इसके बाद किनारे से बाँध कर ग्राफ्टिंग मोम भर देते हैं।

7. सेतु ग्राफ्टिंग (Bridge Grafting)—इस विधि से रोगी या कीटों द्वारा नष्ट किए गए तने की खुली छाल को ढंका जाता है। यह सरल विधि है। सर्वप्रथम तने की छाल को साफ कर लेते हैं। सायन शाख की पतली-पतली शाखाओं को लेकर इनके दोनों किनारों को खूँटी की आकृति जैसा बना लेते हैं। शाखाओं की लम्बाई छाल के खुले स्थान के अनुसार रखते हैं। छाल में इनके समान कट इस प्रकार लगाते हैं कि सायन शाख अच्छी तरह फिट हो जाएँ। कलमों को दबा कर आवश्यकतानुसार मोम लगा देते हैं। कुछ समय बाद छाल बढ़कर खुले भाग को ढंक लेती है।

8. मुकुट रोपण (Crown Grafting)—यह बार्क ग्राफ्टिंग की भाँति है। तने को भूमि से 20-25 सेमी ऊँचाई पर से समानान्तर काट देते हैं। चोटी से नीचे की ओर छिलके को 15 मी तेज चाकू से चीर कर दोनों भागों को धीरे से अलग करते हैं।

सायन की पत्तियों को तोड़कर वेज की शक्ल की कलमें काटकर लकड़ी व छिलके के बीच सटाकर बाँध कर गोबर तथा मिट्टी लगा देते हैं। बड़े तने पर दो शाखें लगा सकते हैं। अधिक वायु व धूप से बचाव के लिए घास का ढक्कन बनाकर तने के ऊपर रख देते हैं। प्रकाश के लिए उत्तर की ओर थोड़ा खोल देते हैं।

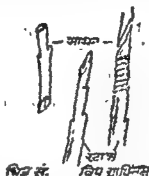
9. वीनियर ग्राफ्टिंग (Venier Grafting)—यह आधुनिक लोकप्रिय विधि है जो इनार्चिंग तथा ग्राफ्टिंग की विधियों से सरल है। इसके 2-3 वर्ष आयु के पौधे फल देने लगते हैं। आम और अमरूद में काफी अच्छी सिद्ध हुई है।

इसमें अच्छे, ओजस्वी मूलवृन्त का चयन आवश्यक है। पेंसिल की मोटाई का 1-1·5 वर्ष आयु के मूलवृन्त पर भूमि से 15-20 सेमी. की ऊँचाई पर 3-5 सेमी. लम्बा कटाव देते हैं। इसके निचले सिरे पर उसी प्रकार टेढ़ा गहरा कटाव देकर छिल्के सहित लकड़ी को हटा देते हैं।

सायन की शाख मूलवृन्त की मोटाई की पेड़ की ऊपरी शाखा को 3-6 माह पुरानी हो चुनें जिसकी लम्बाई 15-20 सेमी. हो। सायन में इसी प्रकार का कटाव लगाते हैं कि वह मूलवृन्त के कटाव में भलीभाँति फिट हो जाये। मूलवृन्त पर शाखा को बिठाकर रिक्त स्थान में मोम भरकर टेप से बाँध देते हैं।

एक दो माह में जब शाख की कलियाँ फूट जावें तो जोड़ के थोड़े ऊपर से मूलवृन्त को काट देते हैं। पौधे एक वर्ष में लगाने योग्य हो जाते हैं।

10. चोटी कलम (Topworking)—निम्न श्रेणी के पुराने वृक्षों को उच्च श्रेणी में बदलने के लिए यह विधि काम लेते हैं। इसमें वृक्षों के तनों को



कुछ ऊँचाई से काट देते हैं जिनसे नए प्ररोह निकलते हैं। इनमें से कुछ अच्छे प्ररोह चुनकर शेष काट देते हैं। इन शाखाओं पर अच्छी किस्म की शाख या कलिका को लगा देते हैं। पुरानी शाखा को काटकर नया पौधा तैयार करते हैं।

जंगली या देशी बेर, आम, बेल, सहतुआ, आँवला के पौधों पर चश्मा चढ़ाकर अच्छी किस्म में बदल सकते हैं।

(2) कलिकायन (Budding)—इसे चश्मा चढ़ाना भी कहते हैं। इस विधि में सायन से निकाली आँख या कलिका (Bud) को चुनी शाखा में अन्तःनिवेशित कर देते हैं जिसके विकसित होने पर नया पौधा तैयार हो जाता है।

कलिकायन के लिए अच्छी किस्म की कली को जंगली, देशी किस्म के मूलवृन्त पर बांधते हैं। इस विधि से सिर्फ पौधे ही तैयार किए जाते हैं बल्कि एक किस्म के पौधों को दूसरी किस्म का बना सकते हैं।

कलिकायन में ध्यान रखे जाने वाली सावधानियाँ—

1. पत्ती वाली 6-8 माह पुरानी कली का चुनाव करें जो छोटी व नुकीली हों।
2. कली को तेज धूप से बचाने के लिए शाख पर उत्तर की ओर लगाते हैं। छायादार स्थान पर कहीं भी लगा सकते हैं।
3. कलिकायन भूमि से 25-30 सेमी. की ऊँचाई पर करने से अधिक सफल रहती है।
4. कलिकायन के लिए मूलवृन्त बीज बोकर या कलम से तैयार किए जाना अच्छा रहता है।
5. कलिकायन वाली शाखा स्वस्थ एवं बंधने योग्य हो जिसका छिलका आसानी से अलग हो सके।

6. कलिका स्वस्थ व अच्छी किस्म के पौधे से लें। कली शाखा के सबसे ऊपर या नीचे से न लेकर मध्य से लेना अच्छा रहता है।
7. प्रकंद (मूलवृन्त) तथा शाख (सायन) की मोटाई व रंग समान होने पर कलिका जल्द लगती है। एकाएक नीचे से निकली हुई शाखा से कली न लें।
8. कलिकायन किसी भी विधि से की जावें यह ध्यान रखें कि तने व कली की कैम्बियम पर्तें, जो लकड़ी व छिलके के मध्य होती है, आपस में अच्छी तरह से जुड़ सके।

कलिकायन का समय—वर्ष के किसी भी समय कलिकायन कर सकते हैं। मूलवृन्त के छिलके के आसानी से अलग होने का समय अच्छा रहता है। भिन्न-भिन्न पौधों में कलिकायन अलग समय में करते हैं। संतरा आदि मे फरवरी व जुलाई में गुलाब मे जनवरी-अक्टूबर मे करते हैं। बसंत ऋतु के पूर्व जनवरी-फरवरी और जुलाई-अक्टूबर का समय अच्छा है।

कलिकायन की विधियाँ—मूलवृन्त पर विभिन्न के घर (मेट्रिक्स) बनाए जाते हैं इन्ही घरों की आकृति के आधार पर इनको अलग नामो से पुकारते हैं।

1. ढाल चश्मा (Shield or 'T' Budding)—इसमे मूलवृन्त पर दोनो कटान निवेशित होकर 'T' आकार का हो जाता है। मूलवृन्त को जमीन से 15-20 सेमी. छोड़कर 1.5 सेमी. लम्बा कट सिर्फ छाल पर लगाते हैं, दूसरा कट मध्य को छूता हुआ 2.5 से०मी. लम्बा लम्बवत लगाते हैं। ये कट सिर्फ छाल पर होकर लकड़ी पर नही हो। छिल्के को लकड़ी से चाकू की नोक से ढीला कर देते हैं।



शाखा से स्वस्थ कली को चुनकर, 1.25 सेमी. से नीचे से कटाव लेते हुए कली के 1.25 सेमी. ऊपर तक लगाकर, ढाल की आकार मे निकाल लेते हैं कली के पार्श्व से लकड़ी हटाकर मूलवृन्त पर बने घर में इस कली के नुकीले भाग (पेडीसिल) को ऊपर रखते हुए फिट कर देते हैं फिर कली के ऊपर से नीचे की ओर अलकाथीन की पट्टी बांध देते हैं।

15-20 दिनों में कली से अंकुर निकलने पर तने के ऊपरी सिरे को काटकर

अलग कर देते हैं तथा धीरे-धीरे हार्डनिंग करके यथास्थान पौध घर में लगा देते हैं। यह बेर, नींबू, सहतूत में प्रचलित है।

2. प्रतिलिपित या उल्टी 'T' (Inverted 'T' Budding)—यह उपरोक्त विधि की विपरीत है जिसमें सीधे चीरे के नीचे एक अनुप्रस्थ चीरा लगाने पर उल्टी '⊥' का आकार हो जाता है। शेष कार्य समान है।

3. पैबन्दी चश्मा (Patch Budding)—यह ढाल चश्मे की भाँति है। इसमें कली छिलके सहित आयताकार में होती है। मूलवृन्त पर कली के आकार की आकृति बनाने के लिए दो समानान्तर कटाव 1·8-2·5 सेमी. दूरी पर लगाते हैं। फिर लम्बाई के सम्बवत काट लगाकर छाल को हटा देते हैं। इस छाल हटे स्थान पर कली को फिट कर बांध देते हैं। कली के बढ़ने पर मूलवृन्त को ऊपर से काट कर मोम लगा देते हैं।

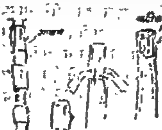
इसे किसी भी समय किया जा सकता है। लीची व अखरोट में अपनाते हैं।



चित्र सं.- पैच बडिंग

4. छल्ली चश्मा (Ring Budding)—इसमें मूलवृन्त को एक निश्चित ऊँचाई से काटने के बाद लगभग 2·0-2·5 सेमी. नीचे गोलाई में काट लगाकर सावधानी से घुमाकर छाल को हटा देते हैं।

मूलवृन्त की मोटाई की शाखा पर कली चुनकर इस गोल के 1·2 सेमी. नीचे व 1·25 सेमी. ऊपर समानान्तर छाल पर चीरा लगाकर सावधानीपूर्वक घुमाकर कली को निकाल लेते हैं। कली को मूलवृन्त पर बिठाकर मोम लगाकर बांध देते हैं।


चित्र रिंग बडिंग

इसे मोटी छाल वाले फलवृन्त बेर, आलूचा, आडू, नींबू आदि में अपनाते हैं क्योंकि छाल के मोटी होने से खींचने में आसानी होती है कली के जुड़ने में अधिक समय लगने से सफलता कम मिलती है।

5. फ्लूट चश्मा (Flute Budding)— यह छल्ला का परिवर्धित रूप है, छल्ला चश्मा में ढीलापन रहने से जुड़ाव अच्छा नहीं हो पाता है। इसमें रिंग को आँख सहित सीधा काट देते हैं जिससे यह किसी भी आकार के मूलवृन्त पर बिठाई जा सकती है।

6. 'एच' चश्मा ('H' Budding)—मूलवृन्त 'H' का कट बनाकर छाल को ढीला करते हैं। इस प्रकार छाल का एक ढक्कन ऊपर तथा एक नीचे की ओर होता है चुनी हुई शाख से मूलवृन्त पर बने काट के अनुसार पेच में कली निकाल लेते हैं। छाल हटाकर कली को बिठाकर दोनों ओर से छाल के ढक्कन को टेप से बाँध देते हैं। जुड़ने पर कली विकसित होने लगती है।

7. विण्डो बडिंग (Window Budding)—यह 'H' बडिंग की भाँति है जिसमें 'H' शक्ल का कट मूलवृन्त पर तिरछा या बेड़ा बनाकर छाल को ढीला कर लेते हैं जिससे ढक्कन खिड़की की भाँति खुलते हैं। ढक्कन के बीच में शाख से कली युक्त पैच निकालकर फिट करके बांध देते हैं।

8. चिप बडिंग (Chip Budding)—यह वीनियर ग्राफ्टिंग का ही रूप है जिसमें शाख के स्थान पर कली लगाते हैं। मूलवृन्त पर चाकू से कट लगाकर एक चिप निकाल लेते हैं फिर साइन की शाख से आँख सहित इसी तरह की चिप (लकड़ी युक्त कलिका) निकालकर बांध देते हैं। अंगूर में यह प्रयुक्त होती है।

9. फोरकर्ट बडिंग (Forcert Budding)—यह चश्मा की नवीन विधि है जिसे प्रायः आम में प्रयोग करते हैं जो पैबन्द चश्मा की भाँति है। वर्षाकाल जुलाई-अगस्त में करते हैं क्योंकि इस समय उपयुक्त नमी व ताप होने से तने में कोशिका द्रव का बहाव तीव्र गति से होने से कली शीघ्र जुड़ जाती है।

एक वर्ष की आयु का 1·5 सेमी. मोटाई का मूलवृन्त लेकर इस पर भूमि से 10-15 सेमी. की ऊँचाई पर आयताकार चिह्न बनाकर नीचे के भाग को छोड़ते हुए तीन किनारे काट देते हैं। छाल को धीरे सावधानी से नीचे के निशान तक खींचते हैं जिससे छाल लटकती हुई दशा में हो जाती है।

एक वर्ष की अधिक आयु की शाख से चुनी कलिका को, मूलवृन्त पर बने कटाव से थोड़ी छोटे आकार में, निकाल लेते हैं। कलिका को सावधानी से रखकर, लटकी छाल को उठाकर रखने से कली ढक देते हैं। अब कली और छाल को टेप से बांध देते हैं।

25-30 दिन मे यदि कली हरी रहती है तो जोड़ सफल माना जाता है।

मूलवृन्त की लकड़ी से मिलकर कैम्बियम बनने से कली हरी रहती है। लटके छिलके को काटकर कली को सावधानी से प्लास्टिक पट्टी से बांध देते हैं।

चश्मा लगाने के लगभग 30-40 दिनों में कली से प्रांकुर विकसित होने पर मूलवृन्त को ऊपर से काटकर मोम लगा देते हैं। अच्छी देखरेख करने पर पौधा एक वर्ष में स्थाई स्थान में लगाने योग्य हो जाता है।

वानस्पतिक प्रसारण से लाभ :

1. देशी तथा जंगली किस्म के पौधों को अच्छी किस्म का बना सकते हैं।
2. बौने तथा सुडौल पौधे तैयार होते हैं।
3. पौधे शीघ्र फलन देते हैं।
4. अच्छी किस्म के पौधों को स्वस्थ-मजबूत बना सकते हैं जिससे वे विभिन्न प्रतिकूल स्थिति से वृद्धि कर सकते है :
5. इच्छानुसार बीज रहित फल वृक्षों के पौधे आसानी से तैयार कर सकते हैं।
6. अन्य विधियों से पौधे तैयार न होने पर ग्राफ्टिंग से आसानी से तैयार किए जा सकते हैं।
7. पुराने, आंधी आदि से नष्ट पौधों को सुधार सकते हैं।
8. अपेक्षाकृत अधिक उत्पादन प्राप्त होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. उद्यान में पौधा प्रसारण की आवश्यकता क्यों होती है ?
2. अनार के पौधे किस विधि से तैयार किए जाते हैं ? सचित्र वर्णन कीजिए ?
3. दाब लगाने का सर्वोत्तम काल.......है।
4. वायवीय दाब (गूटी) की सफलता के लिए जल व्यवस्था.....पर करना चाहिये।
5. संतरा, गुलाब, आम के पौधे तैयार करने के लिए किन-किन विधियों को अपनाते हैं और क्यों ?
6. केले का पौधा कैसे तैयार किया जाता है ?
7. निम्न पर टिप्पणी लिखिए—

   (i) मूलवृन्त का चुनाव, (ii) वीनियर ग्राफ्टिंग
   (iii) मेट्रिक्स (iv) चोटी कलम
   (v) आई० बी० ए०।

वृक्षारोपण
(Plantation)

उद्यान की भूमि की पर्याप्त जुताई आदि करके सिंचाई तथा जल-निकास की नालियाँ बनाने के बाद वृक्षों के लगाने की दूरी के अनुसार अंकन कर लेना चाहिए। फिर इन्ही स्थानों पर गड्ढों की खुदाई करके खाद आदि भरकर पौधों को लगाते हैं।

भूमि तैयारी के बाद निम्न क्रियाएँ की जाती हैं।

पौधों की पारस्परिक दूरी—प्रत्येक पौधे की उचित वृद्धि के लिए उचित स्थान होना चाहिए। अधिक घने पौधे लगाने से वायु तथा प्रकाश प्रवेश नही हो पाता है तथा वृक्षो को भोजन लेने में होड करनी पड़ती है। साथ ही अंतःकृषि क्रियाओ में असुविधा होती है जिनके फलस्वरूप समान व अच्छा फलन नही होता है।

प्रत्येक किस्म के पौधों को लगाने के लिए औसत दूरी उनके परिणाम के अनुसार रखी जाती है। फल वृक्षो की उचित दूरी निम्न सारणी मे दी गई है—

फल-वृक्षों की उचित दूरी

फल-वृक्ष का नाम	पंक्ति की दूरी	वृक्ष की दूरी
केला	2·5	2·5
पपीता	2·5	2·5
फालसा	3·0	3·0
अंगूर	2·5—3·0	2·5—3·0
अनार	3·5—7·0	3·0
अमरूद	5·0—8·0	5·0—8·0
आँवला	7·5—9·0	7·5—9·0
आम	9·0–12·0	9·0–12·0
बेर	12·0	12·0
नीबू प्रजाति के फल-		
माल्टा	5·0	5·0
संतरा	5·5	5·5
ग्रेपफ्रूट	6·0	6·0
आलू बुखारा	5·5	4·5
आडू	4·5	4·5

गड्ढे खोदना—गड्ढे का उचित माप 0·9 × 0·9 × 0·9 मीटर है। बड़े पौधों के लिये 1·0 से 1·5 मीटर तक बढ़ाया जा सकता है। नीबू प्रजाति तथा छोटे वृक्षों के यह माप 0·6 × 0·6 × 0·6 मीटर रखा जाता है।

गड्ढे को पौध लगाने के 2-3 माह पूर्व गर्मियों में खोदना चाहिये। खुदी हुई मिट्टी को किनारे पर डाल देना चाहिये जिससे धूप से हानिकारक कीड़े नष्ट हो जावें। गड्ढों को भरने के लिए एक भाग अच्छी सड़ी गोबर या कम्पोस्ट खाद, 2 भाग खुदी मिट्टी तथा 200 ग्राम 5% बी. एच. सी. का प्रयोग करना चाहिये। कच्ची खाद प्रयोग नहीं करनी चाहिये। यह गड्ढे में गर्मी पैदा करेगी तथा दीमक लगने का भय होगा। खाद और मिट्टी के मिश्रण से गड्ढे को जमीन की सतह से 15-20 सेमी. ऊँचा भरकर तथा पानी देकर मिट्टी को बैठने देते हैं।

(3) पौधे लगाने का समय—पौधों को लगाने के समय के अनुसार दो भागों में बाँटते हैं—

(अ) पतझड़ वाले पौधे (डेसीडुग्रस)—इन पौधों की पत्तियाँ जाड़े में गिर जाती हैं क्योंकि ये सुप्तावस्था में रहते हैं जिससे इनकी जीवन-क्रिया मन्द हो जाती है। इनको फरवरी-मार्च में लगाना चाहिये। जैसे—सेब, नाशपाती, आड़ू, अलूचा अंगूर आदि।

(ब) बिना पतझड़ वाले पौधे (नॉन डेसीडुग्रस)—इन पौधों की पत्तियाँ सर्दी में पूरी नहीं गिरती हैं। इनको लगाने का उपयुक्त समय जुलाई-अगस्त है जबकि काफी नमी रहती है। इन्हें फरवरी-मार्च में भी लगाया जा सकता है, परन्तु अच्छी सफलता नहीं मिलती है।

जहाँ तक संभव हो रोपण शाम के समय करनी चाहिये जिस समय वातावरण में अधिक नमी और धूप न हो।

(4) पौधों का चुनाव—उद्यान में पौधों को लगाने के लिये यह आवश्यक है कि पौधे अच्छी किस्म के पूर्ण स्वस्थ हों। इसके लिए निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये—

(i) पौधे पौध घर क्षेत्र से चुनने चाहिये।
(ii) विश्वसनीय नर्सरी से पौधों को स्वयं खरीदना चाहिये।
(iii) पौधों की आयु 1-1½ वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिये।
(iv) पौधा पौध क्षेत्र में 1-2 बार बदला जा चुका हो जिससे रोपण में कम हानि हो।
(v) कलम तथा चश्मा अच्छे किस्म के पेड़ से होना चाहिये।
(vi) कलम मूलवृन्त पर अच्छी तरह मजबूती से जुड़ा हो जिससे हवा से टूटने का कम भय हो।
(vii) पौधा स्वस्थ एवं मजबूत एवं कीट-रोग रहित होना चाहिये।

पौध घर से पौधों को निकालना—उद्यान की पौध घर में तैयार किये गये पौधों को बहुत सावधानी से निकालना चाहिये। निकालने से पूर्व हल्की सिंचाई करने से पौध का पिण्ड ठीक निकलता है।

पौधे के चारों ओर 10-12 सेमी. व्यास का घेरा बनाकर मिट्टी को खुरपी से 30-35 सेमी. गहराई तक सावधानी से खोदना चाहिये। फिर नीचे से पौधे को मिट्टी सहित उठा लेते हैं। किनारे की अस्थानिक जड़ों को काट देना चाहिये।

बाहर से मंगाये पौधे—बाहर से मंगाये पौधों को छायादार स्थानों पर रखकर पानी से सींच देना चाहिये। साथ ही कुछ पत्ते तोड़ देना चाहिये जिससे उत्स्वेदन कम हो।

(5) पौधे लगाना—पौधों को गड्ढों में लगाते समय निम्न बातों को ध्यान मे रखना आवश्यक है—

1. लगाने से ठीक पहले लिपटी हुई बांस या टाट के टुकड़े को सावधानी-पूर्वक हटा देना चाहिये।
2. गड्ढे के बीच में उतनी सी मिट्टी निकालें जिसमें मिट्टी के गोले के साथ पौधे की जड़ें उसमें आसानी से बैठ जायें।
3. पौध लगाते समय यह ध्यान रहे कि पौधे के चश्मे का स्थान या प्रकंद और शाख के जुड़ाव का स्थान भूमि-तल से 22 सेमी. ऊपर रहना चाहिये।
4. पौधे को गड्ढे में सीधा लगाना चाहिये और जड़ों को स्वाभाविक दशा मे रखना चाहिये।
5. पौधों को लगाने के बाद मिट्टी को चारों तरफ जड़ों के आसपास दबा देना चाहिये जिससे गड्ढे की मिट्टी पौधे की मिट्टी से मिल जावे और वायु अन्दर प्रवेश न कर सके। पौधे के पास से बाहर की ओर भूमि ढालू रहे जिससे पानी तने के पास न आ सके।
6. पौधे को लगाने के तुरन्त बाद पानी दे देना चाहिये तथा पौधे को लकड़ी से सहारा देना चाहिये।
7. पौधे लगाने के बाद शाखाओं का $\frac{1}{4}$ या $\frac{1}{3}$ भाग आवश्यकतानुसार छाँट देना चाहिये।
8. पौधों को यथासंभव एक पंक्ति में लगाना चाहिये जिससे कृषि क्रियाओं में सुविधा रहे।
9. बाहर से मंगाये पौधो को छाँटकर छाया में रखना चाहिये तथा धीरे-

धीरे धूप में से जाकर निश्चित हो जाना चाहिये कि धूप में जी सकता है, तभी लगाना चाहिये। इस क्रिया को *'हार्डनिंग'* कहते हैं।

10. पौध लगाने के बाद तेज धूप, शुष्क हवाओं से बचाव का प्रबन्ध करना चाहिये।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. निम्न फलों के पौधों की दूरी बताओ।
   केला, अंगूर, आम, पपीता।
2. उद्यान में पौध लगाने के लिए किस प्रकार पौधों का चयन करोगे?
3. निम्न पर टिप्पणियाँ लिखो—
   (i) पौध घर से पौधे निकालना
   (ii) पौध लगाने का समय।

पौधे के लगाने के बाद की देखभाल

(Care after Plantation)

उद्यान मे पौधे के लगाने के बाद पहिले 2-3 वर्षों तक हानि से बचाने के लिये ध्यान रखने से अच्छे परिणाम मिलते हैं। बाग में पेड़ लगाने के बाद सही देखभाल न करने से पेड़ नष्ट हो जाते हैं तो उसे बदल देते हैं। परन्तु इस तरह की उदासीनता से काफी हानि होती है।

अतः उद्यान को ठीक ढंग से रखने के लिये निम्न का ध्यान रखना चाहिए—

1. सिचाई
2. खाद
3. निराई-गुड़ाई
4. काट-छांट
5. फलों का विरलीकरण
6. अन्तराशस्य, आवरणशस्य।

1. सिचाई—पौधों के लिए पानी देना अत्यन्त आवश्यक है। यह पौधो के आवश्यक कार्यों में सहयोग के अलावा भूमि मे उपलब्ध भोज्य तत्वों को घुलाकर भोजन की आवश्यकता की पूर्ति करता है।

सिंच ई की संख्या तथा मात्रा को भूमि, भूमि की संरचना, उपस्थित जीवांश पदार्थ, भूमि का जल स्तर तथा पौधों की किस्म, जलवायु तथा कृषि क्रियायें आदि कारक प्रभावित करते हैं। सिंचाई को उचित समय पर करना आवश्यक होता है। इसके लक्षण भूमि व पौधों से दिखने लगते हैं। नमी ज्ञात करने वाले यन्त्र से भी जल की कमी का पता लगाया जा सकता है।

सिंचाई की विधियां—

उद्यान के वृक्षो की सिंचाई में निम्नलिखित विधियाँ काम में आती हैं—

(1) सीधी नाली विधि (Straight Channel Method)—इसमें उद्यान

के एक सिरे पर सिंचाई की मुख्य नाली बनाते हैं इससे वृक्षों की पंक्ति के साथ सीधी सिंचाई की नाली बना देना देते हैं। पानी को नालियों में छोड़ने पर प्रत्येक वृक्ष को पानी मिल जाता है।

अधिक पानी चाहने वाले फल-केले आदि को इसी विधि से पानी देते हैं।

गुण—1. सिंचाई के पानी की बचत होती है।

2. सिंचाई के समय कम देखरेख करनी पड़ती है।

दोष—1. मृदा कटाव की आशंका रहती है।

2. प्रारम्भ के वृक्षों के खाद तत्व बहकर नष्ट हो जाते हैं।

3. पानी के द्वारा रोग प्रसार हो जाता है।

4. पंक्ति के अन्तिम पौधों को कम पानी मिल पाता है।

(2) साधारण थाला विधि (Basin system)—इसमें फल वृक्षों के चारों ओर प्यालेनुमा बने थाले को छोटी नालियों से जोड़ देते हैं। इस नाली का सम्बन्ध मुख्य सिंचाई नाली से होता है जिससे पानी एक सिरे से चलकर पंक्ति के सभी पौधों की सिंचाई करता जाता है।

गुण—1. मृदा कटाव कम होने के साथ पौधों को पर्याप्त पानी मिल जाता है।

2. सिंचाई पानी का कम ह्रास होता है।

3. व्यय व श्रम कम लगता है।

दोष 1. वृक्ष के तने से पानी के सीधे सम्पर्क में आने से तना व जड़ गलन रोग विशेष तौर पर पपीते में हो जाते हैं।

2. रोगों का प्रसार एक दूसरे वृक्षों में होने की संभावना रहती है।

(3) वलयाकार विधि (Ring System)—इस विधि में पौधों के तने के चारों ओर कुछ ऊँचाई तक मिट्टी चढ़ाकर आकार के अनुसार गोल थाले बना देते हैं। थालों का आकार, गहराई पौधे पर निर्भर करता है। इन दो थालों को सिंचाई की सहायक नालियों से जोड़ देते हैं।

गुण—1. अच्छी विधि है जिसमें पौधों को सीमित मात्रा में जल मिलता है।

2. पौधों के तने के सम्पर्क में सीधे पानी के सम्पर्क में न आने से रोग नहीं हो पाते हैं।

3. पौधों के मूल क्षेत्र को पानी मिलने से जड़ों की वृद्धि अच्छी होती है।

दोष—1 वलय बनाने में श्रम व समय अधिक लगता है।

2. पौधों की वृद्धि के साथ वलय का आकार बढ़ाने से खर्च बढ़ता जाता है।

(4) *छिड़काव विधि* (Sprinkling Method)—यह उद्यानों में अ
से प्रयोग की जाती है। दो तरीके हैं—

(i) *हजारा विधि* (Rosecane Method)—यह सीमित क्षेत्र के घर छोटे पौधे, गमलों, फूलों को क्यारियों में थोड़ी मात्रा में पानी देने में प्र करते हैं। हजारे जो धातु के बने होते हैं इसमें पानी नलिका के द्वारा फु के रूप में बाहर आता है। हजारे में बाल्टी से पानी भरते हैं।

(ii) *फौव्वारी विधि* (Sprinkler Method)—वर्तमान में यह अधिक से उद्यानों, पार्क, बगीचों में प्रयुक्त होने लगी है। इसमें दिया जाने वाला पानी व की बूँदों की भाँति गिरता है। वृक्षों के मध्य अल्यूमीनियम, लोहे या प्लास्टिक पाइप स्थाई या अस्थाई रूप से लगा देते हैं जिन पर बीच-बीच में छोटी नली हो है। नलों में पानी को दबाव से भेजने पर यह ऊँचाई में फव्वारे की तर निकलता है।

गुण—1. पौधों को आवश्यकतानुसार पानी दिया जा सकता है।

2. पौधों के ऊपर पानी गिरने से साफ रहते हैं, कीट व रोग का प्रकोप कम होता है।

3. वातावरण नम रहने से पौधों को वर्षा की भाँति लाभ मिलता है।

दोष—1. उपकरण क्रय करने में काफी व्यय होता है।

2. वाष्पीकरण द्वारा पानी अधिक नष्ट होता है।

होज पाइप (Hose pipe)—रबड़ या प्लास्टिक के बने होजपाइप से लान, फूलों की क्यारियों को पानी देते हैं। कभी-कभी पाइप के सिरे पर फव्वारा लगाकर गमलों आदि में भी पानी दिया जाता है।

(5) *टपकेदार विधि* (Drip System)—यह कम वर्षा वाले शुष्क क्षेत्रों तथा सीमित पानी चाहने वाले वृक्षों में सिंचाई की अच्छी विधि है। इसमें पाइप को भूमि के अन्दर डालकर पौधों के मूल क्षेत्र (Root Zone) में पानी दिया जाता है जिससे धीरे-धीरे पानी मिलता रहता है।

गुण—1. पानी तथा श्रम की बचत होती है।

2. उर्वरक तथा अन्य रसायनों की अल्प मात्रा दी जा सकती है।

3. पौधों की अच्छी वृद्धि होती है।

दोष—1. नलों तथा उपकरणों पर अधिक व्यय होता है।

2. अपेक्षाकृत स्वच्छ पानी आवश्यक है।

सिंचाई करना

फलों के उद्यान के लिए वलय विधि
तोड़ देते हैं जिससे पानी न भरे। प्रतिकूल
फसलों की सिंचाई प्रवाह तथा क्यारियों

सिचाई करना— फल वृक्षों में सिंचाई की मात्रा, संख्या कई कारकों पर निर्भर करती है फिर भी सामान्य रूप में उद्यानों की सिंचाई निम्न प्रकार से करते हैं।

सिंचाई पहले दो वर्ष तक—

1. पौध लगाने के बाद 3-4 दिन के अन्तर पर एक माह तक सिंचाई करनी चाहिये।
2. प्रति सप्ताह 6 माह तक सिंचाई करनी चाहिये।
3. वर्षा में पौधों को लगाने पर सिंचाई आवश्यकतानुसार नहीं होती है।
4. सर्दी में 15 दिन के अन्तर पर तथा बसन्त काल मे 10 दिन के अन्तर पर सिंचाई करनी चाहिये।
5. मई-जून में प्रति सप्ताह सिंचाई करके गुड़ाई अवश्य करनी चाहिये।

तीसरे और चौथे वर्ष—

1. वर्षा काल में सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है और नवम्बर-फरवरी तक माह में एक बार सिंचाई करनी चाहिये।
2. मार्च से अप्रैल तक 15 दिन में एक बार तथा मई-जून में 10 दिन के अन्तर पर सिंचाई करनी चाहिये।
3. फूल आने के बाद फल की वृद्धि के समय सिंचाई करने से फल की वृद्धि अच्छी होती है।

सिंचाई करने के बाद यह आवश्यक है कि यह पानी भूमि में संचय होकर पौधों के काम आये जिसके लिये उद्यान की आवश्यकतानुसार जुताई, जीवांश खादों का प्रयोग निराई-गुड़ाई करनी चाहिये।

2. **खाद**—सफल उद्यानगी के लिए आवश्यक है कि फल वृक्षों को उचित मात्रा मे उचित समय पर खाद-मिश्रण दिया जाना चाहिये। फल वृक्षों में विकास की दो श्रेणियाँ, अंकुरण तथा विकास है। अंकुरण के लिए बीजों में संग्रहित भोज्य तत्व काम आते हैं जबकि विकास के लिये इसे भूमि तथा वातावरण से भोजन लेना पड़ता है। वृक्षों के विकास तथा फलन के समय भी भोजन की विशेष आवश्यकता होती है।

पौधों की वृद्धि के लिए 16 तत्वों कार्बन, ऑक्सीजन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश, मैग्नीशियम, कैल्शियम, गन्धक, क्लोरीन, लोहा, मैंगनीज, ताँबा जस्ता, बोरान, मोलिब्डिनम की आवश्यकता होती है। इनमें कार्बन, ऑक्सीजन तथा हाइड्रोजन, पानी तथा Co_2 से प्रचुर मात्रा में सदैव मिलते हैं। अन्य तत्वों को आवश्यकतानुसार तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

(1) प्रमुख तत्त्व—नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश।

(2) द्वितीय तत्त्व—कैल्शियम, मैग्नीशियम, गन्धक, क्लोरीन।

(3) सूक्ष्म मात्रिक तत्त्व—लोहा, मैंगनीज, ताँबा, जस्ता, बोरान, मोलिबिडेनम।

पौधे इन तत्त्वों को आयन के रूप में मिट्टी के घोल से जड़ों द्वारा लेते हैं। इन तत्वो का पौधों की वृद्धि और विकास मे अलग-अलग कार्य है तथा इनके स्रोत अलग-अलग हैं।

भूमि में इन तत्त्वो की कमी तथा अधिकता का प्रभाव पौधो पर तुरन्त होता है। पौधों के विशेष लक्षणों से तत्त्वों की कमी तथा अधिकता प्रकट हो जाती है। संतुलित विकास के लिये इनकी पूर्ति विभिन्न साधनों से की जाती है।

खाद तत्त्वों के साधन—(1) जीवांश खादें गोबर, कम्पोस्ट, हरी खाद, पत्ती की खाद।

(2) उर्वरक—नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश तत्त्व देने वाले उर्वरक, मिश्रित उर्वरक तथा सूक्ष्म तत्त्वों के मिश्रण।

मात्रा का निर्धारण—उद्यान वृक्षों मे वृक्ष लगाने से पूर्व मृदा की जाँच द्वारा उसका पी. एच. मान तथा पोषक तत्त्वों के स्तर की जानकारी करा लेना चाहिये। फल वृक्षों के लिये 6·5 पी. एच. मान अच्छा रहता है। इसके अलावा पेड़ पर दिखाई देने वाले लक्षणों तथा पत्ती का रासायनिक विश्लेषण भी कराना अच्छा रहता है जिसके आधार पर मात्रा का निर्धारण करना चाहिये।

इसके अलावा फल पौधो की वृद्धि, फलन में आवश्यक तत्त्वों की मात्रा का ज्ञान होने पर विभिन्न खादों व उर्वरको का चयन कर लेना चाहिये जिनका भूमि तथा पौधों पर अच्छा प्रभाव पड़े।

फल वृक्षों को खाद देने में कुछ विशेषताएँ अपनानी पड़ती हैं क्योंकि—

(i) भूमि में एक बार लगाने पर उसी स्थान पर कई वर्षों तक लगे रहते हैं।

(ii) इनकी जड़ें काफी गहरी जाती हैं।

(iii) प्रारम्भ के 3-5 वर्ष तक की वृद्धि के बाद फूलते-फलते हैं।

(iv) फल वृक्ष अपने तने में शर्करा पदार्थ संचय करते हैं।

(v) फल वृक्षों में प्रति वर्ष नियमानुसार सुप्तावस्था, वृद्धि तथा फलन होता है।

इसी कारण प्रत्येक वृक्ष की आवश्यकता को ध्यान में रखकर खादों की मात्रा नियत की जाती है।

खाद प्रयोग करना—फल वृक्षों में खाद देने के लिए निम्न बातों को भी ध्यान में रखना चाहिए—

(i) जीवांश खादों का प्रयोग किया जावे जिससे मृदा संरचना में सुधार हो।

(ii) उर्वरकों का प्रयोग अधिकांश फलन के समय किया जावे।

(iii) फल वृक्षों में खाद कृन्तन के बाद दी जावे।

(iv) फल वृक्षों की आयु बढ़ने के साथ-साथ खाद की मात्रा बढ़ा देनी चाहिये।

फल पौधों को गड्ढों मे रोपाई के बाद तने के चारों ओर 15-18 सेमी. की दूरी पर मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए जिससे पानी व उर्वरक पौधे के सीधे सम्पर्क में न आवे।

पौधे की उम्र बढ़ने के साथ थाले का आकार बढ़ाते रहना चाहिये और मिट्टी का घेरा एवं ऊँचाई बढ़ा देनी चाहिए। पेड़ के चारों ओर करीब 60-70 सेमी. मिट्टी चढ़ा देनी चाहिये।

फल वृक्ष की पूरी वृद्धि करने पर थाले बढ़कर मिल जाते हैं तो इनको नालियों से जोड़ देना चाहिए जिससे सिंचाई में सुविधा रहे।

थालो की खुदाई करके 0·6-0·75 मीटर गहराई पर खाद मिला देना चाहिए क्योंकि भोजन लेने वाली पतली जड़ें इसी गहराई पर होती हैं परन्तु थाले की खुदाई के समय जड़ें नहीं कटनी चाहिए।

खाद देने का समय—खादो को ऐसे समय में दिया जावे जबकि पौधों को पोषक तत्वों की अधिक आवश्यकता हो खादो को अधिकांश फलो की नई वृद्धि काल-बसन्त ऋतु में देना चाहिये क्योंकि पेड़ों मे नया फुटान और फूल आते हैं तथा फल भी इसी समय लगते हैं।

खादो के तत्व पौधों को कितने समय ग्राह्य हो जाते हैं इसका ज्ञान होना चाहिये। इसलिये जीवांश, फास्फोरस खाद अक्टूबर-नवम्बर, पोटाश के उर्वरक दिसम्बर तथा नत्रजन उर्वरक जनवरी के अन्त या फरवरी के प्रारम्भ मे देना चाहिये।

आम, अंगूर, सेब आदि पौधो पर यूरिया के 1-2 प्रतिशत के घोल का छिड़काव लाभप्रद पाया गया है। सूक्ष्म तत्वो को वृक्षों की जड़ों में दिया जाता है तथा इनको छिड़काव या सिंचाई के पानी के साथ भी दिया जा सकता है।

3. निराई-गुड़ाई—उद्यान में उगे खरपतवार पौधों की वृद्धि में बाधा पहुँचाते हैं। इनको सिंचाई के बाद ओट आने पर निकाल देना चाहिये। खरपतवारों को नियंत्रण के लिए रसायनों का प्रयोग किया जा सकता है। [खेत की बार-बार जुताई करने से वृक्षों की खुराक खींचने वाली जड़ें, जो भूमि से 45-60 सेमी. की गहराई तक होती हैं, को हानि होती है।

वर्षा में उगे खरपतवारों के बढ़ाने पर इनको मिट्टी पलटने वाले हल से दबा देना चाहिये जो सड़-गल कर जीवांश पदार्थ मे वृद्धि करते हैं।

4. फल वृक्षों की संधाई एवं काट-छांट (Training & Pruning of

Fruit Plants)—फल वृक्षों को एक विशेष आकार देने के लिए आवश्यक काट-छांट को 'संधाई' कहते हैं।

वृक्ष को एक मजबूत आकार प्राप्त होने के साथ शाखायें निश्चित क्रम मे सही स्थान पर निकलती हैं जिससे कृषि क्रियाओं में आसानी रहती है तथा फल तोड़ने में सुविधा रहती है।

संघाई के विभिन्न तरीकों में पौधों की शाखाओं को प्रारंभ से इस प्रकार काटते हुए विशेष ढांचा (Shape) दिया जाता है जिससे उसकी मजबूती और सुन्दरता बढ़ती है। पौधों की अच्छी वानस्पतिक वृद्धि के साथ पुष्पन और फलन बढ़ता है।

विभिन्न प्रकार के पौधे, लताए और झाड़ियों को संधाने की विधियां अलग हैं जो पौधो की किस्म, स्थान, जलवायु तथा बागवान की रुचि पर निर्भर करता है।

लताओं की संधाई—विशेष बेलों, अंगूर, बोगेनविला आदि मे संधाई निम्न रूपों मे करते हैं—

निफिन विधि—लता को दो या तीन तारो के साथ सहारा देकर शाखाओं को भूमि के समानान्तर निश्चित दूरी पर शाखाओं को निश्चित अन्तर पर बढ़ने देते हैं।

टेलीफोन विधि—उद्यान मे निश्चित दूरी पर 3 मीटर लम्बे खम्भे 8-10 मी. की दूरी पर लगा देते है। किनारों पर 6×6×6 मीटर का फ्रेम काम मे लेते हैं। खंभो के सिरों पर 1·25 मीटर लम्बी एंगिल्स की भुजा समानान्तर लगाकर 'टेलीफोन के खंभें' (T) की भांति बन जाती है जिन पर दोनों ओर तार बांध देते हैं।

बेलों के 2·5 मीटर ऊंचे होने पर ऊपर की कली तोड़ देते हैं जिससे सिरे के नीचे वाली कलियां शाखाओं में विकसित होती हैं। इनकी दो स्वस्थ शाखाओं को तार के साथ बांधकर सहारा देकर बढ़ने देते हैं। शाखाओं के एक मीटर लम्बी होने पर काट-छांट करके 10-12 तृतीय शाखायें रहने देते हैं।

पौधों की संधाई—साधारण तौर पर पौधे की संधाई के लिए उनको बढ़ने देते हैं। इनकी 0.9 मीटर की ऊँचाई तक की सभी शाखाओं को काट देते हैं फिर पौधो को वांछित आकार प्रदान करने के लिए उचित विधि प्रयोग करते हैं।

1. अग्रणी विधि (Leader System)—इसमें पौधो के मुख्य तने को बढ़ने देते हैं जिससे चारो ओर बहुत-सी शाखाएं निकली होती हैं। पौधे के अधिक बढ़ने पर तना और शाखाएं ऊपर से काटी जाती हैं जिससे यह झाड़ीनुमा दिखता है। पौधे का आकार मजबूत हो जाता है।

2. बीच में खुली या गुलदान विधि (Open Centre or Vase Shaped)—पौधे प्राकृतिक रूप में बढ़ते रहते हैं। प्रारम्भ में ऊपर से पौधे को काट देते हैं जिससे शाखायें तने के चारों ओर निकलती हैं ऊपर की शाखाओं को नीचे की शाखाओं से लम्बी रखते हैं। नीचे की शाखाओं की अपेक्षा नीचे की शाखायें तेजी से बढ़ती हैं और पौधा ऊपर से खुला दिखाई देता है। शाखायें फैलकर एक चौड़े मुँह के गुलदान का आकार ले लेती हैं।

परिवर्तित अग्रणी विधि (Modified Centre Leader System)—यह अग्रणी विधि का परिवर्तित रूप है। इसमें पौधों के मुख्य तने को बढ़ने देते हैं फिर काट देते हैं जिससे नीचे की शाखाओं से अधिक न बढ़े। किनारे की शाखाओं को थोड़ी दूरी से काट देते हैं और शेष शाखाओं को निश्चित अन्तर पर बढ़ने देते हैं। इस प्रकार पौधा खुला हुआ चारों ओर फैला दिखाई देता है। सेब के पौधों की संधाई इसी विधि से करते है।

आधुनिक संधाई विधियों में इटेलियन पामेटा, स्पिण्डिल बुश, पिरामिड तथा हेजरो विधियाँ प्रमुख हैं।

इटेलियन पामेटा विधि—इसमें पौधे के मुख्य तने से 30 सेमी० की दूरी पर बगल की शाखाओं को बढ़ने देते हैं। जमीन से 60, 120, 180 सेमी० की दूरी पर तार बांधकर शाखाओं को इन्हीं पर संधाते हैं। पंक्ति की दूरी 3·5 मीटर तथा पौधे की दूरी 2-3 मीटर रखते हैं। शाखाओं को एक दूसरे के सामने नहीं रखते हैं।

स्पिण्डिल बुश विधि—सेब की बौनी किस्मों में प्रयुक्त की जाती है। इसमें कोई एक शाखा को मुख्य न मानकर वृक्ष के आधार से शाखाओं को पंखे की तीली के अनुसार विकसित होने देते हैं।

पिरामिड विधि (Pyramidal Training)—यह झाड़ीदार तथा शोभनीय वृक्षों में अपनाते हैं। खुले मैदान तथा रास्ते के किनारे पर लगाने पर सुन्दर दिखते हैं। पेड़ को 2·75 मीटर से अधिक नहीं बढ़ने देते हैं। भूमि से 45 सेमी० की ऊँचाई तक की बगल की शाखाओं को पूरा तथा अन्य को आधा काट देते हैं। यह कटाई गर्मी में की जाती है। काट-छांट करने से पेड़ पिरामिड की भाँति दिखाई देते हैं।

हेजरो विधि—इस विधि का मुख्य उद्देश्य प्रति हेक्टर अधिक वृक्षों को लगाना है। पौधों को ऊपर तथा बगल की शाखाओं को मशीन से हल्का काटते रहते हैं। सभी वृक्ष एक से दिखाई देते हैं। नींबू, आड़ू, अलूचे में यह प्रयोग की जाती है। पंक्ति की दूरी 3·60 मीटर तथा पौधे की दूरी 2·40 रखने से इस विधि से काफी अधिक पौधे लगाए जा सकते हैं।

काट-छांट (Pruning)—पौधों की काट-छांट इनकी वृद्धि और फलन में सामंजस्य लाने के लिए करते हैं जिससे ये कई वर्षों तक अच्छे गुणों के फल अधिक मात्रा में देते हैं। काट-छांट के समय मिट्टी तथा पौधे का ध्यान रखना आवश्यक है। काट-छांट के समय पेड़ में नाइट्रोजन तथा अन्य खाद तत्वों को उचित मात्रा में होने पर वानस्पतिक वृद्धि कम होगी तथा कार्बोहाइड्रेट की मात्रा बढ़ेगी जिससे फलन अधिक होगा।

पौधों में नई वृद्धि से फलन अच्छा होता है। पौधों की कांट-छांट के समय कितनी काट-छांट करें इसके लिए पौधों की उचित हल्की काट-छांट करते हैं जिससे नए प्ररोह उचित वृद्धि करते रहें।

सूखी, कमजोर, रोगग्रस्त तथा अनावश्यक शाखाओं को काटते हैं काट-छांट के समय पौधों के फलन के स्वभाव का ज्ञान आवश्यक है कि फल वृक्ष कितनी पुरानी शाखा पर फूल-फल अच्छा देता है। यदि फूल एक वर्ष पुराने प्ररोह पर आते हैं तो काट-छांट गहरी करें जिससे अगले वर्ष फलन के समय नए प्ररोह मिल सकें और वर्तमान में आवश्यक से अधिक फूल-फल उत्पादन हो सके।

1. पौधों की प्रारम्भिक कृंतन—प्रारम्भ का पौधा कल वृक्ष बनेगा जिसकी प्रारम्भ से कटाई-छंटाई कर उसे सुन्दर, स्वस्थ एवं सुडौल आकृति प्रदान करनी चाहिए। काट-छांट का तरीका, उनकी ट्रेनिंग तथा प्रकन्द पर निर्भर करती है। नये पेड़ों को शुण्डाकार, गुलदान या रूपान्तरित गुलदान का आकार प्रदान करते हैं। रूपान्तरित गुलदान आकृति कृंतन की सर्वोत्तम विधि है।

2. वृक्षों की काट-छांट—अच्छे फलन वाले वृक्षों की गहरी काट-छांट के तीन वर्ष तक फल कम लगते है, परन्तु पतझड़ वाले वृक्षों की प्रति वर्ष थोड़ी काट-छांट करने से नई लकड़ी हमेशा आती रहती है। सूखी, कमजोर तथा रोग ग्रस्त शाखाओं को काट कर निकाल देना चाहिए।

पतझड़ वाले वृक्षों की छंटाई प्रति वर्ष शीत ऋतु में फल लगने पर करनी चाहिये जबकि ठण्डी जलवायु तथा सदाबहार वृक्षों की कम छंटाई की जाती है।

पौधों की काट-छांट कृंतन चाकू, आरी, सिकेटियर, कृंतन कैंची, ट्री प्रूनर, कुल्हाड़ी आदि से की जाती है। ऊंची शाखाओं को ट्री-प्रूनर से काटते हैं। पतली शाखाओं को काटने के लिए हल्का चाकू, हल्की मोटी शाखाओं को कृंतन कैंची, सिकेटियर तथा मोटी शाखाओं को कृंतन चाकू, आरी, कुल्हाड़ी से काटी जाती है।

साधारण तौर पर पौधों की काट-छांट के बाद शाखा के कटे भागों के खुले भाग (घाव) स्वतः ही भर जाते हैं, परन्तु कभी इनके न भरने पर तथा किन्हीं कारणों से बड़े घाव बन जाते हैं जिनकी मरहम पट्टी की जावे। ड्रेसिंग में कुछ पदार्थ

वार्निश, सीसे का सफेदा, अलसी का तेल, लैम्प का पानी, ग्राफिटम मोम, कोलतार के अलावा अल्फास्टवेस प्रयोग करते हैं।

जड़ों की छंटाई (Root Pruning)—उद्यान के फूल, वृक्ष, वानस्पतिक वृद्धि से काफी स्वस्थ एवं सुन्दर दिखाई देते है, परन्तु इनसे, फूल तथा फल कम या बिल्कुल नहीं आते हैं, कभी-कभी झड़ भी जाते हैं। इनको जड़ो की कटाई से रोका जा सकता है।

साधारणतया जड़ो की काट-छांट का वृक्ष की वृद्धि तथा उत्पादन पर बुरा प्रभाव पड़ता है। जड़ो की छंटाई फूल आने से पूर्व अक्टूबर-दिसम्बर तक करनी चाहिए।

वृक्ष के नीचे तने के चारों ओर 30-60 सेमी० चौड़ी और 0 60-0·75 मीटर गहरी नाली बनाते है जिसकी कुछ मिट्टी तने के साथ तथा कुछ नाली से बाहर डाल देते है। पतली जड़ें जो नाली के बीच आ जाती है उनको तेज कैंची से काट देते हैं। अंगुली से मोटी जड़ों को नहीं काटना चाहिए। नालियो मे 10-15 दिन धूप लगने के बाद खाद और मिट्टी से भरकर सिंचाई कर देते हैं।

जड़ों की छटाई ठण्डे स्थानो पर जरूरी है, गर्म स्थानो पर अमरुद तथा अनार के पेड़ो की जड़ों को आवश्यकतानुसार छटाई की जा सकती है।

5. फलों का विरलीकरण (Thinning of Fruits)—फल-वृक्षो से फलो के बनने के एक माह के अन्दर तोड़कर कम कर दिया जाए जिससे अत्यधिक फलन को रोका जाकर अच्छी किस्म के उचित मात्रा मे फल मिल सकें, इस क्रिया को 'विरलीकरण' कहते है।

आवश्यकता—1. अच्छे आकार के रंग तथा अच्छे गुणो के फल मिलते है।

2. तेज वायु या तूफान से फलो से लदी शाखाएं नहीं टूटती हैं।

3. फलो को कम करने से वृक्षो की दशा ठीक रहती है जिससे अगले वर्ष ठीक फल मिलते हैं।

4. फलों की तुड़ाई में कम व्यय होता है और अच्छी आय मिलती है।

फलो के लगने के तुरन्त बाद फल विरलीकरण ठीक रहता है। फूलने के एक माह के अन्दर विरलीकरण करने पर पेड़ की वृद्धि पर प्रभाव पड़ता है। सेब की कुछ किस्में दो वर्ष मे एक बार फल देती हैं। सेब मे तीस पत्तियो के पीछे एक फल रखने पर अगले वर्ष अच्छी फलत मिलती है। आम में एकान्तरिक फलन (Alternate bearing) से एक वर्ष अधिक तथा दूसरे वर्ष कम फल आते हैं। अधिक फल आने वाले वर्ष मे फलो को विरलीकरण करे। आड़ू के फलों को पकने के कुछ समय पूर्व फलों को कम करते हैं। पपीते मे फलो को बीच-बीच में निकाल कर स्थान करने पर दूसरे फलो की वृद्धि अच्छी होती है।

फल वृक्ष पर फूल और फल लगने से इसके वानस्पतिक भागों–'स्पर' प्ररोह आदि के निर्माण में खाद्य पदार्थ (कार्बोहाइड्रेट, आवश्यक पोषक तत्व आदि काफी मात्रा में खर्च होती है जिससे विभिन्न क्रियाओं द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि वृक्ष में पोषक तत्व उचित मात्रा में बने रहें और अगले वर्ष भी फल मिलें।

फूल की अपेक्षा फल की वृद्धि एवं विकास में अधिक खाद्य पदार्थ की आवश्यकता होती है। फूल बनने में काम आए खाद्य पदार्थों की पूर्ति तो हो जाती है परन्तु फलों के विकास मे हुए खाद्य पदार्थों की पूर्ति देर से होती है। अधिक फल लगने पर पौधों की वानस्पतिक वृद्धि नही होती है और इसका फूलों [redacted] विभेदन पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इसी से फल वृक्षों पर फूल आने पर कुछ फूलो को कम करने के साथ फलो का विरलीकरण करना अति आवश्यक है जिससे पौधों की ठीक अवस्था के साथ प्रतिवर्ष फलन ठीक रहे।

6. अंतराशस्य (Inter Crops) तथा आवरण शस्य (Cover Crops)

अंतरा शस्य—उद्यान में फल वृक्षो के बीच काफी स्थान छूट जाता है। वृक्ष में रोपण से 5 वर्ष की आयु मे फलन आते हैं। तब तक यह बीच का स्थान फलोत्पादन नही देता है। अतः कुछ लाभ के लिए समय और भूमि का सदुपयोग करने के लिए कुछ फसलें उगाना, अन्तरा शस्य कहलाता है।

सिद्धान्त—(1) प्रमुख स्थान फल के स्थाई वृक्षो के बाद अंतराशस्य वाली फसल को स्थान दिया जावे।

(2) अतरा शस्य वाली फसलें लम्बी न हों जैसे–अरहर या ज्वार।

(3) फसलों की खाद तथा सिंचाई की आवश्यकता वृक्षो की भांति होनी चाहिये या कम हो।

(4) ये फसलें भूमि से कम पोषक तत्वो को लेने वाली, शीघ्र फलने वाली होनी चाहिए अन्यथा वृक्षो को हानि होने की आशंका रहती है।

फसलें—सब्जियाँ—टमाटर, प्याज, बैंगन, लौकी, गाजर, मिर्च, पालक आदि।

दाल वाली फसलें—ग्वार, मटर, उर्द, मूंग, मैथी।

फल वृक्ष—जल्दी फल देने वाले फल वृक्षो को भी लगाया जा सकता है। परन्तु इनकी काट छांट आवश्यकतानुसार करनी चाहिये। जैसे—पपीता, झाड़, स्ट्राबेरी, अनन्नास, फालसा आदि।

आवरण शस्य—इन्हे संरक्षी फसलें भी कहते हैं। ये ढालदार तथा असमतल भूमियो मे कटाव रोकने के लिए कोई फसल आवरण कार्य करे तो उसे, आवरण शस्य कहते है। फसल मे फल आने पर तोड लिये जाते हैं तथा उन्हे भूमि में जोतकर मिलाया जा सकता है।

सिद्धान्त—(1) ये फसलें भूमि पर फैलने वाली कम समय मे तैयार होती हैं।

(2) इनको कम सिंचाई, खाद, श्रम तथा व्यय की आवश्यकता होती है।

(3) भूमि में जीवांश वृद्धि करने वाली हो।

फसलें—इनमें दलहनी वाली फसलें—मूंग, उड़द, लोबिया (खरीफ) तथा रिजका (लूसर्न), मसूर, मटर, मैथी (रबी) लेना अच्छा रहता है। ये फसलें कम लागत तथा देखरेख में शीघ्र तैयार होती हैं जिनकी उपज लेकर भूमि में पलटाई की जा सकती है जो जीवांश पदार्थ की वृद्धि करती हैं और जिससे भूमि में सुधार होता है।

कम वर्षा वाले क्षेत्रों में इन फसलों के लेने से पौधों की नमी लेने में फल वृक्षों को हानि होती है। गर्म-शुष्क क्षेत्रों की अपेक्षा ठण्डे-नम क्षेत्रों में इनको उगाना अच्छा रहता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पौध लगाने के बाद पौध की देखभाल का संक्षिप्त विवरण करो।
2. अंतराशस्य व आवरण शस्य से आप क्या समझते हैं ? उदाहरण देकर समझाओ।
3. निम्न क्यों करते हैं—
   (अ) छोटे वृक्षों का घास-फूस आदि से ढकना
   (ब) जड़ों की छंटाई।
4. निम्न पर टिप्पणी लिखो—
   (अ) फल व वृक्षों में काट-छांट
   (ब) फल-वृक्षों में खाद देते समय देखभाल
   (स) फलों का विरलीकरण।

प्रतिकूल दशाओं से फलोद्यान की रक्षा

(Protection of Orchard from adverse Weather Conditions

जलवायु फलोत्पादन के लिए महत्वपूर्ण है। इसकी उपयुक्तता बीज के अंकुरण, वृद्धि विकास, पुष्पन, फलन तथा फलों के विकास के लिए आवश्यक है। जलवायु मे थोड़े परिवर्तन आ जाने पर फल के गुणों को प्रभावित करता है। कभी-कभी जलवायु से उत्पन्न प्रतिकूल परिस्थितियाँ फलो को काफी हानि पहुँचाती हैं।

जलवायु भौगोलिक स्थितियो के अनुसार निश्चित रहती है। अनुकूल जलवायु जिस प्रकार अच्छी फसल देती है उसी प्रकार इनकी खराब स्थिति मे--ताप का बढ़ना, गर्म हवायें चलना, अधिक वर्षा होना, आंधी, ठंडी हवाएँ, पाला, बर्फ पड़ना आदि सभी फलोत्पादन को हानि पहुँचाती है।

1. सूर्य ताप—पौधो को सभी शारीरिक क्रियात्मक प्रक्रियाओं के लिए उचित तापमान की आवश्यकता होती है। इनके बीजो के अंकुरण से लेकर उनके फलने तक की विभिन्न क्रियाओ पर विभिन्न तापमान का प्रभाव पड़ता है। अधिकांश पौधे 10° से 25° से ग्रे तक अच्छी वृद्धि करते है। इससे अधिक बढ़ने प॰ वृक्ष को हानि पहुँचाते हैं। यह अवस्था प्रायः ग्रीष्म काल में आती है।

ग्रीष्मकाल मे दिन मे सूर्य का ताप काफी अधिक तथा रात मे कम तापमान हो जाता है जो पौधो को कई तरह से हानि पहुचाता है।

हानि -1. ताप अधिक हो जाने से वाष्पोत्सर्जन (Transpiration) क्रिया अधिक तीव्रता से होती है। इसी अनुपात में जडें पानी नही खीच पाती हैं जिससे पौधो की कोमल पत्तिया, छोटी हरी शाखायें, कलिकायें सूख जाती हैं।

2. पौधो के तने या फल के ऊतक मे उत्तेजना पैदा होने से छाल उखड़ जाता है।

3) नए छोटे पौधे पूरी तरह से सूखकर नष्ट हो जाते हैं।

4. नीबू वर्गीय फल—लेमन, संतरा, माल्टा के फल अधिक प्रभावित होते हैं, जिससे फल पर कड़ी और काली चित्तियां पड़ जाती हैं।

5. अधिक ताप के साथ आर्द्रता में कमी, तेज हवा मिलकर वृक्षों को अधिक हानि पहुंचाती है।

6. सूर्य की तेज किरणें (Sunburn) पत्तियों को जला देती है। नाशपाती सेब के कोमल फल इनसे झुलस जाती है।

7. सूर्य की तेज किरणों से वृक्षों की छाल को हानि पहुंचती है। खुरदरी छाल के वृक्ष चिकनी छाल के वृक्षो की तुलना में कम प्रभावित होते हैं।

बचाव —1. प्रारंभिक छोटे वृक्षों के चारों ओर मिट्टी की अस्थाई थोड़ी ऊंची दीवार बनाकर छप्पर, घास आदि से ढंकते हैं।

2. पौधों को चारो ओर फूस या पुआल की टाटी से ढंकते हैं।

3. पौधो की निश्चित समय के अंतर से सिंचाई करना चाहिए।

4. उद्यान के मध्य बड़े छायादार वृक्षों को जगह-जगह या पंक्ति में लगाना चाहिए।

5. वृक्षों की छाल को रद्दी कागज, पुराने टाट, कपड़ा लपटेना चाहिए।

6. तने पर चूने की सफ़ेदी (Whitewash) करने से सूर्य की किरणें परिवर्तित हो जाती हैं।

7. सूर्य ताप से जली छाल को तेज चाकू से खुरचकर कवकमार दवा (चौब टिपेस्ट) का लेप करते हैं।

2. वर्षा (Rains)—ऐसे स्थान जहां वर्ष भर में 100 से० मी० से अधिक वर्षा होती है वे स्थान फलोद्यान के लिए अच्छे रहते हैं। इस वर्षा का वितरण तथा अधिक अवधि में होना फल-वृक्षों के विकास के लिए अच्छे हैं। इससे वातावरण मे उचित नमी रहने से फूलो का विकास इनके अंगों की उचित समय पर परिपक्वता तथा उनके परागण, फल निर्माण मे सहायता मिलती है। वर्षा का हल्की फुहारों के रूप में होना अच्छा रहता है।

वर्षा की स्थिति—

1. अनावृष्टि—वर्षा के लम्बे समय तक बिल्कुल न होना, अनावृष्टि कहलाता है जिससे ऐसे शुष्कीय क्षेत्रों मे अकाल, सूखे की स्थिति आ जाती है जो फसल शाकों तथा फल वृक्षों को सुखा देते हैं और वे नष्ट हो जाते हैं।

इन क्षेत्रों मे कम जल चाहने वाले पेड़—बेर, आंवला, अनार, फालसा, शरीफा, खजूर आदि उगाना अच्छा है। सिंचाई के लिए टपकेदार सिंचाई विधि प्रयोग करना चाहिए।

अतिवृष्टि— कम समय से अत्यधिक वर्षा होने से क्षेत्र में बाढ़ (Flood) की स्थिति आ जाती है। फसल, उद्यान क्षेत्र तथा आबादी मे पानी भर जाता है जिससे फसल, जन, पशु धन की अपार हानि होती है।

जल भरने से भूमि की भौतिक दशा, मृदा ताप तथा वायु आवागमन खराब होने के साथ जीवाणुओं की सक्रियता कम होने से भूमि में अनेकों विकार पैदा हो जाते हैं और पौधों में कीट-रोगो का प्रकोप होता है।

फूल खिलने के समय वर्षा होने से परागकण घुल जाते हैं। परागकणों के ले जाने वाले कीट-मक्खी के न उड़ने से परागण भी नही हो पाता है जिससे फलन नही हो पाता है। नमी की अधिकता से फल फट भी जाते हैं।

1. जहां प्रति वर्ष अत्यधिक वर्षा होती है वहाँ स्थाई जल-निकास प्रबंध करते हैं।

2. सीढ़ीदार पट्टी बना कर वृक्षों को लगाएं।

3. कण्टूर के अनुसार बांध बनाकर उन पर सघन शीघ्र बढ़ने वाले पौधों को लगाएं।

4. भूमि सरक्षी फसलों को वर्षा काल में फल वृक्षो के बीच लगाएं।

5. अधिक फल चाहने वाले फल वृक्ष–केला, नारियल, खजूर आदि लगाएं।

3. वायु (Winds)—प्रत्येक क्षेत्र में उसकी भौगोलिक स्थिति के कारण वहां वायु की दिशा एव गति नियन्त्रित होती है। मौसम के अनुसार ग्रीष्म-काल की वायु फलोद्यान के वृक्षो को प्रभावित करती है। ये स्थितियां निम्न प्रकार है—

गर्म वायु —इसे 'लू' भी कहते हैं जो राज्य के पश्चिमी जिलों में अप्रैल-मई तथा पूर्वी जिलो में मई-जून में चलती हैं जिससे पौधे झुलस जाते हैं और पानी की कमी होने से अधिक हानि होती है। आम, कटहल, नींबु, लुकाट आदि के फल सूखे, दागदार कुरूप हो जाते हैं।

हानि—1. छोटे वृक्षों की कोमल पत्तियां, फूल-फलों को जला देती हैं।

2. तेज वायु से उत्स्वेदन, गति बढ़ जाती है और जल की कमी से पौधे सूख जाते हैं।

3. परागण करने वाले कीट गति नही कर पाते हैं जिससे फलन नहीं हो पाता है।

4. पराग, स्त्री केसर, का वर्तिकाग्र (Stigma) सूख जाता है।

5. तने की छाल तड़क कर अलग हो जाती है।

6. फल फट जाते हैं तथा उनके गुण खराब हो जाते हैं।

आंधी एवं तूफान—जलवायु की गति सामान्य से अधिक जब 100 कि. मी. से अधिक हो जाती है तो भयंकर स्थिति हो जाती है जिससे फलोद्यानों को अत्यधिक हानि होती है। वृक्षों के फूलों-फलों के गिरने के साथ बड़ी मात्रा में शाखायें भी टूट जाती हैं और वे समूचे जड़ सहित उखड़ जाते हैं। भूमि की उपजाऊ ऊपरी पर्त उड़ जाती है। आम, जामुन, कटहल लसोड़े के फल वृक्षों में अधिक हानि होती है।

बचाव—1. उद्यान को दक्षिण पश्चिम लगाया जावे।

2. पौधों की काट-छांट के समय दक्षिण-पश्चिम की ओर कुछ शाखायें तथा पत्ती रखी जावे जिससे पौधा ढंका रहे।

3. छोटे पौधों के पत्तियां निकलने तक टाट-फूस से चारों ओर से ढंक देना चाहिए।

4. उद्यान के बाहर चारों ओर सघन वायुवृत लगानी चाहिए।

5. पौधों की यथासमय काट-छांट करके उचित आकार देने से उनकी लम्बाई अधिक नहीं बढ़ती है।

6. फलों को लू से बचाव के लिए पेड़ के अन्दर के भाग की कटाई-छंटाई करें जिससे फल अन्दर की ओर लगे।

7. पौधों के तने पर सफेदी करने से गर्मी का प्रभाव कम होता है।

8. फल वृक्षों में प्रतिवर्ष उचित मात्रा में खाद देकर यथासमय सिंचाई करने से गर्म वायु का प्रकोप कम होता है।

वायु वृत में दोहरी पंक्ति अधिक उपयुक्त रही है जिसमें यूकलिप्टस, शीशम, कमरख, जामुन, पीपल, अर्जुन, सेमल आदि वृक्ष अच्छे हैं। तीसरी पंक्ति में छोटे वृक्ष लगाएं।

4. पाला (Frost)—शीतकाल के दिनों में तापमान एकाएक हिमांक (Freezing Point) 0° से० ग्रे० से नीचे तक गिर जाने से वायु की नमी ओस में न बदलकर बर्फ के छोटे-छोटे कणों में बदल कर जम जाती है, जिसे पाला कहते हैं। यह स्थिति दिसम्बर से फरवरी में अधिक आती है जो कुछ समय तक रह सकती है। उष्ण तथा उपोष्ण जलवायु के वृक्षों को काफी हानि होती है।

हानि—1. पौधों के ऊतक नष्ट हो जाते हैं। कभी अधिक ताप गिरने से अधिक हानि हो सकती है।

2. पौधों के अन्दर के रस के जमने से सभी क्रियाएँ बन्द हो जाती हैं जिससे पूरा पौधा प्रभावित होता है।

3. पौधों की छाल वे रगंदार हो जात है। कभी-कभी कैंबियम को भी हानि होती है।

4. आम, संतरा के फूल और फलों को काफी हानि होती है।

5. अमरूद के पौधे के तने, पत्तियों आदि को प्रभावित कर नष्ट कर देता है।

6. पाले के अधिक प्रकोप से पौधे पूरे ही नष्ट हो जाते हैं।

पाले से प्रभावित होने वाले वृक्ष—

1. पतझड़ वाले पेड़ —शीत काल में सुप्तावस्था में होने से इन्हें हानि नही होती है।

2. सदाबहार वृक्ष—आम, पपीता, कटहल, केला आदि की अधिक हानि होती है परन्तु जामुन और अमरूद को कभी-कभी हानि होती है।

3 नीबू प्रजाति के फल वृक्ष—जैसे नीबू, खट्टा, अमृतफल, चकोतरा, मौसमी, संतरा को हानि होती है।

ओला पड़ना (Hails)—जब वर्षा की बूंदें अधिक ठण्डी होकर जम जाती हैं तो इसे ओला कहते हैं। मौसम बदलने पर बादल ओलवृष्टि करने लगते हैं।

शीतकाल में फरवरी–मार्च महीनों मे ओले पड़ते हैं जो आकार में छोटे-बड़े होते हैं। इनसे भारी मात्रा मे फूल-फल झड़ जाते हैं। आम, आलू बुखारा, संतरा, नाशपाती, पपीते के फल वृक्षों को अधिक हानि होती है।

ओला अचानक ही पड़ते हैं जिसका विभिन्न फसलों, शाकों तथा फल वृक्षों को काफी हानि होती है। बचाव का अभी तक कोई उपाय नही ढूंढा जा सका है।

शीतकाल में ताप गिरना—फल वृक्षों को ताप की अधिकता या कमी, दोनो की ही अति (Extreme) स्थिति हानि पहुंचाती है। शीतोष्ण तथा उपोष्ण कटिबंध मे अधिक होती है। इस स्थिति के अधिक समय तक रहने पर अधिक हानि होती है।

ताप के 0–10° से० ग्रे० तक जाने पर कठोर तथा पतझड़ वाले पौधे प्रभावित होते हैं। इनकी सुप्तावस्था देर से आती है तथा पौधों की पत्तियां नहीं गिरती हैं। कोशिका द्रव भी जम जाता है। इन सभी से पौधों की क्रियाशीलता एवं फलों का लगना प्रभावित होता है। छोटे वृक्षों को अधिक हानि होती है।

शीत लहर (Cold ware)

उत्तरी भारत मे शीत ऋतु मे शीत लहर अधिक प्रभाव दिखाती है। साइक्लोन एवं ऐरटाटी साइक्लोन अधिक प्रभावित करते हैं। तिब्बत और मंगोलिया के एराटी साइक्लोन के कारण उत्तरी भारत में अधिक कड़ी ठण्ड काफी समय तक रहती है। इन दिनो शुष्क ठण्डी तेजी हवाओं के साथ पाला भी पड़ता है जो फलों, शाकों तथा फल वृक्षों को हानि पहुंचाती है।

छोटे कम उम्र के पौधों को अधिक उम्र के पौधों की अपेक्षा अधिक हानि होती है। वृक्षों का फलन भी इससे प्रभावित होता है।

बचाव :

1. पाला सहिष्णु किस्मों को उगाना चाहिये।
2. पेड़ों को यथा समय खाद, सिंचाई तथा निराई-गुड़ाई करनी चाहिये।
3. बाग के दक्षिण-पश्चिम तथा उत्तर-पश्चिम की ओर ठण्डी हवाओं को रोकने के लिए वायु-रोधी वृक्ष लगाने चाहिये।
4. उद्यान में आवरण शस्य लेने से पाले से बचाव होता है।
5. छोटे पौधों की रक्षा के लिए भूमि से 1.5 मीटर ऊंची टाटियाँ या छप्पर तीन तरफ लगा देना चाहिये।
6. पाला पड़ने के दिन बाग की सिंचाई तथा बाग के जगह-जगह कूड़े जलाकर आग लगा देना चाहिए।
7. वायु मशीन का प्रयोग करके उद्यान का ताप बढ़ाया जा सकता है।
8. ब्रूक के अनुसार प्रति हेक्टर 60-130 हीटर जलाकर उद्यान के ताप में 20-30 प्रतिशत की वृद्धि की जा सकती है।
9. छोटे उद्यानों को पाले से इनफ्रा-रेड विकिरण से बचाया जा सकता है परन्तु विकिरण से पूरा बाग गर्म नहीं हो पाता है।
10. फलों के वृक्षों को प्रति वर्ष, उचित मात्रा में खाद देकर यथासमय सिंचाई करनी चाहिए।

5 कीट एवं रोगों से बचाव— उद्यान के वृक्षों से अच्छा फलन के लिए बाग के परिशोधन तथा सफाई पर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है। बाग में उगे खरपतवार, फसल के अवशेष भाग, कवक, रोग व कीटो के फैलने में सहायक होते हैं। बाग में वृक्षों के घने होने पर पर्याप्त सूर्य-प्रकाश न मिलने से भी रोग व कीट पनपते रहते हैं तथा इन पर नियन्त्रण पाना मुश्किल होता है।

रोग—फल वृक्षों में कवक, विषाणु तथा जीवाणु रोगों को फैलाते हैं। ये पौध घर से लेकर फल आने तक हानि पहुँचाते हैं जिससे उपज कम मिलती है। इनसे पौधों में अनेक रोग फैलते हैं।

अनुचित वातावरण तथा पोषक तत्वों के असंतुलन व कमी से भी पौधों में कुछ खराबियाँ आ जाती हैं।

बचाव के उपाय—

1. मिट्टी को उचित रसायन से धूमित करने के बाद बीज बोना या पौधे लगाना चाहिये।

2. पौध घर में वायु तथा उचित प्रकाश का आवागमन होना चाहिए।
3. यथा समय उचित मात्रा में सिंचाई करनी चाहिए।
4. पौध क्षेत्र, बाग का परिशोधन व अच्छी सफाई करनी चाहिए।
5. रोपण के लिए स्वस्थ बीजों तथा पौध को उचित उपचार के बाद लगाना चाहिए।
6. रोग वाहक कीटों (एफिड, हॉपर, मक्खी) का नियन्त्रण करना चाहिए।
7. पूर्ण रूप से स्वस्थ पौधों से कलम या चश्मा के लिए लकड़ी लेनी चाहिए।
8. जल निकास का उचित प्रबन्ध होना चाहिये।
9. सूखी, रोगग्रस्त टहनियों की काट-छांट करके कटे भागों पर कवकनाशी रसायनों का लेप करना चाहिए।
10. रोग की संभावना होने पर उचित रसायनों का कई बार प्रयोग करना चाहिए।

कीट—कीट पौधों के किसी न किसी भाग को हानि पहुँचाते हैं, जिससे पूरा पौधा भी नष्ट हो जाता है। कीटों के अलावा कुछ चिड़ियाँ, जंगली जानवर, चूहे, खरगोश तथा गिलहरी भी फल वृक्षों को हानि पहुँचाते हैं। इनसे बचाव के लिये निम्न उपायों को काम में लाना चाहिए—

1. भूमिगत कीटो जैसे—दीमक, भृंग, आदि से बचाव के लिए 5 प्रतिशत बी. एच. सी. या हेप्टाक्लोर या क्लोरडेन धूल 25-30 सेमी. गहराई में भूमि में मिला देना चाहिए।
2. कीटों को रात में प्रकाश-पाश लगाकर पकड़कर नष्ट कर देना चाहिए।
3. रोगी पौधों को निकाल कर नष्ट कर देना चाहिये।
4. रोग के लक्षण दिखते ही उचित रसायन का बुरकाव या छिड़काव आवश्यकतानुसार करना चाहिए।
5. रोगरोधी किस्मों को लगाना चाहिए।

6. जंगली पशु—गिलहरी, गीदड़, साही, नीलगाय, बन्दर, हाथी आदि फलोद्यानों को हानि पहुंचाते हैं। बंदर पौधो की शाखाओं, फलो को तोड़ डालता है। हाथी केले के उद्यान को हानि पहुंचाता है। गिलहरी फलों को कुतरकर खराब कर देती है।

बचाव—1. बाग के चारों ओर कांटेदार तार, बाड़ लगानी चाहिए।

2. उद्यान के चारों ओर स्थाई पक्की दीवाल बनाकर रक्षा कर सकती है। यह तरीका महंगा है।

3. पटाखे, टीन बजाकर पशुओं को भगाया जा सकता है।

7. पक्षी—मोर, तोता, बुलबुल आदि अनेकों चिड़िया फलों को काटकर, खाकर हानि पहुंचाते हैं। इनमे तोता सर्वाधिक हानि पहुंचाता है।

बचाव—1. उद्यान के वृक्षों के ऊपर जाल लगाना चाहिए।

2. बाग में टिन या किसी अन्य साधन से आवाज करके चिड़ियाओं को भगायें।

3. सीमित क्षेत्र के बड़े फलों जैसे अनार आदि के ऊपर कागज, कपड़े या पॉलिथीन की थैली बांध कर फलों को सुरक्षित रखा जा सकता है।

8. राहगीर एवं चोर—फल वृक्षों को ये लोग अधिक हानि पहुँचाते हैं। चलते रास्ते के करीब के उद्यानों में कोई आदमी मौका देखकर फलों को तोड़ लेता है। यदा-कदा चोर उचक्के भी फलों को तोड़कर, शाखाओं को काटकर हानि पहुंचाते हैं।

बचाव—1. बाग के चारो ओर स्थाई दीवार, कांटेदार तार की बाड़ का प्रबंध करें।

2. उद्यान में नियमित रखवाली हेतु माली रखें।

3. पालतू कुत्ते को रखवाली के लिए पाला जा सकता है।

4. उद्यान चालू रास्ते के समीप न लगाये जावें।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'फलोद्यान को प्रतिकूल मौसम दशाओं से बचाव' पर एक निबंध लिखिए ?

2. फलोद्यान के फल वृक्षों को वर्षा, गर्म, ठण्डी तेज हवायें तथा पाला किस प्रकार हानि पहुंचाती है ? इनसे बचाव के उपायों को लिखिए।

3. (अ) सूर्य ताप से पौधों की रक्षा।
(ब) चिड़िया तथा पक्षियों से फलो की सुरक्षा।
(स) वायुरोधी वृक्ष।

फलोद्यान के अनुत्पादकता के कारण

(Causes of Unfreitfulness of Orchard)

फलोत्पादकों के लिए उद्यान के फल वृक्षों से उचित फल प्राप्त न होना एक समस्या है। फल वृक्ष पूर्णरूप से स्वस्थता से वृद्धि कर रहा होता है परन्तु कतिपय कारणों से फलन नहीं होता है और यदि होता है तो समय से पूर्व ही बिना पके गिर जाते हैं। इसके निश्चित ही कुछ कारण होते हैं जो यह समस्या पैदा करते हैं। सफल फलोत्पाद को इन सभी कारकों तथा इनके निवारण के उपायों का ज्ञान होना आवश्यक है।

इन कारकों को मुख्यरूप से दो भागों में विभाजित करते हैं—

(अ) आन्तरिक कारक, (ब) बाह्य कारक।

(अ) आन्तरिक कारक (Internal Factors)—

1. उभयलिंगता एवं एकलिंगता (Monoecious & Dioecious)—फल वृक्ष दो प्रकार के होते हैं, प्रथम—जिनके एक ही वृक्ष पर दोनों प्रकार के नर एवं मादा फूल आते हैं उभयलिंगी हैं इनमे स्वसेचन होता है, जबकि दूसरे—जिनमें नर व मादा अलग-अलग होते हैं, पर-परागण होता है। जैसे—पपीता, कटहल, खजूर, अखरोट आदि मे परपरागण के लिए शहद की मक्खी, अन्य कीटों पर आश्रित रहना पड़ता है। इनके सहयोग न मिलने पर परागण नहीं होता है और फलन प्रभावित होता है। आम की कुछ किस्में—दशहरी, चौसा, लंगड़ा, सफेदा में परपरागण आवश्यक है।

2. विषम वर्तिकाग्र (Hetero Styly)—फल वृक्षों के पुष्पों कीसंरचना में अन्तर मिलता है जिससे किसी पुष्प का पुंकेसर बड़ा और स्त्रीकेसर छोटा तथा किसी पुष्प का स्त्री केसर बड़ा और पुंकेसर छोटा होता है। इस स्थिति मे परागण भली-भाँति नहीं हो पाता है। सेब व अखरोट में स्त्री केसर छोटा तथा पुंकेसर बड़ा होने से परागण नहीं हो पाता है जिससे परागण के लिए बाहर से परागण आना आवश्यक है परन्तु परागण न होने से फलन प्रभावित होता है।

3. मिश्रकाल-परिपक्वता (Dichogamy)—कुछ फलवृक्षों में पुष्प पूर्ण होते हुए इनमें परागण नहीं हो पाता है क्योंकि इनके नर व मादा अंगों के परिपक्व होने के समय में अन्तर होता है। सफल परागण के लिए इन दोनों का एक ही समय में परिपक्व होना आवश्यक है अन्यथा पु केसर पराग देने योग्य है परन्तु स्त्री केसर परागण के उपयुक्त न होने से इनके परागण का समय निकल जाता है और फलन नहीं पाता है। अंगूर की ब्यूटी सोडलेस, व भारत अर्ली तथा खजूर की कुछ किस्मों में यह स्थिति आती है।

4. नपु सकता (Impotancy)—अच्छे फलन के लिए परागण आवश्यक है और परागण के लिए पु केसर व स्त्रीकेसर दोनों पूरी तरह से परिपक्व होने चाहिए परन्तु कभी-कभी दोनों मे से किसी एक के बंध्यापन (Impotancy) होने के कारण इनके अंगों मे इतनी शक्ति नहीं होती है कि वे गर्भाधान कर सके, ऐसी स्थिति में फलन नहीं होता है।

अंगूर की थाम्सन अनावेशाही, तथा खजूर की कुछ किस्मों में परिपक्व परागण न होने से इनकी सक्रियता नहीं होती हैं।

5. अनुवांशिक प्रभाव (Genetic Ettect)—संकर किस्मों में परागकणों की अधिकता से नपु सकता आ जाती है जिससे गर्भाधान नहीं हो पाता है और फल नहीं बन पाता है। अनुवांशिकता के कारण आम में प्रतिवर्ष पर्याप्त फलन नहीं होता है।

6. असामंजस्यता (Imcompability)—प्रायः देखा गया है कि एक फल की दो किस्मों में उनके जननांगों के पूर्ण विकसित होने पर पारस्परिक आकर्षण के अभाव में गर्भाधान नहीं हो पाता है और कभी-कभी एक दूसरे के मिलने से कुप्रभाव के पैदा होने से एक भाग सूख कर नष्ट हो जाता है और फलन नहीं होता है।

7. आयु का अधिक होना—प्रत्येक फल वृक्ष एक निश्चित आयु के अन्दर फलन करता है तथा एक निश्चित आयु तक अच्छा फलन प्राप्त होता है, उसके बाद पुराने होने से कम फल देने लगते हैं और धीरे-धीरे अनुत्पादक हो जाते हैं। माल्टा मौसम्बी, आदि के फल वृक्षों से 20 वर्ष की आयु तक अधिक फल मिलता है इसके बाद फल कम मिलते हैं।

8. संचित पोषक तत्वों की मात्रा—फल वृक्षों मे सचित खाद्य तत्वों की कमी और अधिकता दोनो फलन को प्रभावित करते हैं। ऐसा देखा गया है कि एक वर्ष अच्छे फल देने के बाद दूसरे वर्ष कम फल मिलते हैं क्योंकि फलन के कारण पौधों में तत्वो की हीनता आ जाती है जिससे उसमे फलन नहीं होता है और कभी-कभी फल गिर जाते हैं।

फूलों के खिलने पर इसका पराग वर्षा से बह जाता है तथा कीट-मक्खियाँ आदि की उड़ान नहीं हो पाती है जिससे परागण नहीं होता है।

आर्द्रता कम होने से परागकोष (Anthers) के फटने पर परागकण बाहर आ जाते हैं जबकि अधिक नमी से परागकोष नहीं फटते हैं और परागण नहीं होता।

(ख) पोषणिक स्थिति (Nutritive Conditions)—

1. पोषक तत्व (Nutrients)—फल वृक्षों की अच्छी वृद्धि एवं विकास के लिए आवश्यक पोषक तत्वों को उचित मात्रा में उपलब्धता आवश्यक है परन्तु इन तत्वों की न्यूनता एवं अधिकता दोनों फलन को प्रभावित करते हैं। पौधों में C : N के असंतुलित होने पर वृद्धि प्रभावित होती है।

नत्रजन की अधिकता से वानस्पतिक वृद्धि अधिक होती है और फूल गिर जाते हैं जैसे—सेब, नाशपाती। पोषक तत्वों की कमी से फूलों के अंगों का विकास न होने से फलने सम्बन्धी क्रियायें अच्छी तरह से नहीं होती हैं। कार्बोहाइड्रेट की मात्रा अधिक होने से पुष्पन-फलन क्रिया अच्छी होती है।

2. जल (Water)—जल पौधों के निर्माण तथा पोषण के लिए आवश्यक है। जल में पोषक तत्व घुलकर इनकी अच्छी वृद्धि करते हैं। खादों के देने के बाद सिंचाई करने पर ये पौधों को उपलब्ध होते हैं। पुष्पन, फलन तथा फलों की वृद्धि के लिए उचित मात्रा में जल आवश्यक है। कमी होने पर वृद्धि तथा सभी क्रियाएँ प्रभावित होती हैं और पौधे तक सूख जाते हैं।

3. आर्द्रता (Humidity)—वायुमण्डल की नमी पौधों के लिए महत्वपूर्ण है। आर्द्रता की न्यूनता से पौधों के तने व फल फट जाते हैं और उनकी वृद्धि प्रभावित होती है।

अधिक आर्द्रता से विभिन्न कवक रोगों व कीटों का आक्रमण होता है जबकि केला, अनन्नास ऐसे क्षेत्रों में उगाए जा सकते हैं। अधिक आर्द्रता से वर्षा के अमरूद का स्वाद, रंग, आकार व संग्रह अवधि पर प्रभाव पड़ता है।

वर्षा के फल छोटे एवं बेस्वाद के होते हैं। इस प्रकार वायुमण्डलिक आर्द्रता विभिन्न फलों पर अलग-अलग प्रभाव डालते हैं।

(ग) संस्थिति तथा मौसमी प्रभाव (Locality and Seasonal Effects)

1. संस्थिति (Locality)—एक निश्चित भूमि तथा जलवायु विशेष में कोई फल वृक्ष अच्छी तरह वृद्धि करके फल देते हैं। जैसे—सन्तरे-नागपुर, राजस्थान के झालावाड़ क्षेत्र में, अमरूद—इलाहाबाद, लीची—मुज्जफरनगर, माल्टा—गंगानगर। यह संस्थिति अन्य कारकों से भी प्रभावित होती है। ईंट के भट्टों (Brick clins) के पास के आम के उद्यानों में काला धब्बा रोग हो जाता है।

(ब) बाह्य कारक (External Factors)—

फल वृक्षों में आन्तरिक कारकों के अतिरिक्त अनेक बाहरी कारक भी फलन को प्रभावित करता है।

(क) परिस्थिति की कारक (Ecological Factors)—फल वृक्षों के कोमल अंगों को सुरक्षित रखने के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ होना आवश्यक है। इनकी उचित दशा में न होने से अंगों का विकास अच्छा न होकर वे मर जाते हैं। निम्नलिखित दशाएँ प्रभावित करती है—

1. तापमान (Temperature)—पौधों की अच्छी वृद्धि के लिए उचित तापमान आवश्यक है साथ ही पौधों की विभिन्न क्रियाओं का भी तापमान से सम्बन्ध है। पौधों में परागण, भोजन निर्माण, श्वसन आदि क्रियाओं के लिए उचित तापमान आवश्यक है कीट कम ताप (40° फ़े०) तथा अधिक ताप (90° फ़े०) होने पर परागण नही कर पाते हैं जिससे फलन नही होता है। अतः पौधों की सभी जैविक क्रियाओं के लिए क्रातिक तापमान आवश्यक है।

2. वायु (Air)—वायु की तेज गति परागण में बाधा करती है क्योंकि ऐसी दशा में कीट अपना कार्य नही कर पाते हैं और पराग तथा स्त्री केशर का वर्तिकाग्र (Stigma) भी सूख जाता है। उत्तर भारत के मैदानी भागों में ग्रीष्मकाल में प्राए तूफान से आम, जामुन आदि फलो को अधिक हानि होती है। फलों के गिरने के साथ पेड़ समूचे उखड़ जाते है।

3. ओला-पाला (Hails & Frost)—पपीते व सेब के फल वृक्षो को ओला-पाले से हानि होती है। ओलों से फलो के अलावा फूल गिर जाते है। सेब के उद्यानो को ओलो से अधिक हानि होती है।

पाले से पपीता, आम, शरीफा, केला, लीची के छोटे पौधो को अधिक हानि होती है जिससे पौधे मर भी जाते है।

4. वर्षा तथा आर्द्रता (Rains & Humidity)—अधिक वर्षा होने पर बाढ़ तथा बहुत कम होने पर सूखे की स्थिति आ जाती है। ये दोनों स्थितिया फल वृक्षो को प्रभावित करती है। सूखे की स्थिति कुछ विशेष कम जल चाहने वाले फल बेर, आंवला, अमरूद, फालसा, शरीफा, अनार आदि कुछ जल व्यवस्था करने पर सफलता से उगाए जा सकते हैं।

वर्षा अधिक होने से जल खेतों में भरकर बाढ़ की स्थिति आ जाती है जिससे आक्सीजन की कमी से जड़ें क्षतिग्रस्त हो जाती हैं तथा कीटों–रोगों का अधिक प्रकोप होता है। कुछ फल लेमन, अंगूर, आडू, अनार आदि परिपक्व हो रहे फल जाते हैं।

फूलों के खिलने पर इनका पराग वर्षा से बह जाता है तथा कीट-मक्खियों आदि की उड़ान नहीं हो पाती है जिससे परागण नहीं होता है।

आर्द्रता कम होने से परागकोष (Anthers) के फटने पर परागकण बाहर आ जाते हैं जबकि अधिक नमी से परागकोष नही फटते हैं और परागण नहीं होता।

(ख) पोषणिक स्थिति (Nutritive Conditions)—

1. पोषक तत्व (Nutrients)—फल वृक्षों की अच्छी वृद्धि एवं विकास के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की उचित मात्रा में उपलब्धता आवश्यक है परन्तु इन तत्वों की न्यूनता एवं अधिकता दोनों फलन को प्रभावित करते हैं। पौधों में C : N के असंतुलित होने पर वृद्धि प्रभावित होती है।

नत्रजन की अधिकता से वानस्पतिक वृद्धि अधिक होती है और फूल गिर जाते हैं जैसे—सेब, नाशपाती। पोषक तत्वों की कमी से फूलों के अंगों का विकास न होने से फलने सम्बन्धी क्रियायें अच्छी तरह से नहीं होती है। कार्बोहाइड्रेट की मात्रा अधिक होने से पुष्पन-फलन क्रिया अच्छी होती है।

2. जल (Water)—जल पौधों के निर्माण तथा पोषण के लिए आवश्यक है। जल में पोषक तत्व घुलकर इनकी अच्छी वृद्धि करते हैं। खादों के देने के बाद सिंचाई करने पर ये पौधों को उपलब्ध होते हैं। पुष्पन, फलन तथा फलों की वृद्धि के लिए उचित मात्रा में जल आवश्यक है। कमी होने पर वृद्धि तथा सभी क्रियाएँ प्रभावित होती हैं और पौधे तक सूख जाते हैं।

3. आर्द्रता (Humidity)—वायुमण्डल की नमी पौधों के लिए महत्वपूर्ण है। आर्द्रता की न्यूनता से पौधों के तने व फल फट जाते हैं और उनकी वृद्धि प्रभावित होती है।

अधिक आर्द्रता से विभिन्न कवक रोगों व कीटों का आक्रमण होता है जबकि केला, अनन्नास ऐसे क्षेत्रों में उगाए जा सकते हैं। अधिक आर्द्रता से वर्षा के अमरूद का स्वाद, रंग, आकार व संग्रह अवधि पर प्रभाव पड़ता है।

वर्षा के फल छोटे एवं बेस्वाद के होते हैं। इस प्रकार वायुमण्डलिक आर्द्रता विभिन्न फलों पर अलग-अलग प्रभाव डालते हैं।

(ग) संस्थिति तथा मौसमी प्रभाव (Locality and Seasonal Effects)

1. संस्थिति (Locality)—एक निश्चित भूमि तथा जलवायु विशेष में कोई फल वृक्ष अच्छी तरह वृद्धि करके फल देते हैं। जैसे—सन्तरे-नागपुर, राजस्थान के झालावाड़ क्षेत्र में, अमरूद—इलाहाबाद, लीची—मुज्जफरनगर, माल्टा—गगानगर। यह संस्थिति अन्य कारकों से भी प्रभावित होती है। ईंट के भट्टों (Brick clins) के पास के आम के उद्यानों में काला धब्बा रोग हो जाता है।

2. मौसम (Season)—स्थानीय प्रभाव के अतिरिक्त मौसम तथा इसके विभिन्न तत्वों का फलोद्यान पर प्रभाव पड़ता है। विशेष मौसम के फल बड़े आकार के स्वादिष्ट होते हैं और उपज भी अपेक्षाकृत अधिक प्राप्त होती है जबकि अन्य मौसम में नहीं। जैसे - सर्दी के अमरूद, नीबू, गुण, स्वाद व मात्रा में वर्षा की अपेक्षा अच्छे होते है।

(ब) कीट, कवक एवं जीवाणुओं का प्रकोप
(Insect, fungal & Bacterialinjury)—

फल वृक्षों में कीटों व रोगों के आक्रमण होने से उनके विभिन्न भाग प्रभावित होकर उनकी वृद्धि को प्रभावित करते हैं जिससे कम उपज प्राप्त होती है। जीवाणु स्वयं हानि के साथ अन्य रोगों को फैलाते हैं जिससे विकास रुक जाता है। नीबू में उकठा रोग होने पर फटा पौधा-सूख जाता है। आम में मिली बग व एन्थ्रेक्नोज कीट के कारण फल नहीं लगते है।

(य) अन्य कारक (Other Factors)—

1. अन्तराशस्य का प्रभाव—फल वृक्षों के बीच सब्जियों तथा फसलों के उगाने के लिए दिया गया खाद एवं सिंचाई के जल के कारण फल वृक्षों की वानस्पतिक वृद्धि अधिक हो जाती है जिससे फलन कम होता है।

2 वृक्षों की दूरी—फल वृक्षों को लगाते समय इनकी पारस्परिक दूरी कम रखने से पौधे अधिक घने हो जाते हैं जिनसे जड़ों तथा शाखाओं को फैलने की स्वतन्त्रता नहीं मिलती है और पर्याप्त स्थान नहीं मिलता है जिसका सामूहिक प्रभाव फलन पर पड़ता है।

3. काट-छांट—फल वृक्षों की असमय तथा गहरी काट-छांट करने से उनकी अच्छी वृद्धि नहीं हो पाती है और फलन पर अनुचित प्रभाव पड़ता है।

दूर करने के उपाय—

उद्यान में अफलन की समस्या के निदान के लिए विभिन्न वैज्ञानिकों ने अनेकों परीक्षणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि कार्बोहाइड्रेट तथा नाइट्रोजन (C : N) का संतुलन ठीक होने पर फलन अच्छा होता है। अतः इस संतुलन को बनाए रखने के लिए विविध क्रियाएं अपनाई जाती हैं—

1. पौधों की काट-छांट—फल वृक्षों की सुप्तावस्था में काट-छाट के बाद नत्रजन उर्वरक प्रयोग करें इससे उनमें संचित पोषक तत्व ढांचा बनाने तथा नत्रजन पत्तियों के विकास से उपयोग हो जाती है और कार्बोहाइड्रेट बनता है। उर्वरक देने से नत्रजन उपलब्ध हो जाने से इनका संतुलन बना रहता है। पर्ण फलवृक्ष नाशपाती,

सेब, चेटी, अलूचा आदि में प्रति वर्ष नियमित रूप से उचित काट-छांट करने से फलों का अच्छा उत्पादन मिलता है।

फल वृक्षों की सूखी, पुरानी रोगग्रस्त टहनियों की काट-छांट अवश्य ही वर्षा ऋतु या सुप्तावस्था में करें जिससे बसंत में नई टहनियाँ विकसित हो सकें।

आनुवंशिक गुणों के कारक आम में द्विवर्षी फलन समस्या है। आम एक वर्ष पुराने प्ररोहों में फूल आते हैं। अतः फलन वर्ष में पेड़ की कुछ शाखाओं के प्रारम्भ में ही फल तोड़ देने से दूसरे वर्ष फल ठीक मिलते हैं।

2. छल्ला बनाना—फल वृक्षों के तने तथा शाखो की छाल पर अंगूठी की आकृति की छाल निकालने से काटे गए स्थान के ऊपरी भाग पर कार्बोहाइड्रेट एकत्रित हो जाता है जिससे फलन क्रिया अच्छी होती है। इससे सम्बन्धित क्रियायें खांचा बनाना, छाल उतारना भी इसी उद्देश्य के लिए करते है। अंगूर की बेदाना किस्म में यह विधि लाभकर है।

3. जड़ों को कम करना—विदेशो में किए गए अनुसंधानो से फल वृक्षो को फूलने की क्रिया को उत्तेजित करने के लिए जड़ों को कम कर देते हैं। इसके लिए पौधों के पुष्पन के समय से कुछ पूर्व सिंचाई बन्द करके जड़ों की मिट्टी हटाकर खोल देते हैं तथा कुछ मात्रा में पेंसिल की मोटाई की जड़ों को तेज चाकू या कैंची से काट देते है और मिट्टी में पर्याप्त मात्रा में जीवांश या पत्ती की खाद मिलाकर भर देते हैं। इससे आन्तरिक स्थिति में सुधार आता है। कुछ क्षेत्रों में अमरुद के वृक्षों मे यह क्रिया की जाती है।

4. झुकाव (Banding)—फल वृक्ष की शाखा को मुख्य तने से नीचे की ओर झुकाने से वे भूमि के समानान्तर आ जाती है। इससे इनकी वृद्धि रुक जाती है और खाद्य पदार्थों के संचित होने से फूल-फल अच्छे बनते है।

5. नियंत्रित सिंचाई—फल वृक्षो में फूल आने से कुछ समय पूर्व सिंचाई रोकने से पुष्पन अच्छा होता है परन्तु इसके बाद सिंचाई न करने पर प्रकाश संश्लेषण क्रिया न होने से कार्बोहाइड्रेट का निर्माण न होने से फलों को पोषण नहीं मिलता है और वे गिर जाते हैं। अतः नियन्त्रित सिंचाई यथासमय करते है। सदाबहार फल वृक्ष—आम, नींबू आदि में पूरे वर्ष आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहते हैं। खादों के प्रयोग के इनके पौधों के उपलब्ध होने के लिए सिंचाई अवश्य ही करें।

6. जल निकास का प्रबन्ध—उद्यान में अधिक वर्षा होने तथा सिंचाई जल के भरने से जल प्लावन स्थिति आ जाती है और भूमि का ताप, वायु संचार, जीवाणु की सक्रियता में बाधा पहुँचती है जिससे पौधों की वृद्धि रुकने के साथ विभिन्न क्रियाएं नहीं हो पाती हैं। अतः यथासमय प्रबन्ध करके इस जल के निकास का प्रबन्ध करना चाहिए।

7. खादों का प्रयोग—फल वृक्षों में फल बनने के बाद भूमि में पोषक तत्वों की कमी होने से पौधों की वृद्धि रुक जाती है और फल कम बनते हैं तथा वे गिर भी जाते हैं। फलनके वाद उचित मात्रा में आयु के आधार पर खादों का प्रयोग करना आवश्यक है।

पौधों मे कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात (C : N Ratio) को संतुलित बनाए रखना चाहिए। इसके लिए फल वृक्षों में जिस वर्ष फल अधिक आते हैं उस वर्ष फूल आने के पूर्व पर्याप्त मात्रा में 'नाइट्रोजन उर्वरक दें। इससे उस वर्ष कुछ फलन कम होगा परन्तु फल न आने वाले वर्ष में पर्याप्त मात्रा में फल आवेंगे। आम के वृक्षों में यह व्यवस्था करते हैं।

8. उचित किस्मों का चयन—फल वृक्षों में विशेषतौर पर आम की ऐसी किस्मे जिनमें प्रतिवर्ष फलन नहीं होता है उनके स्थान पर नियमित फल देने,वाली मल्लिका, आम्रपाली, नीलम, बंगलौरी, तोतापुरी आदि किस्मों को चुनना चाहिए।

9. उचित भूमि का चुनाव—उद्यान संस्थापन के समय अच्छे जल निकास वाली 2 मीटर गहरी दोमट या बलुई दोमट भूमि चुनते हैं। जिन भूमि का जल स्तर ऊंचा है उद्यान न लगाएं। पी० एच० 9 से अधिक क्षारीय भूमि तथा पी० एच० 4 से कम अम्लीय भूमि उद्यान के लिए अच्छी नही है क्योंकि इस स्तर पर पोषक तत्वों के अवक्षेप बन जाने से वे पौधो को उपलब्ध नहीं हो पाते हैं। भूमि की संरचना के खराब होने के साथ जीवाणु सक्रिय नही रह पाते हैं।

पर्याप्त गहराई तक गड्ढा खोद कर उसमें उचित मात्रा में सड़ी-गली जीवांश खाद मिलाकर गड्ढे को भरें। खराब मिट्टी होने पर इसे हटाकर दूसरी अच्छी मिट्टी भरना चाहिए।

10. नये पौधों को लगाना—फलोद्यान के वृक्षों की आयु अधिक होने से उनसे फल कम प्राप्त होते हैं। इन वृक्षों के मध्य में समयानुसार उन्नत किस्मों के नए वृक्षों को लगाने से अच्छी उपज प्राप्त होती रहती है।

11. कीटों एवं रोगो से बचाव—फल वृक्षों पर कीटों एवं रोगों के आक्रमण होने पर विशेषज्ञ की सलाह से यथासमय उचित रसायनों का प्रयोग करना चाहिए।

12. वृद्धि-नियामक रसायनों का प्रयोग—फूल-फल गिरना एक प्राकृतिक क्रिया है। इसके लिए डंठल के आधार पर एक विशेष प्रकार की कोशिका विलगन पर्त बन जाती है जिससे संचित पदार्थ के न पहुंचने से फूल-फल गिर जाते हैं। फलों की परिपक्वता के पूर्व इस पर्त के बनने से काफी हानि होती है। नींबू, सेब, नारियल, कोको वृक्षों मे यह समस्या है।

इससे बचाव के लिए कुछ हार्मोन्स एल्फा एसिटिक एसिड,(15-20 ppm), 2,4-डी (15-20 ppm) का छिड़काव लाभप्रद पाया गया है।

श्राम में 99% फूल-फल गिर जाते हैं। दशहरी की अपेक्षा लंगड़ा में अधिक फल गिरते हैं। ये फल कीटों के प्रकोप, ग्रीष्मकाल में सिंचाई, निराई-गुड़ाई की उचित व्यवस्था न होने, स्वपरागण से विकसित फल गिर जाते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. फलोद्यान में अफलन किन-किन कारणों से पैदा होती है, इनके समाधानों को लिखिए।
2. श्राम से प्रतिवर्ष फलत प्राप्त न होने के कारण तथा समाधानों को लिखिए?
3. निम्न क्रियाएँ क्यों की जाती है—
   (1) जड़ों को कम करना
   (2) मुकाल (Banding)
   (3) वृद्धि नियामकों का प्रयोग
4. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—
   (क) भिन्नकाल परिपक्वता (Dichogamy)
   (ख) नपुंसकता
   (ग) पारिस्थितिकी कारकों का फल वृक्षों पर प्रभाव।

पादप वृद्धि नियामकों का उद्यान में प्रयोग

(Application of Growth Hormones in the Orchard)

उद्यानिकी मे निरन्तर हो रहे अनुसंधानो के फलस्वरूप विभिन्न प्रक्रियाओं को शीघ्र कराने तथा समस्याओं के समाधानो के प्रयास किए जा रहे हैं। उद्यान के नए वृक्षों के तैयार करने, विलगन को रोकने तथा अच्छी फलत प्राप्त करने एवं इनके संग्रहण में वृद्धि नियामकों का सफलतापूर्वक प्रयोग किए जा रहे हैं जिससे आधुनिक उद्यानकी में कृत्रिम रूप से इनका प्रयोग अवश्य संभावी हो रहा है।

पौधों की अधिकतर कायिकी क्रियाओं में कुछ विशेष रासायनिक पदार्थों के द्वारा नियमित एवं नियन्त्रित की जाती है, जिन्हें हॉरमोन्स कहते हैं।

इन हॉरमोन्स की अति सूक्ष्म मात्रा दूसरे ऊतकों मे पहुँचकर वृद्धि को नियन्त्रित करते है। इनको वृद्धि नियामक (Growth, Regulators) वृद्धि हारमोन्स (Growth hormones), पादप हॉरमोन्स (Phyti hormones) आदि नामो से पुकारा जाता है। ये पौधो मे प्राकृतिक रूप में पैदा होते हैं तथा इनको संश्लेषित रूप से तैयार किए जाते हैं।

विभिन्न अनुसंधानों से यह निष्कर्ष निकला है कि कुछ पदार्थ वृद्धि को कराने मे सहायक होते हैं तथा नियमित करते हैं। नवीनतम जानकारी के अनुसार हॉरमोन्स चार प्रकार के होते हैं—

(1) ऑक्सिन,	(3) साइटोकाइनिन्स
(2) जिबरेलिन्स	(4) वृद्धि रोधक

(1) ऑक्सिन (Auxins)—ये वे पदार्थ हैं जो पौधों में प्ररोह की कोशिकाओं में दीर्घीकरण (Elongation) तथा अन्य क्रियाओं को प्रेरित करते हैं। ये कार्बनिक अम्ल हैं जिनमे एक असंतृप्त चक्रिक केन्द्र होता है और इन्हीं अम्लों के यौगिक हैं। ये कई प्रकार के होते है।

उदाहरण—IAA (इण्डोल, एसिटिक एसिड), IBA (इण्डोल ब्यूटायरिक एसिड), NAA (नेफ्थलीन एसिटिक एसिड), फिनायल एसिटिक एसिड, (2, 4, डाइक्लोरोफिनाक्सी एसिटिक एसिड (2, 4-डी) 2, 4, 5-टी आदि। इनकी

सान्द्रता उपयोग के आधार पर एक भाग—150 भाग एक लाख में (1-150 ppm) हो सकती है।

उपयोग—ऑक्सिन का कृषि एवं उद्यानों में विविध रूप में किया जाता है—

1. शीर्ष प्रमुखता (Apical dominance)—पौधों में शीर्ष कलिका (Apical bud) के होने पर उसकी वृद्धि होती रहती है तथा स्तम्भ पर उपस्थित कक्षस्थ (Terminal) कलिका वृद्धि करती है। शीघ्र कलिका के तोड़ने या काटने पर कक्षस्थ कलिकायें शीघ्र वृद्धि कर उसे सघन बना देती हैं। शीर्ष कलिका के काटने से ऑक्सिन के निर्माण मे अवरोध पैदा हो जाता है जिसके कारण कक्षस्थ कलिकाओं मे ऑक्सिन निर्माण होने से ये सक्रिय हो जाती है।

बाड़ (Hedge) की झाड़ियों के काटने पर कक्षस्थ कलिकायें सक्रिय होकर उसे घना बना देती है।

2 ऊतक तथा अंग विभेदन—ऑक्सिन कोशिका के दीर्घीकरण के साथ ऊतकों तथा नए अंगों के निर्माण तथा विभेदन को सक्रिय करते है। पौधों की कलमों को लगाने से पूर्व इनके निचले सिरे को किसी उचित ऑक्सिन में डुबोकर लगाया जाये तो नई जड़ें शीघ्र और अधिक निकल आती है। उद्यान में इसे अधिकता से प्रयोग करते हैं।

3. फल निर्माण तथा अनिषेक फलन (Fruit formation and Parthenocarpy)—फलो के बनने में ऑक्सिन का महत्वपूर्ण स्थान है। परागण के बाद परागकण से निकली पराग नलिका (Pollen tube) कुछ विशेष ऑक्सिन निर्माण कर अण्डाशय की कोशिकाओं के बढ़ने को प्रेरित करते हैं। यह सामान्य क्रिया है।

परन्तु ऑक्सिन्स के प्रभाव से बिना परागण तथा निषेचन से केला संतरा नीबू, अंगूर, टमाटर आदि मे फलों को पैदा किया जाता है। यह ऑक्सिन पौधों के जायांग (Gynoecium) के वर्तिकाग्र पर लेपित कर सकते हैं। अनिषेक फल बीज रहित होते हैं।

विलगन रोकना—पौधों की पत्ती, फल आदि का गिरना विलगन क्षेत्र (Abscission Zone) के बनने के कारण होता है। पत्ती के फलक तथा फल के अन्दर ऑक्सिन की उपस्थिति के कारण विलगन पर्त बन जाती है जिससे पत्तियाँ गिर जाती हैं तथा फल परिपक्व होने से पूर्व गिर जाते हैं।

सेब, संतरा, नाशपाती आदि पौधों से फलों के पूर्व विलगन को 2, 4-D के विशेष सान्द्रण घोल के छिड़काव से रोका जा सकता है।

प्रसुप्तावस्था तोड़ना—कुछ विशेष फसल को कायिक प्रवर्धन से तैयार किया जाता है जिनको भण्डार करने में समस्या रहती है तथा यह फसल पूरे वर्ष नहीं

होती है। आलू की पुरानी फसल बीज के रूप में प्रयुक्त करते हैं। फसल की प्रसुप्तावस्था को बनाए रखने के लिए इण्डोल ब्यूटायरिक एसिड, नेपथालीन एसिटिक अम्ल आदि ऑक्सिन को प्रयोग करते हैं।

बीजोपचार—विभिन्न प्रकार के बीजों को ऑक्सिन— आई. ए. ए., आई. बी. ए., एन. पी. ए., 2, 4–D आदि के (10-200 ppm) घोल से उपचारित करने पर उनका अंकुरण शीघ्रता से अधिक संख्या में होता है तथा अपेक्षाकृत उपज भी अधिक प्राप्त होती है। घोल की सान्द्रता बढ़ाने पर अंकुरण काफी कम भी हो जाता है।

जड़ें प्राप्त करना (Rooting)—कलमों से जल्दी जड़ें निकलने तथा सफलता के लिए कलमों के शीर्ष पर गाय के गोबर का मिश्रण लेप किया जाता था परन्तु अमरूद, आम, शकरकंद आदि की कलमों को आई. ए. ए., आई. बी. ए., एन. ए. ए. आदि से उपचारित करने पर शीघ्र जड़ें निकलती हैं तथा प्रांकुर का विकास शीघ्रता से होता है।

अपरिपक्व फलों को गिरने से रोकना—सेब, नाशपाती, नींबू वर्गीय फलों के पकने पूर्व गिरने से बचाने के लिए 2,4-D (100-500 ppm), 2,4,5-T (500 ppm) के घोल का छिड़काव लाभ पद रहा है।

खरपतवार नियंत्रण—फसलों में उगे जंगली पौधों को नष्ट करने के लिए ऑक्सिन का प्रयोग किया जाता है। चौड़ी पत्ती वाले द्विबीजपत्री खरपतवार 24-D के छिड़काव से नष्ट हो जाता है परन्तु इसका एक बीजपत्री फसल के पौधों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

2. जिबरेलन (Gibberellins)—यह पादप वृद्धि नियामकों में एक महत्त्वपूर्ण हैं जो सभी प्रकार के पौधों में पाया जाता है। इसका प्रभाव तने के पर्वों पर होता है जो तने के लम्बा, मोटा बनाते हैं तथा पत्ती के फलक को भी बढ़ाते हैं। ये कार्य कोशिका विभाजन तथा कोशिका दीर्घीकरण की वृद्धि के कारण होते हैं।

उदाहरण—जी ए (जिब्रोलिक एसिड)

उपयोग—

1. जिबरेलन के छिड़काव से पौधों की लम्बाई बढ़ जाती है। यह मटर सेम, मिर्च, पातगोभी, सलाद, टमाटर, ग्रीष्म कुष्माण्ड सब्जियों में अच्छा पाया जाता है।
2. इसके उपयोग से फल बड़े तथा बीज रहित, जैसे अंगूर पैदा किए जा सकते हैं।
3. नींबू, फालसा, संतरा आदि फलों की संख्या में वृद्धि करके उपज को बढ़ाता है तथा फलों को गिरने से रोकता है।

4. यह कन्दों आलू, प्याज की प्रसुप्तावस्था को नष्ट करता है जिससे इनका अंकुरण शीघ्र होता है।

5. पौधों पर छिड़काव करने से पत्तियों का फलक, पत्तागोभी, सलाद, पालक, के बढ़ने से प्रकाश संश्लेषण अधिक होता है।

3. साइटोकाइनिन्स (Cytokinins) – यह अन्य पादप वृद्धि नियामकों की भाँति महत्वपूर्ण है। यह एक विशेष यौगिक हैं जो कोशिका विभाजन को प्रेरित करता है, जिसमें काइनेटिन मुख्य है। काइनेटिन की भाँति अन्य पदार्थ न्यूक्लियक अम्लों के अपघटन से बनते हैं। इस समूह को साइटोकाइनिन्स कहते हैं।

उदाहरण—जिएटिन, डी हाइड्रोजिएटिन।

उपयोग—

1. यह पौधों में न्यूक्लियक अम्लों के संश्लेषण से लेकर कोशिका विभाजन करता है।
2. कोशिका दीर्घीकरण में सहायक होते हैं जड़ों तथा तनों के निर्माण तथा वृद्धि करते हैं।
3. पौधों की वृद्धि के साथ पत्तियों के आकार व क्लोरोफिल की मात्रा बढ़ाते हैं जिससे पौधे अधिक भोजन निर्माण कर सकता है।
4. यह उच्च श्रेणी के पौधों में महत्त्वपूर्ण। नारियल के दूध में यह मिलता है।

4. वृद्धि रोधक (Growth Inhibitors)—ये हॉरमोन्स के प्रभाव को नष्ट या नियमित करते हैं। इनकी अत्यधिक या अत्यन्त अल्प मात्रा (1 ppm) पौधों की वृद्धि में अवरोध पैदा करते हैं। इनको, वृद्धि अवरोधक कहते हैं।

उदाहरण—एब्सिसिक एसिड—2 Cis A II A, 2 Trans absissic acid.

उपयोग—

1. डारमिन अम्ल पौधों में प्रसुप्तावस्था पैदा करते हैं।
2. सोलेनिडीन आलू, कन्दों मे कलिका के फुटान को रोकते हैं। टरपोलाइनिक पौधों की पार्श्व कलिकाओं की प्रसुप्तावस्था लाते हैं।
3. अल्प प्रकाशापेक्षी पौधों में बड़े दिन मे पुष्पन नही कर पाते है। यह इसी ABA हारमोन्स के कारण है।

इन सभी के अतिरिक्त कुछ विटामिन्स-सी समूह पौधों की वृद्धि को प्रभावित करते हैं। Vit B2 की कमी से भ्रूण का विकास नही हो पाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'वर्तमान में उद्यान की प्रगति में वृद्धि नियामकों का एक विशेष स्थान है'। इस उक्ति पर अपने विचार लिखिए।
2. विभिन्न पादप वृद्धि नियंत्रकों का वर्गीकरण करिए, इनकी विविध उपयोगिता का वर्णन कीजिए।
3. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—
   (अ) पादप वृद्धि नियामकों का वर्गीकरण तथा उदाहरण
   (ब) ऑक्सिन का उपयोग
   (स) वृद्धि रोधक।

———

अध्याय-12

फल-विपणन
(Marketing of Fruits)

उद्यानकारी की सफलता केवल फलोत्पादन तक ही सीमित नहीं है बल्कि उनको तोड़कर बेचना और आवश्यकतानुसार सुरक्षित रखना भी आवश्यक क्रिया है। अतः इनका ज्ञान होना आवश्यक है—

फलों को तोड़ना—फल को परिपक्वता की किस अवस्था में तोड़ा जावे जिससे उसके गुणों में बिना कोई खराबी आये उसे अधिक समय तक अच्छी दशा में रखा जा सके। इसमें निम्न बातों का ध्यान रखना आवश्यक है—

फल तोड़ने का समय—फल पकने से (क) 'ए' बदलना (ख) फल का मुलायम होना तथा (ग) मिठास में वृद्धि होना, परिवर्तन होता है। अतः उपभोग की दृष्टि से पकने की सही अवस्था में तोड़ना आवश्यक है। विभिन्न फल-फूल आने से लगभग 105-116 दिन में पूरा परिपक्व हो जाता है। अतः फल तोड़ने की अवस्था का यह सिद्धान्त है कि तोड़ने और उपभोक्ता तक पहुँचने के समय में फल में कोई खराबी न आवे और फल का आकार सुचारू तथा स्वाद का पूर्ण विकास हो। फल के परिपक्व होने से पहिले कच्चा तोड़ लेने पर इसे एसिटलीन गैस के द्वारा पीला रंग देकर पका लेते हैं। इससे स्वाद में अन्तर नहीं आता है। दूर भेजने के लिये फल को पूरा पकने से पहिले तोड़ना अच्छा रहता है।

तोड़ने की विधियाँ—कई विधियों का प्रयोग किया जाता है जो फल विशेष तथा स्थान के प्रचलित रीति पर निर्भर करती है। फल किसी भी विधि से तोड़े जावें परन्तु फल पर कोई भी खरोंच या घाव नहीं आना चाहिए।

1. डंडे, पत्थर मारकर या पेड़ हिलाकर फल तोड़ना।
2. हाथ से फल तोड़ना।
3. सीढ़ियों का प्रयोग करके फल तोड़ना।
4. फ्रूट पिकर से फल तोड़ना।

फलों को फ्रूट पिकर से तोड़ना अच्छा रहता है। इससे फल कम समय में तोड़े जाते हैं जिसमें फलों के जमीन पर न गिरने से खरोंच व चोट नहीं लगती है। आम के फलों को बांस के एक लम्बे डंडे के सिरे पर रस्सी की बनी लम्बी थैली लगी होती है। जिसमें दो ब्लेड होते हैं जिनकी सहायता से फल डण्ठल सहित कट-कर थैली में इकट्ठे हो जाते हैं।

प्री पैकजिंग—आज कल विशेष प्रकार के हल्के भार वाले रेशे का कार्टन, पैकेज प्रयोग किए जाते हैं। ये मजबूत, पारदर्शक, नमी- प्रतिरोधक तथा वायु के प्रवेश निकास की सुविधा वाले होते हैं। पारदर्शी होने से फल दिखते हैं जिससे ठीक भाव मिलता है। जलयान व वायुयान में भेजने के लिए फलों को विशेष प्रकार के हल्की लकड़ी के बने क्रेट तथा नालीदार कार्ड के बक्सों में भेजा जाता है।

फल-परिवहन

फल रेल या ट्रक से दूर-दूर के स्थानों को भेजे जाते हैं। समीपस्थ स्थानों को बैल या ऊँट गाड़ी से भेजा जाता है। यूरोपीय देशों में आम का निर्यात हवाई जहाज तथा समुद्रतटीय क्षेत्रों में स्टीमर द्वारा किया जाता है।

देश में 80-90 प्रतिशत फल ट्रक द्वारा सीधे बाजार में भेजे जाते हैं क्योंकि ये रात भर चलते हैं जिससे फल दिन की गर्मी से खराब नहीं होते हैं। रेल से भेजने पर 10-20 प्रतिशत फल खराब हो जाते हैं। कुछ विशेष किस्म के कोच तैयार किये जा रहे हैं जिनका ताप 12.8-15.8°C तथा आर्द्रता 60 प्रतिशत होगी जिनमें फलों के खराब होने की कम संभावना रहेगी।

फल विपणन—फल का उचित वितरण फल विपणन का अभिन्न भाग है। फल तोड़ने के बाद कई हाथों से गुजराता हुआ उपभोक्ता के पास पहुँचता है। अतः फल उत्पादक से उपभोक्ता के मध्य जितने भी अधिक लोग लाभ के लिये काम करेंगे उतना ही फल महँगा बिकेगा।

फल विपणन भी फल उत्पादक के सामने मुख्य समस्या है। कुछ तो बाग को प्रतिवर्ष फल आते समय या पूर्व ठेकेदार को ठेके पर दे देते हैं वही इसके बाद पूरी देखभाल करके अपनी सुविधानुसार फल बेचता है। वैसे फल के परिपक्व होने पर ठेके पर दिया जाना अधिक लाभप्रद रहता है।

फल आढ़तियों, ठेकेदार या थोक व्यापारियों के द्वारा संग्रहण कर लेते हैं इनको पैक कराके दूर स्थानों के कमीशन एजेन्टों, व्यापारियों के पास भेज दिया जाता है जिनसे फल का फुटकर वितरण, थोक व्यापारी, आढ़तिया, दुकानदार तथा हॉकर द्वारा किया जाता है। इससे उत्पादन करने वाले को लाभ का एक अंश मिलता है तथा उपभोक्ता को फल खरीदने के लिये अधिक पैसे देने पड़ते हैं। अधिकांश लाभ बीच वालों (आढ़तिया, दलाल आदि) को मिलता है।

अतः उत्पादकों को अपना संगठन बना लेना चाहिये जिससे मध्य जनों की कड़ी समाप्त की जाकर उचित लाभ मिल सके तथा उपभोक्ता को उचित मूल्य पर अच्छे फल मिल सकें।

देश के प्रमुख फल आम, सेव, केले आदि की विभिन्न राज्यों में सहकारी समितियाँ काम कर रही हैं ये फलों का श्रेणीकरण, संग्रहण तथा परिवहन आदि की व्यवस्था करती है।

विकसित देशों में फल वृक्षों को एक निश्चित ऊंचाई तथा दिशा में काट-छांट करके ट्रेनिंग देते हैं। इन वृक्षों को एक मशीन (Shakers) द्वारा हिलाते हैं जिससे फल तेजी से गिरकर मशीन के विशेष टैंक में गिरते हैं। यह चेरी, आलूचा, आड़ू फलों में प्रयुक्त होती है। अंगूर तथा रस भरी के लिए विशेष मशीन विकसित की जा रही है।

फलों को छांटना—सड़े-गले, चोटिल, रोगी फलों को ढेर से अलग करना, छंटनी कहलाता है।

फलों का वर्गीकरण—फलो का वर्गीकरण दो प्रकार से करते हैं—

(i) फल का रूप, रंग तथा आकार के अनुसार

(ii) फल के परिमाण के अनुसार

देश में फल आकार के परिमाण व आधार पर वर्गीकृत किये जाते हैं। इसके लिये कोई श्रेणीबद्ध मानक नहीं है। फलों को तोड़ने के बाद व खराब फलों को निकालने के बाद किस्म व आकार के अनुसार फलों को हाथ से ग्रेडिंग करके वितरण क्षेत्रों में भेज दिया जाता है। कभी-कभी टोकरियों में नीचे छोटे तथा ऊपर कुछ बड़े फल रखकर टॉपिंग करके ग्राहकों को धोखा दिया जाता है।

देश के अन्दर तथा निर्यात के लिये अलफेंजो आम के गुजरात तथा महाराष्ट्र राज्य में ग्रेड निर्धारित किये गये हैं। सन्तरे का ग्रेडिंग विभिन्न माप के छेद वाले उपकरण से किया जाता है। भारतीय मानक संस्थान विभिन्न फलों के मानक निर्धारित करने का प्रयास भी कर रहा है।

विकसित देशो में फलों के संग्रहण, ग्रेडिंग तथा पैकिंग प्रबन्ध एक ही स्थान पर किया जाता है। फल ग्रेडिंग तथा पैकिंग मशीन द्वारा किया जाता है।

फलों की पैकिंग—पैकिंग का मुख्य उद्देश्य फलो की रक्षा तथा परिवहन सुविधा प्रदान करना है। अच्छी पैकिंग से फल लुभावने लगते हैं तथा अच्छा मूल्य मिलता है। इस ओर काफी सुधार हुआ है। फलो की पैकिंग निम्न विधियों से की जाती है—

1. बांस या अरहर की टोकरियों में—जब फलों को समीपस्थ बाजार में भेजना हो तो टोकरी में घास-फूस या पुआल की तह लगाकर फलो को रखा जाता है।

2. चीड़ की पेटियों में—दूर भेजने के लिये पेटियाँ अच्छी रहती हैं। इसमें फलों को कागज, टिशू पेपर से लपेटकर रखा जाता है जिससे फल हिलकर खराब न हो। दूर भेजने के लिये फलो को विशेष पैकिंग करनी चाहिये तथा अस्तर के लिये कागज की कतरनें अच्छी रहती हैं। हर पैक पर एक लेबल जिस पर फल की किस्म का नाम, ग्रेड, परिमाण व संख्या तथा स्थान का उल्लेख करके लगा देना चाहिये।

प्री पैकेजिंग—आज फल विशेष प्रकार के हल्के भार वाले रेशे का कार्टन, पैकेज प्रयोग किए जाते हैं। ये मजबूत, पारदर्शक, नमी प्रतिरोधक तथा वायु के प्रवेश निकास की सुविधा वाले होते हैं। पारदर्शी होने से फल दिखते हैं जिससे ठीक भाव मिलता है। जलयान व वायुयान में भेजने के लिए फलों को विशेष प्रकार के हल्की लकड़ी के बने क्रेट तथा नालीदार कार्ड के बक्सों में भेजा जाता है।

फल-परिवहन

फल रेल या ट्रक से दूर-दूर के स्थानों को भेजे जाते हैं। समीपस्थ स्थानों को बैल या ऊँट गाड़ी से भेजा जाता है। यूरोपीय देशों में आम का निर्यात हवाई जहाज तथा समुद्रतटीय क्षेत्रों में स्टीमर द्वारा किया जाता है।

देश में 80-90 प्रतिशत फल ट्रक द्वारा सीधे बाजार में भेजे जाते हैं क्योंकि ये रात भर चलते हैं जिससे फल दिन की गर्मी से खराब नहीं होते हैं। रेल से भेजने पर 10-20 प्रतिशत फल खराब हो जाते हैं। कुछ विशेष किस्म के कोच तैयार किये जा रहे हैं जिनका ताप 12.8-15.8°C तथा आर्द्रता 60 प्रतिशत होगी जिनमें फलों के खराब होने की कम संभावना रहेगी।

फल विपणन—फल का उचित वितरण फल विपणन का अभिन्न भाग है। फल तोड़ने के बाद कई हाथों से गुजराता हुआ उपभोक्ता के पास पहुँचता है। अतः फल उत्पादक से उपभोक्ता के मध्य जितने भी अधिक लोग लाभ के लिये काम करेंगे उतना ही फल महँगा बिकेगा।

फल विपणन भी फल उत्पादक के सामने मुख्य समस्या है। कुछ तो बाग को प्रतिवर्ष फल आते समय या पूर्व ठेकेदार को ठेके पर दे देते हैं वही इसके बाद पूरी देखभाल करके अपनी सुविधानुसार फल बेचता है। वैसे फल के परिपक्व होने पर ठेके पर दिया जाना अधिक लाभप्रद रहता है।

फल आढ़तियों, ठेकेदार या थोक व्यापारियो के द्वारा संग्रहण कर लेते हैं इनको पैक कराके दूर स्थानो के कमीशन एजेण्टो, व्यापारियो के पास भेज दिया जाता है जिनसे फल का फुटकर वितरण, थोक व्यापारी, आढ़तिया, दुकानदार तथा हॉकर द्वारा किया जाता है। इससे उत्पादन करने वाले को लाभ का एक अंश मिलता है तथा उपभोक्ता को फल खरीदने के लिये अधिक पैसे देने पड़ते हैं। अधिकांश लाभ बीच वालों (आढ़तिया, दलाल आदि) को मिलता है।

अतः उत्पादकों को अपना संगठन बना लेना चाहिये जिससे मध्य जनों की कड़ी समाप्त की जाकर उचित लाभ मिल सके तथा उपभोक्ता को उचित मूल्य पर अच्छे फल मिल सकें।

देश के प्रमुख फल आम, सेब, केले आदि की विभिन्न राज्यों में सहकारी समितियाँ काम कर रही हैं ये फलो का श्रेणीकरण, संग्रहण तथा परिवहन आदि की व्यवस्था करती है।

फलों का संग्रहण (Storage of Fruits) :—

भारत में फलों का संग्रह नहीं के बराबर होता है क्योंकि इनका उत्पादन अधिक नहीं होता है। अधिकांश व्यक्तियों को मौसमी फल भी उपलब्ध नहीं हो पाते हैं फिर भी उत्पादन बढ़ने तथा फलन के दिनों में आवश्यकता से अधिक फलों की बिक्री नहीं हो पाती है जिससे उत्पादक को अच्छा लाभ नहीं मिल पाता है और फल खराब हो जाते हैं। अतः इनको बेमौसम के लिए संग्रह तथा परिरक्षित करना आवश्यक रहता है।

फलों के फलन के दिनों में कुछ दिनों तक संग्रह कक्षों तथा भण्डारों में रखने पर बाद में इनसे अधिक आय प्राप्त होती है। फलों के मौसम में अधिक मात्रा में फल मिलते हैं, बाद में नहीं मिलते हैं। अतः संग्रह निम्न कारणों से करना चाहिये—

1. संग्रह की उचित व्यवस्था न होने से मौसम में ही फल सड़कर नष्ट हो जाते हैं।
2. संग्रहित फलों का मूल्य अधिक होता है।
3. फलों के मौसम समाप्त होने पर संग्रहित फल अच्छी दशा में मिल जाते हैं।

संग्रह करने की विधियाँ—

1. साधारण भण्डारों में—फलों को कमरे के तापमान पर ही बक्सों, टोकरियों, डिब्बों तथा रेकों पर रखा जाता है। यह विधि सूखे फलों के लिए अच्छी है परन्तु अन्य फल नहीं रखे जा सकते हैं।

2. रेफ्रीजरेटरों में—यह विधि काफी मँहगी है। इसमें फलों को थोड़ी मात्रा में कुछ समय के लिए ही रखा जा सकता है।

3. प्रशीतन गृह—प्रशीतन गृहों में तापमान तथा आर्द्रता को नियन्त्रित करके काफी समय तक एकसा बनाये रखा जा सकता है। इनमें फलों को काफी मात्रा में काफी समय तक संग्रह कर सकते हैं। भण्डारण में व्यय अधिक होता है परन्तु संग्रहित फलों को बेचने पर लाभ अच्छा मिलता है।

फलों के संग्रह करने के समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये—

1. फल कटे-फटे, चोटिल, धब्बे रहित अच्छी दशा में हों।
2. संग्रह के स्थानों में चूहे तथा अन्य कीट न हों।
3. फलों को ठीक तरह से टोकरियों में भरकर रखा जावे।
4. फल संग्रह के स्थानों में वायु प्रवेश तथा निर्गमन का मार्ग हो।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. फलों को तोड़ने की कौन-कौन सी विधियाँ हैं? सर्वोत्तम विधि का वर्णन करिए।

2. बाहर भेजने वाले फलों का ग्रेडिंग एवं पैकिंग किस प्रकार किया जाता है ?

3. पूरे वर्ष फल मिलने के लिए संग्रहण की कौनसी विधि उत्तम है ? बताइए ?

4. संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—

(अ) फल—विपणन

(ब) फल संग्रहण के समय ध्यान देने योग्य सावधानियाँ ?

फलों की खेती

फलदार वृक्षों के प्रकार

विभिन्न प्रकार के फल एक निश्चित जलवायु में अच्छी वृद्धि करते हैं तथा इनसे अधिक उपज मिलती है। इस आधार पर फल वृक्षों को निम्न तीन भागों में बांटा जाता है—

(1) उष्ण कटिबन्धीय फल (Tropical)—ये वृक्ष भूमध्य रेखा के निकट के देशों में उगाये जाते है जहाँ गर्मी खूब पड़ती है तथा वर्षा भी अधिक होती है। इनको कम तापक्रम वाले भागों में नहीं उगाया जा सकता है परन्तु कुछ वृक्ष इससे अधिक तापक्रम में फूल-फल देते रहते हैं और 54° फा० तापमान में वृद्धि करते रहते हैं। सर्दी में इनके पत्ते भड़ जाते हैं तथा बसन्त में नये निकलते हैं।

मुख्य फल — आम, कटहल, पपीता, केला, नारियल, शरीफा, जामुन अनन्नास।

(2) शीतोष्ण कटिबन्धीय वृक्ष (Sub-Tropical)—ये वृक्ष उष्ण कटिबन्धीय की अपेक्षा कम ताप चाहते है। अधिक ताप पर पौधे मुरझा जाते हैं परन्तु कुछ वृक्ष जैसे खजूर, अधिक तापमान तथा कम वर्षा वाले भागों में सफलता से वृद्धि तथा फसल के समय पानी की आवश्यकता होती है। ये पौधे वर्ष भर हरे रहते हैं।

मुख्य फल—अंजीर, लीची, कमरख, अनार, अंगूर, बेर।

(3) शीत कटिबन्धीय वृक्ष (Temperate)—इन स्थानों का तापमान न्यूनतम होकर जमाव की स्थिति तक पहुँच जाता है। इन स्थानों पर वृक्षों की एक निश्चित समय तक सुप्तावस्था होती है। इन दिनों ये पत्तियाँ गिरा देते हैं। गर्मी प्रारम्भ होते ही वृद्धि प्रारम्भ कर देते हैं। इस प्रकार की जलवायु पर्वतीय भागों, कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, अफगानिस्तान में पाई जाती है। इनको कम वर्षा वाले भागों में सिंचाई व्यवस्था होने पर उगा सकते है।

मुख्य फल—सेब, अंगूर, नाशपाती, अखरोट, आलू बुखारा, चेरी, स्ट्राबेरी।

आवास की विविधता के आधार पर वृक्षों को निम्न प्रकार विभाजित किया जाता है।

(i) शुष्कोदभिद् – बेर, करौंदा, अनार, खिरनी आदि।
(ii) मध्योद्‌भिद्—आम, अमरूद, पपीता, अंगूर, सेब आदि।
(iii) जलोद्‌भिद्—नारियल, केला आदि।
(iv) लवणोद्‌भिद—लसोड़ा, बेर, पनियाला आदि।

राजस्थान की भूमि तथा जलवायु विविध प्रकार की होने के कारण यहां पर विभिन्न सब्जियां तथा फल उगाये जाते हैं। इन दिनों सघन कृषि कार्यक्रम के अन्तर्गत विभिन्न स्थानों पर फलों के प्रसारण का प्रयोग हो रहा है। वर्तमान में ठण्डी जलवायु के फल माउण्ट आबू, कुंभलगढ़ की पहाड़ियों पर उगाये जा सकते हैं। आम–कोटा, भरतपुर, बांसवाड़ा, उदयपुर जिलों में खूब मिलता है। अनार–जोधपुर, बूंदी, कटहल–कोटा, जामुन-उदयपुर मौसमी, माल्टा, सन्तरा–झालावाड़, श्रीगंगानगर, बेर-डीग (भरतपुर), चौमूं (जयपुर) तथा नींबू एवं पपीता लगभग पूरे राज्य में सफलतापूर्वक उगाये जा रहे हैं।

राज्य का कृषि एवं विकास विभाग इनके विकास के लिए सतत प्रयत्नशील है जिसके आशातीत परिणाम प्राप्त होने की आशा है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. राज्य की शुष्क जलवायु में कृषि के सीमित साधनों के होते हुए भी फल विकास सम्भव है, कैसे ?

2. उदयपुर क्षेत्र में उगाये जाने वाले फल बताइये।

आम
(Mango)

वानस्पतिक नाम — Mangifera indical — कुल — Anacardiaceae

आम भारत का प्राचीनतम लोकप्रिय फल है जो देश के हर भागों में उगाया जाता है। इसका विवरण प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। इसकी लकड़ी, पत्ती, फूल सभी मांगलिक कार्यों में काम आते हैं। इससे स्वादिष्ट फल के अलावा हमें छाया, लकड़ी, ईंधन तथा चारा प्राप्त होते है। कच्चे फल चटनी व अचार, अमचूर के काम आते हैं जबकि पक्के फलों से रस, चटनी तथा अन्य परिरक्षित पदार्थ बनाये जाते हैं। विदेशों मे यूरोप, रूस, खाड़ी के देशों, फ्रांस, नेपाल आदि देशों में लगभग 15000 टन निर्यात करके विदेशी मुद्रा अर्जित होती है।

यह विटामिन ए तथा सी का अच्छा स्रोत है। चीनी 18 प्रतिशत तथा प्रोटीन लगभग एक प्रतिशत, खनिज पदार्थ 0.1—0.8 प्रतिशत होते हैं। फल स्वादिष्ट, शक्तिवर्द्धक तथा पेट साफ करने वाला होता है। आम का रस तथा दूध शरीर का कायाकल्प कर देता है।

इसका मूल स्थान हिमालय की तलहटी में उत्तरी पूर्वी भारत तथा बर्मा माना जाता है। देश के अलावा फिलीपाइन्स, इण्डोनेशिया, थाईलैण्ड, बर्मा, मलाया, अफ्रीका, इजरायल, अमेरिका, ब्राजील, कीनिया, आस्ट्रेलिया आदि देशों में उगाया जाता है। भारत में 400 मीटर से ऊँची पहाड़ियों को छोड़कर सभी राज्यों में उगाया जा रहा है। उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, महाराष्ट्र तथा गुजरात प्रमुख उत्पादक राज्य हैं। देश मे लगभग 748000 हेक्टर भूमि में उगाया जाता है जिससे लगभग 10 लाख टन उपज मिलती है।

राजस्थान के उदयपुर, बाँसवाड़ा, डूंगरपुर, चित्तौड़गढ़, भीलवाड़ा, जयपुर, भरतपुर, सीकर, कोटा, चूरू, गंगानगर तथा सवाईमाधोपुर जिलों मे उगाया जाता है।

जलवायु—यह उष्ण कटिबन्ध का फल है जो उपोष्ण कटिबन्ध में भी उगाया जाता है। इसे दक्षिण मे कन्याकुमारी से लेकर हिमालय की तलहटी में 1300 मीटर की ऊँचाई वाले भागों मे लगाते हैं। इसके लिए कड़ी जलवायु, जहाँ चार माह की वर्षा के बाद पूरे वर्ष मौसम ठीक हो, अच्छा मानते हैं। फूल आते समय बादल, वर्षा हानिकारक है। फसल के लिए 75—80° फा. तापमान उपयुक्त है। फल आने के समय ओले तथा तेज हवायें हानिकर हैं।

भूमि और गड्ढे खोदना—आम के पेड़ की जड़ें भूमि में काफी गहरी जाकर फैलती हैं अतः अच्छे जल निकास वाली–5·5 7·5 पी. एच. मान की गहरी दोमट भूमि अच्छी मानी जाती है। जलमग्न, कंकरीली, पथरीली, छिछली, अम्लीय व क्षारीय मिट्टियों में पौधे का विकास अच्छा नहीं होता है। अच्छी मिट्टियों में पौधों का विकास अच्छा होता है तथा स्वादिष्ट फल मिलते हैं।

गड्ढे खोदना—मई जून में 1 × 1 × 1 मीटर आकार के 10 मीटर की दूरी पर गड्ढे खोद लेना चाहिए। इनको मिट्टी से कंकड़ आदि निकालकर अच्छी तरह गुड़ाई कर लेनी चाहिए। गड्ढे में 45 कि. ग्राम गोबर की खाद डाल देनी चाहिये। जब एक-दो बार वर्षा हो जाये तो प्रत्येक गड्ढे में 225 ग्राम नाइट्रोजन, 1.5 कि. ग्राम फास्फोरस तथा 225 ग्राम पोटाश डाल देनी चाहिये। 2 किलो सुपर फॉस्फेट, .5 किलो राख तथा 50 ग्राम बी. एच. सी. मिलाकर गड्ढे को भर देना चाहिये।

किस्में—आम की देश में उगाई जाने वाली लगभग एक हजार से अधिक किस्में हैं। इनको अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग नामों से पुकारते हैं जिनको फलन के अनुसार निम्न प्रकार विभाजित करते है—

शीघ्र तैयार होने वाली किस्में—बम्बई, पीला, अल्फान्जो, सफेदा, गोपाल भोग, रटोल, जरदालू, गुलाब खास, बम्बई हरा।

मध्य पकने वाली किस्में—लंगड़ा, सफेद नं. 1, मलीहाबादी, फजली, हेम सागर, कृष्ण भोग, भरत भोग, मल्लिका, आम्रपाली।

देर से पकने वाली किस्में—सिन्दूरी, तैमुरिया, फजली, माल्दा, चौसा, नीलम, हाथी झूल, मनपसन्द, मुकुल आदि।

देश में लंगड़ा, दशहरी, अलफाजो, बंगनपल्ली लोकप्रिय किस्में है। उत्तरी भारत में बाम्बे ग्रीन, सरोली, लंगड़ा, समरबहिश्त, चौसा अधिक प्रसिद्ध हैं। नीलम बंगलोरी किस्में प्रति वर्ष फल देती हैं। चितला, आफाक के फल सफेद चित्ती वाले पर स्वादहीन हैं। क्रोटन की पत्तियाँ क्रोटन की भाँति रंगीन है। आम की गुलाबर बास रेड, सुरखा कलकत्ता, जाफराम, स्वर्ण रेखा, बनरा रंगीन किस्मे है पर फल उच्चकोटि के नहीं हैं। बारहमासी या दो फसली साल में दो बार फल देती है। इसी तरह से कच्चा मीठा के फल ककड़ी की तरह खाये जाते हैं।

चूसने वाली किस्मों में मिठवा गाजीपुर, लखनऊ सफेदा, मिठवा सुन्दरशाह गिलास, हर दिल अजीज आदि किस्में प्रमुख है।

राजस्थान मे देशी किस्मे रस भण्डार, कलियाँ तथा कलमी आम की बम्बई पीला, दशहरी, लंगड़ा, सिरौली चौसा, फजली, हाफुस किस्में, फ-ली, चपटा, जाती बन्द, तैमूरी, बन्द लाटकम्बू अधिक प्रचलित है।

पौध-प्रवर्धन—देश मे बीजू आम से पौधे अधिक तैयार किये जाते है परन्तु इनके मातृ एवं पितृ दोनों गुण आने से फसल का ज्ञान नहीं हो पाता है। इसलिये उन्नत जाति का वानस्पतिक प्रसारण से स्वय ही पौधा तैयार करना चाहिए। इसके

लिए भेंट कलम, वीनियर ग्राफ्टिंग, साइड ग्राफ्टिंग, सॉफ्ट ग्राफ्टिंग विधियाँ प्रयोग में लाई जाती हैं।

मूलवृन्त तैयार करना—मूलवृन्त बीज से तैयार करते हैं। ओजस्वी तथा बड़े पेड़ों से प्राप्त फलों की ताजी गुठली खेत में उचित दूरी (8-10 मीटर) पर लगा देते हैं। स्टूल लेयरिंग द्वारा मूलवृन्त भी तैयार किया जाता है।

कलम बांधना—पौधों के दो वर्ष के हो जाने पर मूलवृन्त पर धरातल से 22 सेमी. की ऊंचाई पर 5 सेमी. लम्बाई छाल के साथ थोड़ी लकड़ी भी तराश लेते हैं। विशेष चुने पेड़ों से सायन हरा, स्वस्थ, मूलवृन्त की समान मोटाई की शाख चुन लेते है। इस शाख को वीनियर कलम कर देते हैं तथा मौस को भिगोकर पोलीथीन के कागज से लपेट कर बांध देते हैं। यह क्रिया वर्षा ऋतु में करनी चाहिए। वीनियर ग्राफ्टिंग की वृद्धि भेंट कलम से अधिक होती है। लगभग दो माह में कलम जुड़ जाती है। फिर पौधो को 5-6 माह तक छायादार स्थानों पर रखना चाहिए।

पौध लगाना—यदि पौधे पौध घर से लेने है तो पौधों का चुनाव सावधानी से करना चाहिए। यह सीधा, स्वस्थ तथा कलम के बाद एक वर्ष तक पौध घर में रखा होना चाहिए।

पौधो को फरवरी मार्च, जुलाई तथा मानसून के अन्त में लगाया जाता है। पौधो को सावधानी से पौध घर से निकालकर गड्ढे में बीचोंबीच लगा देना चाहिए। तने के पास मिट्टी ऊंची कर देनी चाहिए जिससे पानी न भरे।

खाद—आम के पौधों को फलन से पूर्व तथा फलने पर खाद देना अत्यन्त आवश्यक है। साधारण मिट्टी में 12 किलो गोबर की खाद, 0·75 किग्रा. हड्डी का चूरा, 0·5 कि पोटैशियम सल्फेट अच्छी तरह मिला देना चाहिए तथा सिंचाई करने के बाद पौधा लगाना चाहिए।

पौधों में चार साल तक प्रति वर्ष 100 ग्राम अमोनियम सल्फेट की मात्रा बढ़ाकर देते रहना चाहिए। पांच साल बाद निम्न मात्रा में खाद देनी चाहिए। फलन के बाद निम्न मात्रा में खाद देनी चाहिए।

मात्रा प्रति पेड़ किलों में

पौधे की आयु (वर्ष में)	अमोनिया सल्फेट	सुपर सल्फेट	पोटैशियम सल्फेट
5	0·67	1·90	0·78
6-10	1·60	1·46	0.90
11-15	3·56	1·69	1·29
15 से अधिक	5·25	5·90	1·90

उर्वरकों के मिश्रण को पेड़ो के चारों ओर तने से 30 सेमी. दूर थाला

बनाकर 8-10 सेमी. गहराई पर अच्छी तरह मिलाकर देना चाहिए। उर्वरकों को अक्टूबर, फरवरी तथा जून में देना अच्छा रहता है। फिर भी खाद पौधो के फुटान, फूल-फल लगने तथा बढ़ने के समय उपलब्ध हो सके। प्रत्येक वृक्ष में इसके अलावा 100 किग्रा. गोबर की खाद प्रतिवर्ष दिसम्बर माह में देवें।

सिचाई – छोटे पौधों को गर्मी में 4-5 दिन तथा सर्दी में 10-15 दिन के अन्तर पर पानी देते रहना चाहिए। बड़े पौधो को गर्मी में 1-2 बार तथा सर्दी में एक बार सिंचाई करनी चाहिए जिससे बौर अच्छे आते हैं। फल लगने पर सिंचाई करने से वृद्धि अच्छी होती है।

निराई-गुड़ाई—वर्षा प्रारम्भ होने के पूर्व 2-3 बार निराई-गुड़ाई तथा वर्षा काल की समाप्ति तथा फलन के बाद हल्की जुताई से अच्छे परिणाम मिलते हैं।

काट-छांट—छोटे पौधों को प्रारम्भ से काट-छाट करके सुडौल बना लेना चाहिए। छंटाई वर्षा के समाप्त होने पर करनी चाहिए। छोटे पौधों को धूप तथा पाले से बचाना चाहिए। अफलन होने पर रिंगिंग करना चाहिए।

आम के पौधों की पारस्परिक दूरी अधिक होती है तथा पूर्ण वृद्धि में 5-6 वर्ष लग जाते है। इसलिए खाली जगह में मटर, टमाटर, भिण्डी आदि अल्पकालीन फसलें लेना लाभप्रद रहता है।

फलन—बीजू वृक्ष 5-6 वर्ष तथा कलमी पौधों में तीन वर्ष से फूल आने लगते हैं। उत्तरी भारत में फरवरी-मार्च (बसन्त ऋतु) में 6-8 सप्ताह तक फूल आते हैं और फल मई-जुलाई तक पक जाते हैं।

फल का गिरना—उत्तरी भारत में 99 प्रतिशत फूल और छोटे फल गिर जाते हैं। उभयलिंगी फूलों में से 0·1 प्रतिशत या कम ही फूल विकसित होकर फल बनाते हैं। दशहरी की अपेक्षा लगड़ा में अधिक फल गिरते हैं। फूलो और फलो का गिरना कीटों के प्रकोप, पोषक तत्वो की प्रतियोगिता तथा सिंचाई न करने के कारण होता है।

आम में एकान्तरिक फलन के कारण और नियंत्रण—आम की सभी किस्मो में द्विवर्षी फलन समस्या है। यह आनुवांशिक गुणो के कारण होती है। फल के वृक्ष अपने प्रत्येक फलन मे नियमित फल नही देते हैं। इसके लिए आन्तरिक तथा बाह्य दोनो कारक उत्तरदायी है। विभिन्न अनुसंधानों एवं प्रयोगो से यह निश्चित हो गया है कि पेड़ में पौष्टिक पदार्थ को सुरक्षित रखे तथा प्रति वर्ष फलन के लिए नये प्ररोह उपलब्ध हों इसके लिए निम्न उपाय करने चाहिए—

(i) उचित दूरी पर उद्यान में पौधो को लगाया जावे।
(ii) पौधों में पर्याप्त मात्रा मे जीवांश खाद देनी चाहिए।
(iii) वर्षा ऋतु के बाद तथा सर्दी में नियमित जुताई करना चाहिए।
(iv) अनावश्यक पुरानी, खराब टहनियों को काट-छांटकर देनी चाहिए।

(v) बसन्त में वृद्धि कम होने पर उर्वरकों को जून माह में देकर सिंचाई करनी चाहिए।

(vi) पौधों को कीटों तथा रोगों से सुरक्षित रखना चाहिए।

(vii) प्रति वर्ष फल देने वाली किस्में जैसे मल्लिका आदि लगानी चाहिए।

पौधों में फल लगने पर नये प्ररोह नहीं आते हैं। इनके तोड़ने के बाद कम मात्रा में प्रहरी आते हैं जिनकी अगले साल फूलने की क्षमता नहीं रहती है। नये प्ररोह बसन्त ऋतु में विकसित होते हैं जो इस मौसम में न फूलकर अगले मौसम में फूलते हैं। इसी से फलन में एक वर्ष का अन्तर रहता है।

उपज—आम की उपज किस्म तथा जलवायु पर निर्भर करती है। दस वर्ष की उम्र के पेड़ से 300–500 फल मिलते हैं जो 15वें साल में 1000 तक हो जाते हैं। 20 वर्षीय पेड़ 2000 फल (80–100 किग्रा.) देते हैं। इन पौधों से 40–50 वर्ष तक अच्छी देखरेख करने पर फल मिलते हैं।

कीट एवं रोग :

(1) आम का चेंपा या मिलीबग—इसके सफेद कोमल तथा मंदगति वाले कीड़ों के झुण्ड पेड़ की टहनी, पुंजशाखा, छोटे फलों के डण्ठलों पर फरवरी-मई तक रस चूसते रहते हैं तथा एक चिपचिपा पदार्थ निकालते हैं जिससे काली फफूँदी का भी प्रकोप हो जाता है। इससे उत्पादन में कमी हो जाती है।

रोकथाम—(i) मादा अण्डे मई-जून में भूमि में देती है, अतः जड़ों के पास गहरी खुदाई करके अण्डे समाप्त हो जाते हैं।

(ii) पेड़ के तने के चारों ओर मिट्टी या बालू का ढेर लगा देना चाहिए।

(iii) तने पर लगभग 40–60 सेमी. की ऊँचाई तक ग्रीस व कोलतार 1 : 2 का लेप दिसम्बर माह से 15–15 दिन के अन्तर पर मार्च तक करते रहें।

(xi) 2 प्रतिशत फालिडोल व धूल का बुरकाव थाले में करना चाहिए तथा डायजिनान का 0·05 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए।

(2) तना छेदक—यह कीट पुराने तथा उपेक्षित बागों में अधिक लगता है। ये तने में छेद करके पौधों को हानि पहुँचाते हैं।

रोकथाम—(i) तार से कीड़ों को बाहर निकालकर मार देना चाहिए।

(ii) छेदों को पेट्रोल या क्लोरोफार्म या कार्बन, डाइसल्फाइड को रुई में भिगोकर बन्द कर देना चाहिए।

(3) आम की फल मक्खी—इसकी मादा फलों के छिलकों में अण्डे देती है। इसके मेगट के नीचे सुरंग बनाकर गूदे को खाकर फल को खराब कर देता है।

रोकथाम—(i) प्रभावित फलों को नष्ट कर देना चाहिए।

(ii) 500 मिलीग्राम आटे या चीनी में 5 ग्राम मैलाथियान मिलाने से विषमय भोजन बन जाता है जिसको खाने पर प्रौढ़ मक्खियाँ खाकर मर जाती हैं।

(4) आम की चूर्णी फफूँद—इस रोग से फूलों तथा छोटे फलों पर भूरा-सफेद चूर्ण-सा हो जाता है जिससे फूल तथा फल तक झड़ जाते हैं तथा फसल को हानि होती है।

रोकथाम—(i) गंधक का 0·2 प्रतिशत का घोल 15 दिन के अन्तर पर 3-4 बार छिड़काव करना चाहिए।

(ii) सुएसटाम एक किलो प्रति पेड़ भुरकना लाभप्रद है।

(5) एन्थ्रेक्नोज—वातावरण में अधिक समय तक नमी होने पर इस रोग के कारण पत्तियों पर भूरे चकत्ते हो जाते हैं। टहनियाँ, पुष्पक्रम तथा छोटे फलों पर काले धब्बे हो जाते हैं जो गिर जाते हैं।

रोकथाम—(i) बोर्डो मिश्रण (3 : 3·50) या कैप्टान का छिड़काव तीन बार फरवरी, अप्रैल तथा सितम्बर माह में करना चाहिए।

(ii) प्रभावित परिपक्व फलों को 51° सेग्रे. गर्म पानी में 15 मिनट तक डुबोकर संग्रहण करने पर हानि होती है।

(6) फल के सिरे का काला दाग—यह रोग ईंटों के भट्टे के पास के उद्यानों में होता है। भट्टे की SO_2, एथिलीन, कार्बन मोनोऑक्साइड गैसें फल के सिरों को काला कर देते हैं जिससे फल वृद्धि न करके मुलायम होकर सड़ जाता है।

रोकथाम—(i) बाग भट्टों से 1 किलोमीटर की दूरी पर लगाये जावें।

(ii) कॉस्टिक सोडा का 0·8 प्रतिशत को घोल मार्च व अप्रैल के अन्त में छिड़कना चाहिए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. आम की खेती का निम्न बिन्दुओं पर वर्णन करो—
   (i) गड्ढे खोदना (ii) पौध रोपण (iii) खाद (iv) फलन (v) उपज।
2. आम के वृक्षों से प्रतिवर्ष फलन मिलने के कारण व उपाय लिखो।
3. राज्य में आम की उगाई जाने वाली विशेष किस्म लिखो।
4. निम्न पर टिप्पणी लिखो –
   (i) फलों का गिरना
   (ii) फल के सिरों पर काला दाग रोग

अमरूद
(Guava)

वानस्पतिक नाम—*Psidium guajaval* कुल—*Myrtaceae*

अमरूद भारत के सर्वश्रेष्ठ फलों में एक फल है। इसके वृक्ष सहनशील होने से विभिन्न प्रकार की मिट्टी और जलवायु से पैदा किया जाता है। यह वर्ष भर मिलता है जिसे अमीर और गरीब उपयोग में लाते हैं। सस्ता एवं स्वास्थ्यप्रद होने से इसे 'गरीब मनुष्यों का सेब' कह कर पुकारते हैं।

पोषक गुणों मे कई फलों से अच्छा है। इसे कच्चा तथा पके रूप में खाया जाता है। जैली, जैम, ग्वार नेक्टर के अलावा कई अन्य पदार्थ तैयार किये जाते हैं।

इसका मूल स्थान मेक्सिको और पेरु मानते हैं। भारत में इसका प्रवेश सत्रहवीं शताब्दी से पूर्व हो चुका था। अब यहीं का देशज माना जाता है। भारत में लगभग 58 हजार हेक्टर भूमि इसके अन्तर्गत है। यह मैदानी भागों से लेकर पहाड़ी क्षेत्रों में सफलता से उगाया जाता है। उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश प्रमुख उत्पादक राज्य हैं। राजस्थान में श्रीगंगानगर, चूरू, बीकानेर, पाली, नागौर जयपुर जिलों मे उगाया जाता है।

जलवायु—यह उष्ण तथा उपोष्ण जलवायु का वृक्ष होने से गर्म तथा शुष्क जलवायु में पैदा किया जा सकता है। 250 सेमी. से अधिक वर्षा हानिकारक है। यह सूखा तथा पाले को सहन कर सकता है परन्तु पौधे की छोटी अवस्था में लू तथा पाले से बचना चाहिये। जहाँ तापमान, आर्द्रता के उतार-चढ़ाव मे कम अंतर आवे, गर्मी तथा वर्षा के निश्चित मौसम होते हैं वहाँ इनके फूलने-फलने का एक विशेष समय होता है।

भूमि—यह चिकनी तथा बलुई दोनों ही मिट्टीयों में उगाया जा सकता है। यह भूमि जो बागवानी के लिए अनुपयुक्त होती है वहाँ इसे पैदा कर सकते हैं। परन्तु गहरी, उपजाऊ, बलुई दोमट भूमि अच्छी रहती है।

भूमि की अच्छी जुताइयाँ करने के बाद पाटा लगाकर समतल कर लेना चाहिये। फिर गर्मी के दिनो में 6–8 मीटर की दूरी पर वर्गाकार या आयताकार

विधि में 1×1×1 मीटर आकार के गड्ढे खोद लेना चाहिये। बीजू पौधों के लिये गड्ढे दूरी पर तथा कलमी पौधों के लिए पास-पास गड्ढे खोदते हैं। गड्ढे में 50 ग्राम 50 प्रतिशत वाली बी. एच. सी. तथा अच्छी सड़ी-गली 40-50 किग्रा. गोबर की खाद मिला देना चाहिये।

किस्में—अमरूद की लगभग 92 किस्में उगाई जाती हैं जिनका आकार, रंग, स्थानीय लोकप्रियता के आधार पर विभाजित किया जाता है। प्रमुख किस्में निम्न हैं—

इलाहाबादी, सफेदा, धिलीदार, लालगूदा, लखनऊ 49, (सरदार अमरूद), अमरूद सेब, बेदाना, नासिक, धारवाड़, धारीदार आदि।

इनमें इलाहाबादी, सफेदा तथा लखनऊ-49 सर्वोत्तम किस्में हैं जिसके फल का छिलका चिकना और चमकदार, गूदा सफेद व मुलायम, स्वाद मीठा व रुचि तथा फल मध्यम आकार का होता है। अमरूद सेब नई किस्म है जिसका फल मध्यम आकार के लाल रंग के सेब की भाँति होता है।

पौध प्रवर्धन—इसका प्रसारण अधिकतर बीज द्वारा होता है। बीज को 4-5 मिनट तक उबलते पानी में रखने से बीजों का अंकुरण 3-4 माह में हो जाता,परन्तु अधिक तथा शीघ्र फलन के लिए वानस्पतिक प्रसारण आवश्यक है। अमरूद में वानस्पतिक प्रसारण भेंट कलम, चश्मा चढ़ाना, वी नियर कलम, गूटी, स्टूलिंग, कटिंग तथा लेयरिंग विधियाँ काम में लाते हैं।

पौध लगाना—पौधों को जुलाई-अगस्त माह में लगा देते हैं। पौधों को मिट्टी सहित निकाल कर गड्ढों के बीच दबाकर लगाते हैं तथा तुरन्त सिंचाई कर देते हैं।

खाद—अमरूद एक सहिष्णु फल है। फल आने तक खाद देने की आवश्यकता नहीं होती है फिर भी अच्छे फलोत्पादन के लिए उम्र के अनुसार खाद लेनी चाहिये।

मात्रा प्रति पेड़ किग्रा. में

पौधे की आयु	गोबर की खाद	अमो. सल्फेट	सुपर फास्टफेट	म्यू. पो.
1–3	20–40	0.50	0.25	—
4–7	50–60	0.50	1.00	0.25
7 वर्ष के बाद	60–80	1.00	1·75	0.50

जीवांश खाद तथा उर्वरकों का मिश्रण की आधी मात्रा जून तथा शेष नवम्बर मे दें। मिश्रण को तने के पास-पास 30 से.मी. गहराई पर देते हैं क्योंकि इसकी जड़ें उथली होती हैं।

राज्य के अजमेर क्षेत्र में जस्ते की कमी के लक्षण प्रकट होने पर 0.5 किग्रा. जिंक सफेद तथा 0.25 किग्रा. बिना बुझे चूने का 750 लीटर का घोल दो बार छिड़काव लाभप्रद रहता है।

सिंचाई—सिंचाई की मात्रा व संख्या मिट्टी की किस्म, पेड़ों की अवस्था, फल वृक्ष की किस्म तथा स्थान की जलवायु पर निर्भर करती है। गर्मी में प्रति माह दो बार तथा सर्दी में एक बार सिंचाई करनी चाहिये। पानी की अधिकता या न्यूनता दोनों फसल के लिए हानिकारक हैं। फलन के समय सिंचाई करने से बड़े फल मिलते हैं।

निराई-गुड़ाई—प्रत्येक सिंचाई के बाद हल्की निराई करके खरपतवार निकाल देना चाहिये। प्रारम्भिक वर्षों में बाग में मक्का, उड़द, मूंग, आलू, चना, मटर तथा अन्य सब्जी की फसल की जा सकती है।

काट-छांट—अमरूद के पौधों में काट-छांट नहीं की जाती परन्तु पेड़ को विशेष आकार तथा मजबूत ढांचे के लिए काट-छांट आवश्यक है। मुख्य तने की 90 सेमी. ऊँचाई पर कोई शाखा न रखकर बाद में 3–4 शाखाओं की वृद्धि होने देते हैं तथा प्रति 3–4 वर्ष के अंतराल पर ऊपर से काटते रहते हैं।

फूल आने का समय—उत्तर भारत में पेड़ पर तीन बार फूल एवं एक वर्ष पुरानी टहनी पर आते हैं—

बहार का नाम	फूल आने का समय	फल आने का समय
अम्बे बहार	फरवरी-मार्च	बरसात
मृग बहार	जुलाई-अगस्त	सर्दी
हस्ति बहार	अक्टूबर-नवम्बर	बसंत ऋतु

परन्तु वर्षा तथा जाड़े की ऋतु में फसल अच्छी होती है। वर्षा ऋतु की अपेक्षा जाड़े की फसल के अमरूद स्वादिष्ट, आकार में बड़े होते हैं। वर्षा में ताप व नमी अधिक होने से रोग व कीड़े अधिक लगते हैं।

वर्षा की फसल न लेने के लिए जनवरी में सिंचाई नहीं करते हैं जिससे बसंत ऋतु में वानस्पतिक वृद्धि कम होने से फलन कम होगा। नेप्थीन एसिटिक एसिड के छिड़काव से फूलों को गिराया जा सकता है।

फलों की जंगली जानवरों तथा पक्षियों से रखवाली करना आवश्यक होता है। कहीं-कहीं पर पेड़ों के ऊपर पतले तारों की जाली भी लगा देते हैं।

फलन - बीजू वृक्ष 6–7 वर्ष तथा कलमी 3 वर्ष बाद फल देने लगता है। फलों के हल्के पीले पड़ने पर सावधानीपूर्वक हाथ से तोड़कर वर्गीकृत करके टोकरियों में भरकर भेज दिया जाता है।

फलों को 47-56° फा. तापमान पर एक माह तक रखा जा सकता है। कमरे में अधपके फलों को एक सप्ताह तक रखा जा सकता है। इस काल में वे पूरे पक जाते हैं।

उपज—बीज पेड़ से 400–600 फल (60–80 किलो) तथा कलमी पेड़ों से 1000–1200 (150–250 किग्रा.) फल मिलते हैं। एक हेक्टर उद्यान से लगभग 200–300 क्विटल फल प्राप्त होते हैं।

कीट एवं रोग—फसल में कीटों से विशेष हानि नहीं होती है फिर भी छिनके खाने वाली इल्ली तथा मिलीबग हानि पहुँचाते हैं जिससे बरसाती फसल को हानि होती है। ग्राम में वर्णित तरीके अपनाने चाहिये।

उकठा रोग (Guavawilt)—यह कवक द्वारा फैलता है जिससे समूचा बाग कुछ वर्षों में नष्ट हो जाता है। शाखायें व टहनियाँ एक-एक करके ऊपर से नीचे की ओर सूखती चली जाती हैं तथा पूरा पेड़ सूख जाता है। यह क्षारीय मिट्टी (पी. एच. 75 अधिक) में अधिक होता है।

रोकथाम—(i) रोग के लक्षण दिखते ही पूरे पौधे को उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिये।

(ii) जल निकास का उचित प्रबन्ध करना चाहिये।

एन्थ्रेकनोज रोग—यह कवक द्वारा फैलता है। इससे फलों पर काले चकते पड़ जाते हैं जिससे वृद्धि रुक जाती है और वह पूरा काला पड़ जाता है। यह वर्षा में अधिक होता है।

रोकथाम—बोर्डो मिश्रण (3 : 3 : 50) का छिड़काव करना चाहिये।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. अमरूद की खेती का निम्न बिन्दुओं पर वर्णन करो—
   (i) भूमि व गड्ढा तैयार करना।
   (ii) पौध प्रवर्धन का समय
   (iii) पौध लगाने का समय
   (iv) फलन (v) उपज (vi) काट-छाँट
2. अमरूद में फूल और फल आने का समय लिखो और किस समय के फल अच्छे रहते हैं ?
3. उद्यान सुरक्षा किस प्रकार करोगे ?

भूमि—इस जाति के फल विभिन्न प्रकार की मिट्टी में उगाये जा सकते हैं। अधिक उपजाऊ, $2\frac{1}{2}$ मीटर गहरी दोमट भूमि सर्वोत्तम है। जिन भूमि का पी. एच. मान 5.5-6.5 तक हो फलों के लिए अच्छी है। फिर भी निश्चित क्षेत्र की मिट्टी और जलवायु फल विशेष में अच्छी है। नागपुर के आसपास की भारी काली मिट्टी, जिसकी निचली तह कंकरीली है, सन्तरे के लिए अच्छी है।

गड्ढे तैयार करना—खेत की अच्छी तरह जुताई करके समतल तथा भुरभुरी कर लेनी चाहिए। खेत की प्रजाति के अनुसार सन्तरा, माल्टा 5 मीटर कागजी नीबू, लेमन, ग्रेप फ्रूट 6.5 मीटर की दूरी रखकर रेखांकन कर लेते हैं फिर पौधे लगाने के समय के अनुसार दो माह पूर्व 1 × 1 × 1 मीटर आकार के गड्ढे बना लेते हैं। गड्ढे की 30 से. मी. गहराई की मिट्टी अलग कर लें तथा बाद में 30 किग्रा गोबर की खाद, 20-25 ग्राम एल्ड्रिन, 100 ग्राम A. S. गड्ढों की भूमि से 15 से. मी. ऊँचाई तक भर देना चाहिए। जुलाई-अगस्त की वर्षा में मिट्टी के जलशोषण के बाद पौधे लगाना चाहिये।

किस्में—नीबू परिवार की निम्न किस्में प्रमुख हैं—

सन्तरा (Mandainc reticulata)—नागपुरी, किन्नो, खासी

माल्टा (Sweet orange c. sinesis)—हैमलिन (पतले छिलके) 'पाइन एपिल, जाफा, ब्लड रेड माल्टा, वैलेन्शिया, ब्लड रेड।

नीबू (Lime c. a raniifolia)—कागजी, बारामासी, पंत लेमन।

ग्रेप फ्रूट (चकोतरा) (Grape fruit, C. paradise)—मार्श सीड लेस थाम्पसन, फोस्टर।

प्रवर्धन—नीबू प्रजाती के फलों का प्रवर्धन, बीज, कलम, गूटी, कलिकायन द्वारा किया जाता है। सबसे लोकप्रिय विधि 'T' बडिंग है।

मूलवृंत—इसके लिए खट्टा या मीठा नीबू, जही खट्टी, रफ लेमन, जम्मीरी भूमि व जलवायु, तथा फल के पौधे की किस्म की अनुकूलता के आधार पर चयन करते हैं। मूलवृंत बीज को फल से निकालने के 2 हफ्ते के अन्दर पौध घर में अगस्त-सितम्बर मे बीज बो दिया जाना चाहिये। बीजू पौधों की देखरेख करते हैं एक वर्ष की आयु वाले पौधे चश्मा चढ़ाने योग्य होते हैं।

कलिकायन—चश्मा चढ़ाने का कार्य उत्तरी भारत में बसंत ऋतु या अगस्त-सितम्बर मे किया जाता है। स्वस्थ शाख मे स्वस्थ एव विकसित कली को चुनते हैं। कली यथा समय शाखा के बीच वाले भाग से लेनी चाहिये। मूलवृंत पर कली बिठाने के बाद उचित देखरेख करते रहना चाहिये। कली के विकसित होने पर शाखाओं को काट देना चाहिए।

पौधे लगाना—पौधों को पौध घर से सावधानी से निकालना चाहिए। पौ

नीबू प्रजाति के फल
(Citrus)

कुल—Rutaceae

इन फलों का, व्यावसायिक तथा विशिष्ट गुणों से विशेष महत्व है। इसके अन्तर्गत माल्टा, सन्तरा, कागजी नीबू, चकोतरा, लेमन तथा ग्रेप फ्रूट आदि फल आते हैं।

इन फलों का स्वास्थ्य के लिए विशेष महत्व है। इनसे प्राप्त रस से स्क्वैश, सार (Essence), साइट्रिक अम्ल आदि वस्तुयें बनाई जाती हैं। नीबू का अचार अच्छा बनता है। सन्तरे तथा लेमन का लोकप्रिय स्क्वैश बनाया जाता है। ओरेंज से मार्मलेड, सन्तरे तथा ग्रेप फ्रूट की फांकों की डिब्बे बन्दी भी की जाती है। फल तथा फलों से बने पदार्थ स्वस्थ तथा रोगी व्यक्तियों के लिए लाभदायक हैं।

इन फलों की उत्पत्ति भारत के असम क्षेत्रों में हुई है। सन्तरा, माल्टा, चीन का देशज है। विश्व में अमेरिका, स्पेन, इटली, मेक्सिको, जापान, इजराइल, अफ्रीका, ब्राजील, आस्ट्रेलिया आदि उत्पादक देश हैं।

भारत में इनकी खेती शताब्दियों से की जाती है। परन्तु व्यावसायिक रूप में 30-40 वर्ष से हो रही है। इनमें सन्तरा, माल्टा तथा नीबू, लेमन प्रमुख हैं। देश में लगभग 90000 क्षेत्र से 8.25 लाख टन उत्पादन मिलता है। सन्तरा नागपुर के आसपास, असम और कर्नाटक का कुर्ग क्षेत्र, माल्टा महाराष्ट्र, पंजाब, आन्ध्रप्रदेश, राजस्थान तथा नीबू आन्ध्रप्रदेश तथा महाराष्ट्र में उगाया जाता है।

जलवायु—ये उष्ण तथा उपोष्ण जलवायु के फल हैं। विभिन्न जलवायु, 4000 मीटर की ऊँचाई वाले क्षेत्र में पैदा किये जा सकते हैं। वायुमण्डल की आर्द्रता की अपेक्षा भूमि की नमी अधिक आवश्यक है। माल्टा राज्य के उत्तरी भाग गंगानगर क्षेत्र में पैदा होता है। सन्तरा झालावाड़ व कोटा जिले में होता है।

तापमान में थोड़ा परिवर्तन फूलने तथा फलने पर प्रभाव डालता है। अधिक तथा कम ताप दोनों हानिकारक हैं। दक्षिण भारत में मौसम के विशेष परिवर्तन न होने से फसल एक से अधिक ली जाती है।

भूमि—इस जाति के फल विभिन्न प्रकार की मिट्टी में उगाये जा सकते हैं। अधिक उपजाऊ, $2\frac{1}{2}$ मीटर गहरी दोमट भूमि सर्वोत्तम है। जिन भूमि का पी. एच. मान 5.5-6.5 तक हो फलों के लिए अच्छी है। फिर भी निश्चित क्षेत्र की मिट्टी और जलवायु फल विशेष में अच्छी है। नागपुर के आसपास की भारी काली मिट्टी, जिसकी निचली तह कंकरीली है, सन्तरे के लिए अच्छी है।

गड्ढे तैयार करना—खेत की अच्छी तरह जुताई करके समतल तथा भुरभुरी कर लेनी चाहिए। खेत की प्रजाति के अनुसार सन्तरा, माल्टा 5 मीटर कागज़ी नीबू, लेमन, ग्रेप फ्रूट 6.5 मीटर की दूरी रखकर रेखांकन कर लेते हैं फिर पौधे लगाने के समय के अनुसार दो माह पूर्व 1 × 1 × 1 मीटर आकार के गड्ढे बना लेते हैं। गड्ढे की 30 से. मी. गहराई की मिट्टी अलग कर लें तथा बाद में 30 किग्रा गोबर की खाद, 20-25 ग्राम एल्ड्रिन, 100 ग्राम A. S. गड्ढों की भूमि से 15 से. मी. ऊंचाई तक भर देना चाहिए। जुलाई-अगस्त की वर्षा में मिट्टी के जलशोषण के बाद पौधे लगाना चाहिये।

किस्में—नीबू परिवार की निम्न किस्में प्रमुख हैं—

सन्तरा (Mandainc reticulata)—नागपुरी, किन्नो, खासी

माल्टा (Sweet orange c sinesis)—हेमलिन (पतले छिलके) 'पाइन एपिल, जाफा, रेड ब्लड माल्टा, वैलेन्शिया, ब्लड रेड।

नीबू (Lime c. a raniifolia)—कागज़ी, बारामासी, पंत लेमन।

ग्रेप फ्रूट (चकोतरा) (Grape fruit, C. paradise)—मार्श सीड लेस, थाम्पसन, फोस्टर।

प्रवर्धन—नीबू प्रजाती के फलों का प्रवर्धन बीज, कलम, गूटी, कलिकायन द्वारा किया जाता है। सबसे लोकप्रिय विधि 'T' बडिंग है।

मूलवृंत—इसके लिए खट्टा या मीठा नीबू, जही खट्टी, रफ लेमन, जम्मीरी, भूमि व जलवायु तथा फल के पौधे की किस्म की अनुकूलता के आधार पर चयन करते हैं। मूलवृंत बीज को फल से निकालने के 2 हफ्ते के अन्दर पौध घर में अगस्त-सितम्बर मे बीज बो दिया जाना चाहिये। बीजू पौधों की देखरेख करते हैं। एक वर्ष की आयु वाले पौधे चश्मा चढ़ाने योग्य होते हैं।

कलिकायन—चश्मा चढ़ाने का कार्य उत्तरी भारत मे वसंत ऋतु या अगस्त-सितम्बर मे किया जाता है। स्वस्थ शाख मे स्वस्थ एवं विकसित कली को चुनते हैं। कली यथा समय शाखा के बीच वाले भाग से लेनी चाहिये। मूलवृंत पर कली बिठाने के बाद उचित देखरेख करते रहना चाहिये। कली के विकसित होने पर शाखाओं को काट देना चाहिए।

पौधे लगाना—पौधों को पौध घर से सावधानी से निकालना चाहिए। पौधों

को शाम के समय लगाना चाहिए तथा लगाने के तुरन्त बाद सिंचाई करनी चाहिए।

खाद - नीबू वर्ग के फलों में अधिक नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है। इसके अलावा अन्य तत्वों की भी आवश्यकता है। तत्वों की कमी से पौधे छोटे व कमजोर रह जाते हैं अतः उम्र के अनुसार निम्न मात्रा देनी चाहिये —

पौधे की आयु (वर्षों में)	खाद की मात्रा (किलोग्राम)			
	गोबर की खाद	अमो. सल्फेट	सु. फास्फेट	म्यू. पोटाश
1-3	10-15	0 250-0 750	0.250-0.675	0.150 0.750
4-6	20-50	1.0-1.5	0·50-1 00	1.25
7-9	60-75	1.5-2 0	1.25-1 50	1 50
10 से अधिक	100	2.0-4.0	2.0	1.75

इनका मिश्रण वर्ष मे 2-3 बार देना (जनवरी-अप्रैल) अच्छा रहता है। कुछ सूक्ष्म तत्वो जस्ता, तांबा व मैग्नीशियम की कमी के लक्षण प्रकट हो जाते हैं। अतः हरा कसीस, तुतिया, बोरिक पाउडर, जिंक सल्फेट, मैग्नीशियम सल्फेट की समान मात्रा की 4 किलो को 1000 लीटर का घोल 8-10 वर्ष पुराने 200 पेड़ो के लिए पर्याप्त है। घोल को फरवरी-जुलाई मे छिड़कना चाहिए।

सिंचाई—मिट्टी मे नमी को ध्यान मे रखकर सिंचाई करनी चाहिए। सर्दियो मे अधिक सिंचाई से भूमि का तापमान कम होने से जड़ों की कार्यशीलता कम हो जाती है। अंगूठी विधि प्रयोग करनी चाहिए।

देखरेख—बाग में पौधों के चारों ओर सिंचाई के बाद निराई-गुड़ाई करके खरपतवारों को नष्ट करते रहना चाहिये।

पौधों की कांट-छांट फूलने तथा फलन के लिए ही नहीं बल्कि पौधों का वांछनीय आकार तथा अच्छी दशा के लिए आवश्यक है। पौधों से अचानक निकले जल प्ररोहों तथा प्रकन्द से निकले फुटानों को काट देना चाहिए। जनवरी-फरवरी में नई शाखाओं के निकलने से पूर्व सूखी, रोग ग्रस्त शाखाओं को काटकर अलग कर देना चाहिए।

पौधों की छोटी अवस्था से फल देने तक मूंग, उड़द, लोबिया, मटर आदि फसलें पंक्ति में बोई जा सकती हैं।

फलन—बीजू पौधों से 8 वर्ष तथा कलमी पौधों से 5 वर्ष की उम्र से फल मिलने लगते हैं। पौधों में वर्ष में तीन बार फूल आते हैं।

फूल आने का समय	बहार	फल का लगना
1. फरवरी-मार्च (बसन्त ऋतु)	अम्बे बहार	नवम्बर-दिसम्बर
2. जुलाई-अगस्त (वर्षा)	मृग बहार	मार्च-अप्रैल
3. अक्टूबर-नवम्बर (सर्दी)	हस्ति बहार	जुलाई-अगस्त

उपज की दृष्टि से एक ही बार फल लेना अच्छा रहता है। राजस्थान में अम्बे बहार, मृग बहार के फूल आते हैं। जिस बहार को न लेना हो उससे फूल आने के एक माह पूर्व सिंचाई बन्द करके जड़ें खोल कर खाद भर देनी चाहिए।

फूलने के लगभग 8-9 माह मे फल मिलते हैं। नीबू लेमन फूलने के 6 माह में पक जाते है जबकि कागजी नीबू वर्ष भर मिलते रहते हैं।

फलों के रंग पीले पड़ने पर तोड़ लेना चाहिए। कागजी नीबू तथा लेमन परिपक्व होने पर हरी अवस्था में तोड़ लेते हैं। सन्तरा पकते ही तोडते है पर माल्टा पेड़ पर पकने के 1-2 माह बाद तोड़ा जाता है।

उपज—फल वृक्ष की आयु, वृद्धि तथा किस्म पर निर्भर करते हैं। अच्छी व्यवस्था करने पर पौधों से 35 वर्षों तक उपज मिलती रहती है। औसत उपज प्रति पेड़ निम्न प्रकार है—

सन्तरा–450 फल प्रति पेड़, नीबू–1000 फल प्रति पेड़,

माल्टा–500 फल प्रति पेड़ ग्रेपफ्रूट-300–फल प्रति पेड

भण्डारण—फलों को तोड़ने के बाद आकार के अनुसार श्रेणीबद्ध करके बाँस की टोकरियों, जूट के बोरे, पेटियो मे अच्छी तरह पैक करके विपणन के लिए ट्रक, रेल से भेज दिया जाता है। शीत संग्रहण में माल्टा 35-40° फा., मौसम्बी 52° फा., नीबू 40-45° फा., लेमन 55-58°फा., तापमान तथा 85-90 प्रतिशत आपेक्षित आर्द्रता पर 3-4 माह तक भण्डारण किया जा सकता है।

कीट एवं रोग :

कीट—नीबू के पौधों में सफेद मक्खी, मिनी बग, माइट्स, तना बेधक, पत्ती खाने वाली इल्ली, फसल चूसक शलभ, अधिक हानि पहुँचाते हैं।

पत्ती खाने वाली इल्ली—इसका प्रकोप नये पौधों में होता है जिसका लार्वा कोमल पत्तियों को खाकर काफी हानि पहुँचाता है। ये अप्रैल-मई, अगस्त-अक्टूबर तक हानि पहुँचाते हैं।

रोकथाम—(i) प्रारम्भ में चींटियो की भांति होते हैं, ढूंढकर इकट्ठा करके नष्ट कर देना चाहिये।

(ii) 0.02 प्रतिशत पैराथियान का छिड़काव कई बार करना चाहिये।

फसल चूषक शलभ (Fruit Sucking Moth)—इस कीट के पतंगे रात में उड़ते हैं तथा फलों में छेद करके रस चूस लेते हैं जिससे अन्य, कवक तथा विषाणु

रोग से प्रभावित होकर सड़ जाते हैं। यह कीट अगस्त, अक्टूबर तक अधिक हानि पहुँचाते हैं।

रोकथाम—(i) बाग में खरपतवारों को हटाकर साफसुथरा रखना चाहिये।

(ii) पतंगों को रात को प्रकाश पाश रखकर नष्ट करना चाहिये।

(iii) चौड़ी मुँह की शीशियों में 250 ग्राम पतले गुड़ को 5 लीटर पानी मे घोल कर सिरके की कुछ बूंदें तथा 7 ग्राम लेड आर्सेनेट के घोल का कुछ मात्रा भरकर बाग में कई जगह रखनी चाहिये। कीड़े रात में इसे खाकर नष्ट हो जावेंगे।

सिट्रस साइला—इस कीट का निम्फ कोमल पत्ती, टहनी कलियों का रस चूसकर पौधे को कमजोर बना देते हैं जिससे पत्तियाँ गिर जाती है, काली फफूंद का प्रकोप भी हो जाता है।

रोकथाम—कीड़े दिखते ही 0.025 प्रतिशत फास्फेमिडान या पैराथियान या 0.05 प्रतिशत मैलाथियान का छिड़काव कई बार करना चाहिये।

गोल कृमि (नेमाटोड)—इसके प्रकोप से पौधों की जड़ें भोजन ग्रहण नहीं कर पाती हैं और वे सूख जाते हैं फल छोटे रह जाते हैं तथा समय से पूर्व पक जाते हैं।

रोकथाम—(1) रोगी नर्सरी से पौधे नहीं लेना चाहिये।

(2) भूमि का धूमक से जीवाणु हनन करके पौधे लगाना चाहिए (डी डी. मिश्रण 120-180 किग्रा)

(3) प्रतिरोधी प्रकन्द लेने चाहिए।

रोग :

सिट्रस कैंकर (Citrus canker)—यह 'जैन्थोमोनाज सिट्राई' जीवाणु से फैलता है। यह टहनी व पत्ती को अधिक हानि पहुँचाता है। इससे पत्तियों का रंग हल्का पीला दाग युक्त हो जाता है। बाद मे खुरदरी बनावट बन जाती है। यह पौध घर में तथा बड़े पेड़ों दोनों को हानि पहुँचाती है।

रोकथाम—(i) रोगी टहनी को वर्षा से पूर्व काट छांट देनी चाहिए।

(ii) गिरी पत्तियों को इकट्ठा करके नष्ट कर देना चाहिये।

(iii) पौधों पर वर्षा से पूर्व या बाद में बोर्डो मिश्रण (5 : 5 : 50) छिड़कना चाहिए।

(iv) स्ट्रेप्टोसाइक्लीन (3 ग्राम 30 गैलन पानी) तथा नीम की खली का घोल छिड़कना चाहिए।

एन्थ्रेक्नोज—यह कवक से फैलता है जिससे रोगी टहनी पत्तियों पर काले धब्बे हो जाते हैं। शाखायें सूखकर गिर जाती हैं। कभी-कभी पूरा पौधा सूख जाता है। कच्चे फल भी गिर जाते हैं।

रोकथाम—(i) रोगी टहनियाँ काटकर जला देना चाहिए।

(ii) कटे भागों पर बोर्डो लेप लगा दें तथा मार्च-सितम्बर में बोर्डो मिश्रण का छिड़काव कर देना चाहिए।

फलों के सूखने की बीमारी (Citrus dieback)—यह दस वर्ष से अधिक आयु के पौधों में होता है जो तत्वों की कमी, उचित प्रबन्ध की कमी तथा रोगाणुओं से होती है। देश में ग्रीनिंग विषाणु इस रोग का मुख्य कारण है जो संसगित लकड़ी तथा साइला कीड़े से विपरीत होती हैं। अधिक प्रकोप होने पर पूरा पौधा ही सूख जाता है।

रोकथाम—(i) जल निकास का प्रबन्ध करना चाहिए।

(ii) उचित मात्रा में खाद तत्वों का प्रयोग करना चाहिए।

(iii) बाग का उचित प्रबन्ध, गहरी जुताई निराई-गुड़ाई करनी चाहिए।

(iv) रोगी पौधों को निकाल कर नष्ट कर देना चाहिए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. नीबू वर्गीय विभिन्न फसलों के नाम लिखो।

2. नीबू की खेती का—गड्ढे तैयार करना, पौध लगाना, खाद, पौधों की देखरेख व उपज प्रति पेड़, बिन्दुओं पर वर्णन करो।

3. नीबू के वृक्ष में वर्ष में कितनी बार फल आते हैं? उपज की दृष्टि से किस बहार के फल लेना अच्छा है?

4. नीबू के कैंकर रोग, फल सूखने की बीमारी का कारण व रोकथाम लिखो।

केला

(Banana)

वानस्पतिक नाम Musa Paradisiaca कुल Musaceae

केला एक लोकप्रिय प्राचीन फल है जिसका वर्णन प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों मे मिलता है तथा शताब्दियों से इसका अनुष्ठानों मे प्रयोग होता रहा है।

इसमें सर्वाधिक ऊर्जा मिलती है। पका फल विटामिन ए, चीनी तथा खनिज तत्वों से भरपूर होता है। कच्चे फल की सब्जी बनती है, पके फल को चाव से खाया जाता है तथा गूदे को सुखाकर आटा भी बनाया जाता है। पत्तियाँ भोजन के लिए थाली का काम करती है। नेन्द्रन किस्म के केले से नमकीन चिप्स बनाते है।

इसका मूल स्थान भारत तथा मलाया द्वीप समूह मानते हैं। विश्व के उष्ण कटिबन्धीय प्रदेश मैक्सिको, पनामा, क्यूबा, जमैका ब्राजील, अफ्रीका, कीनिया, युगाण्डा आदि देशो में खेती की जाती है।

भारत का क्षेत्रफल उत्पादन में द्वितीय स्थान है। प्रति वर्ष दो लाख हेक्टर भूमि से 30 लाख टन उत्पादन प्राप्त होता है। देश मे महाराष्ट्र तामिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश, केरल, कर्नाटक, गुजरात बंगाल तथा बिहार प्रमुख उत्पादक राज्य हैं। राजस्थान में सीमित क्षेत्र में कोटा का बाँरा क्षेत्र, उदयपुर, झालावाड़, बांसवाड़ा जिले में उगाया जाता है।

पौधे का वानस्पतिक ज्ञान—केला एक चौड़ी पत्ती वाला 3.5-4.5 मीटर ऊँचाई का शाकीय पौधा है। इसका तना प्रकन्द (Rhizome) जमीन के अन्दर रहता है। इसका झूठा तना पत्तियों के नीचे के हिस्से से बनता है जिसके बीच से पुष्प क्रम (Spike) निकलता है जो नीचे की ओर मुड़ जाती है।

भूमिगत तने से दो प्रकार की जड़े निकलती हैं। पहले जड़ें भूमि मे 60 सेमी. की गहराई पर क्षैतिज स्तर पर फैलती हैं। दूसरी सीधी जमीन में जाती हैं।

पौधों की वृद्धि के साथ पुरानी पत्तियां सूखती जाती हैं। स्पाइक पर फूल चक्राकार क्रम में लगे होते हैं। पुष्पक्रम में पहले मादा फूल जो पहले खिलकर फल विकास करते हैं। नीचे नर पुष्प तथा बीच में क्लीव पुष्प (Neutral flowers) होते हैं। इसके मादा स्वयं बन्ध्य (Self seterile) होते हैं जिससे परागण की आवश्यकता नहीं होती है। इसी से फल बीज रहित होता है।

जलवायु—यह उष्ण जलवायु का फल है जो गर्म तथा आर्द्र जलवायु में अच्छा फलता है। इसे समुद्र तट से 200 मीटर की ऊँचाई तथा 100-200 सेमी. वर्षा वाले भागों में उगाया जाता है। ठण्डी हवा, पाला, गर्म व तेज हवा के झोकों से बचाना आवश्यक है।

भूमि—इसे 4.5-7.0 तक पी. एच. मान वाली भूमियों में उगाया जा सकता है परन्तु अच्छे जल निकास वाली गहरी भुरभुरी तथा उपजाऊ मिट्टी उपयुक्त है। चिकनी मिट्टी में जल निकास प्रबन्ध तथा पर्याप्त जीवांश खाद देकर उगाया जा सकता है।

गड्ढे तैयार करना—खेत की गर्मियों में जुताइयां करके समतल तथा भुरभुरा कर लेना चाहिए। गड्ढों की दूरी सकर का आकार, भूमि उर्वरता फल बेचने की पद्धति, केले के बाग की अवधि पर निर्भर करती है।

मई-जून में 2-3 मीटर की दूरी पर 60 × 60 × 60 सेमी आकार के गड्ढे खोद लेते हैं। एक माह बाद गड्ढों में 20–75 किलो गोबर की खाद, 5 किलो राख मिट्टी में मिलाकर सतह से 15 सेमी. ऊँचाई तक भर देते हैं।

किस्में—केले के पकने पर खाने की किस्में तथा सब्जी वाली प्लेन्टेन दो प्रकार की किस्में हैं—

(i) प्लेन्टल किस्में—हजारा कोठिया, रायकेला, मोस, कैम्पियर गज।

(ii) पकाकर खाने वाली किस्में - काबुली, चम्पा, मर्तबान, हजारा, हरी छाल (बम्बई हरा) अमृत सागर, नेन्द्रान (रजेली) आदि।

प्रवर्धन—केले का वानस्पतिक प्रवर्धक अधो भूस्तारी (Suckers) के द्वारा तैयार किया जाता है। ये दो प्रकार (i) तलवार सकर (Sword Suckers) तथा (ii) पानी वाली सकर (Water Sucker) होते है।

(i) तलवार सकर (Sword Sucker)—इसकी पत्तियां कम चौड़ी तथा तलवार की भांति होती हैं। नये पौधे तैयारी के लिए अच्छे होते हैं।

(ii) पानी वाली सकर (Water Sucker)—ये चौड़ी पत्ती वाले होते हैं पौधे कमजोर होते हैं।

पौधे तैयारी के लिए सकर्स स्वस्थ, परिपक्व, पौधों से 3-4 माह पुराने चुनने चाहिये । शीघ्र तैयार करने के लिए प्रकन्दों का पूरा या टुकड़े काटकर काम में लाया जा सकता है परन्तु इनमें एक कली होनी चाहिये ।

पौधे लगाना—वर्षा काल में सकर के प्रकन्दों को 22-30 सेमी. की गहराई पर लगा देना चाहिये । एक हेक्टर में लगभग 1000 पेड़ लगाये जाते हैं । पेड़ की फसल (Ratoon crops) से 10-20 प्रतिशत अधिक उपज मिलती है अतः फसल से एक पेड़ी अवश्य लेनी चाहिये ।

बाग की देखभाल :

खाद—अच्छे फलन के लिए प्रति पेड़ 30 किलो. कम्पोस्ट या जीवांश खाद, 0 50–1.00 किग्रा. अमोनिया सल्फेट. .0.50 किग्रा. सुपर फास्फेट तथा 0.2. किग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश देवें ।

जीवाश खाद तथा सुपर फास्फेट की पूरी मात्रा पौध लगाने से पूर्व तथा अन्य उर्वरकों के मिश्रण को दो बार अगस्त-सितम्बर एवं मार्च-अप्रेल में देना अच्छा रहता है ।

सिंचाई—केले की अच्छी वृद्धि के लिये भूमि मे पर्याप्त नमी रहनी चाहिये । गर्मी मे 7 दिन तथा सर्दी मे 15 दिन के अन्तर पर सिंचाई करनी चाहिये । वर्षा मे आवश्यकतानुसार सिंचाई करें । परन्तु बाग में पानी नहीं रुकना चाहिए ।

निराई-गुड़ाई—केले की जड़ें 15 सेमी. गहराई से भोज्य तत्व लेती है अतः खरपतवारो को खोदकर निकाल देना चाहिये, परन्तु निकालते समय पौधे की जड़ों को हानि न पहुंचे ।

देखरेख—पौधे की वृद्धि के साथ पुरानी पत्तियों को चाकू से काटकर अलग कर देना चाहिये तथा तने के पास विकसित सकर्स के अधिक निकलने पर उपज कम हो जाती है । दो सकर्स को छोड़कर शेष को खुर्पी से काटकर पीट देना चाहिये ।

फल आने पर तेज हवा से काफी हानि होने की आशंका रहती है, अतः इनको बास या डंडों से सहारा देना चाहिये । वायुरोधक उद्यान के चारो ओर लगा देना चाहिये ।

फलन –पौधे लगाने के 8-10 माह बाद गहर फूलने लगती हैं । इनके लटकते नर फूलो को काट देना चाहिये । फूलने के लगभग 4 माह बाद फल लगने य पकने लगते हैं । इनको गर्म, हवा, सर्दी, गर्मी तथा पक्षियों से बचाना चाहिये ।

कटाई—गहर के फूल 12–18 माह में पककर तैयार हो जाते हैं। इनके तीन चौथाई पकने पर गहर को डंठल के साथ तेज चाकू से काट लेना चाहिये। कटाई के 8–10 दिन बाद फल चुके पौधों को सतह से काटकर या खोद कर निकाल देना चाहिये जिससे बगल का एक अधोभूस्तारी बढ़कर पौधे में बदल जावे।

उपज—प्रति पेड़ 18 किग्रा. खाने वाला, 20–25 किग्रा. सब्जी वाला मिलता है। प्रति हेक्टर 200–350 क्विंटल तक केला प्राप्त हो जाता है।

केले को पकाना :

प्राय: केला हरी अवस्था में तोड़ा जाता है। गहर (Bunch) को बन्द कमरे में पकाया जाता है। डंठल के कटे भाग पर वेसलीन या मिट्टी लगा देने से केले पकाने पर सड़ते नहीं हैं। वायुरोधी कमरों में पत्ते बिछाकर व एक कोने में धुंआ करके ताप 15–20°C रखते हैं। इस प्रकार केला 5–6 दिन में पकाया जाता है। फलों को कभी-कभी कार्बाइड, जो एसिटलीन गैस पैदा करता है, की सहायता से पकाते हैं।

केलों को ट्रकों, रेलों के डिब्बों में केले की सूखी पत्ती बिछाकर तथा ढँककर भेजा जाता है।

कीट एवं रोग—फसल को कीट की अपेक्षा रोगों से अधिक हानि होती है। केले में तना बेधक, थ्रिप्स, भृंग तथा एफिड हानि पहुँचाते हैं।

तना बेधक अधिक हानि करता है। इसकी सूंडी कंदिका में छेदकर के ऊपर तने में भोजन पहुँचने में बाधा पहुँचाती है।

इससे बचाव के लिए जल निकास का उचित प्रबन्ध हो तथा मिट्टी में 0.05 प्रतिशत बी. एच. सी. या एल्ड्रिन का छिड़काव करें।

अंत: विगलन (Heart Rot)—यह कवक से फैलता है जिससे पौधे के अन्दर पत्तियां गल जाती हैं और नई पत्तियां नहीं निकलती हैं। पुष्पक्रम नहीं निकल पाता।

रोकथाम—(i) पौधों को अच्छे जल निकास वाली भूमि में उचित दूरी पर लगावें।

(ii) सूर्य प्रकाश काफी मात्रा में पौधों को मिले।

(iii) बोर्डों मिश्रण का छिड़काव करें।

फल विगलन (Fruit Rot)—यह फफूंदी द्वारा यातायात तथा संग्रहण द्वारा फैलती है जिससे फल सड़ जाते हैं। अपरिपक्व फलों को हानि होती है। बसराई व हरी छाल किस्मों पर प्रभाव अधिक होता है।

रोकथाम—(i) फलों के छिलके पर किसी भी प्रकार की चोट न लगे।
(ii) संग्रहण स्थान स्वच्छ, ठण्डा तथा प्रकाश मुक्त होना चाहिए।
(iii) पौधों पर बोर्डो मिश्रण का छिड़काव साल में 3-4 बार करना चाहिए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. फल में केले की महत्ता बताओ।
2. केले की खेती का वर्णन निम्न बिन्दुओं पर करो—
   (i) गड्ढे तैयार करना (ii) किस्में (iii) पौध लगाना
   (iv) सिंचाई (v) देखरेख (vi) फलन (vii) उपज
3. केले को फलन के बाद काटना क्यों आवश्यक है?
4. केले के प्रवर्धन व केले को पकाना, पर टिप्पणी लिखो।

अनार

(Pomegranate)

वानस्पतिक नाम—Punica granatum कुल—Punicaceae

अनार एक प्राचीन फल है परन्तु व्यावसायिक स्तर पर इसकी खेती नहीं की जाती है। यह अधिकतर बाहर के देशों से निर्यात किया जाता है।

अनार के दाने तथा रस औषधीय गुण रखता है। इसका सिर का तथा जैली तैयार होती है। फलों को काफी समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

इसका मूल स्थान एशिया का दक्षिण-पश्चिमी भाग है। अरब, टर्की, सीरिया, अफगानिस्तान के पर्शिया देशों में उगाया जाता है। भारत में महाराष्ट्र, गुजरात तथा उत्तर प्रदेश में कुछ भागों में उगाते हैं। राजस्थान में अनार जोधपुर, उदयपुर, पाली जिलों में किया जाता है।

जलवायु—अनार उपोष्ण जलवायु का फल है। इसके लिए जाड़ों में काफी सर्दी तथा गर्मी में गर्म तथा शुष्क मौसम होना चाहिये। ये पाला प्रतिरोधी होते हैं। परन्तु 12° फा. से कम ताप हानिकारक है। ये विभिन्न जलवायु में उगाये जा सकते हैं। शुष्क तथा ठण्डी जलवायु में फल मीठे होते हैं। 300–200 मीटर तक ऊँचे भागों में उगाये जा सकते हैं।

भूमि—यह विविध प्रकार की मिट्टियों से लेकर पर्वतीय भागों में उगाया जा सकता है। अच्छे जल निकास वाली चूनाबहुल मटियार भूमि अच्छी है।

गड्ढे तैयार करना—उद्यान की भूमि तैयार करके पौध लगाने से 2 माह पूर्व 3-6 मीटर की दूरी पर 1 × 1 × 1 मीटर आकार के गड्ढे खोद लेते हैं। गड्ढे में खाद मिलाकर सतह से ऊपर तक भर देते हैं।

किस्में—अनार की कई किस्में हैं जिनमें कुछ फूलों के लिए उगाई जाती हैं। निम्न किस्में मुख्य हैं—

(अ) सदाबहार—काबुल, काबुल यलो, ढोलका, गनेश, कंधारी।

(ब) परणपाती—ग्रसीम, खानदारी अम्ब्सी, काबुल सीडलेस, मस्केट रेक, सफेद, जोधपुरी, पेपर शेल।

प्रवर्धन—अनार में प्रसारण बीज, कलम लेयरिंग तथा ग्राफ्टिंग द्वारा किया जाता है परन्तु कलम द्वारा प्रसारण अच्छा रहता है। इसके लिए स्वस्थ टहनी को 22-30 सेमी. लम्बी कलम लेकर तैयार नर्सरी में 2/3 भाग मिट्टी में गाड़ देना चाहिए जिनके लगभग एक वर्ष बाद पौधे लगाने योग्य हो जाते हैं।

पौधे लगाना—पौधों को बसंत ऋतु (फरवरी-मार्च) तथा वर्षा में लगाया जाता है। पौधों को गड्ढे में एक बोर्ड की सहायता से लगा देना चाहिए।

खाद—निम्न समय में खाद देना अच्छा रहता है—

पौध लगाते समय—गड्ढों में 30-40 किलो गोबर की खाद, 2.5 किलो सुपर फॉस्फेट, 1 किलो राख, 5-7 किलो बुझा हुआ चूना तथा 8-10 किलो पिसे कंकड़ मिट्टी में मिलाकर गड्ढे को भर देना चाहिये।

पौध लगाने के बाद—नये पौधों में खाद मिश्रण मानसून के प्रारम्भ में देते हैं तथा फल लेने के लिए दिसम्बर में जड़ों को खोलने के बाद फूल आते समय देते हैं।

एक वर्ष पुराने पौधों को 10 किग्रा. गोबर की खाद, 5 किग्रा. खली या 100-125 ग्राम अमोनियम सल्फेट देना चाहिये। पौधों की उम्र बढ़ने के साथ इन मात्राओं को बढ़ाते रहते हैं। पाँच वर्ष के पौधे को 45 किग्रा. गोबर की खाद, 2.5-4 किग्रा. खली या 1-1.5 किग्रा. अमोनिया सल्फेट देना चाहिए।

सिंचाई—पौधों में अंगूठी विधि से गर्मी में 15 दिन तथा सर्दी में एक माह में सिंचाई करनी चाहिये। प्रत्येक सिंचाई के बाद निराई-गुड़ाई करनी चाहिये। फल पकते समय सिंचाई नहीं करनी चाहिये। अन्यथा इनके फटने का भय रहता है।

कृन्तन—शाखाओं का कृन्तन अत्यन्त आवश्यक है। अनार के फल छोटी-छोटी शाखाओं, जिन्हें 'स्पुर' कहते हैं लगते हैं। ये स्पुर परिपक्व तनों पर लगते हैं जिन पर चार वर्ष तक फल लगते हैं। इसके लिए पुरानी टहनियों को काटते रहना चाहिये। पौधों के तने पर निकली अधोभूस्तारी को काट देना चाहिए। जड़ों की कटाई-छँटाई पौधे की वृद्धि के अनुसार इनको खोलते समय करनी चाहिये।

फलन—अनार के 3 वर्ष के पौधों से फल मिलने लगते हैं। फूल वर्ष में तीन बार आते हैं। जनवरी-फरवरी, जून-जुलाई तथा सितम्बर-अक्टूबर। परन्तु जनवरी के फूल लेना अच्छा रहता है।

कभी-कभी पकते समय आधे से अधिक फल फट जाते हैं। इसका मुख्य कारण मिट्टी में नमी की कमी तथा अधिकता है क्योंकि कम नमी में फल का छिलका कड़ा हो जाता है परन्तु पानी या वर्षा होने से फल के अन्दर वृद्धि होने से छिलका

फट जाता है, अतः फलों को परिपक्व होने से पूर्व तोड़ लेना चाहिये। फलों
गिलहरी, तोते तथा अन्य चिड़ियों से बचाव करना आवश्यक है।

उपज—पौधों से 20-25 फल मिलते हैं। पूर्ण विकसित 10 वर्षीय पौधे 100-150 फल (20-30 किग्रा. भार के) फल प्राप्त होते हैं।

कीट :

तना छेदक तथा फल छेदक—पूर्व में लिखी विधि से बचाव करना चाहिये रोगों से बचाव के लिए पौधों पर एक प्रतिशत बोर्डो मिश्रण का 1-2 बार छिड़का करना चाहिये।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. अनार के लिए, गड्ढे तैयार करना, पौध तैयार करना, सिंचाई की विधि कटाई-छटाई और उपज बिन्दुओं पर वर्णन करो।
2. अनार का फटना व इसकी रोकथाम, उन्नत किस्में बताओ व पौधे तैया करने की विधियाँ, उपरोक्त पर टिप्पणी करो।

पपीता

(Papaya)

वानस्पतिक नाम— Carica papaya। कुल—Caricaceae

पपीता में पौष्टिक तत्वों की प्रचुर मात्रा होने से अत्यधिक लोकप्रिय स्वास्थ्य-वर्धक फल है जिसे सभी आयु के स्वस्थ व रोगी व्यक्ति प्रयोग करते हैं। इसके कच्चे व पके दोनों फल काम में आते हैं। फल से हलवा, चटनी, पकौड़ी, पेठा, मुरब्बा बनाया जाता है। कच्चे फल की सब्जी, रायता व अचार बनाया जाता है। पके फल तथा कच्चे फलों से प्राप्त पपेन पदार्थ पेट विकार में लाभप्रद है जो मांस उद्योग में भी काम आता है।

इसका मूल स्थान अमेरिका का मूल कटिबन्ध है। वहाँ के फ्लोरिडा तथा केलिफोर्निया स्थानों पर अधिकता से पैदा होता है। विश्व के उष्ण तथा उपोष्ण कटिबंधीय देशों, हवाई, श्रीलंका, बर्मा, मलेशिया, कीनिया, दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में पैदा होता है।

सोलहवीं सदी से भारत के विभिन्न भागों में खेती की जाती है। देश के लगभग 10,000 हैक्टर भूमि पर पपीता उगाया जाता है। बिहार, असम, गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, राजस्थान प्रमुख उत्पादक राज्य हैं। उद्यान के बीच खाली स्थान, खेत, मकानों के बड़े व छोटे स्थानों में भी इसको उगाया जा सकता है।

जलवायु—यह उष्ण प्रदेशीय फल है जिसे समुद्र तट से लेकर 350 मीटर तक ऊँचे स्थानों पर उगाया जाता है परन्तु अधिक वर्षा, ठंडक तथा पाला पौधों के लिये हानिकारक है। 100° फा से अधिक तथा 30° फा. से कम तापमान फल के लिए हानिकर है। तेज हवाओं तथा धूप से पौधों को हानि होती है। ऐसे क्षेत्रों में वायुरोधी वृक्ष लगाना चाहिये।

भूमि और गड्ढे तैयार करना—इसे विभिन्न प्रकार की भूमियों में उगाया जा सकता है परन्तु अच्छे जल निकास वाली उपजाऊ हल्की मिट्टी अच्छी है।

बाग बनाने के लिये गर्मी में मिट्टा पलटने वाले हल से जुताई करके खेत को छोड़ देते हैं फिर देशी हल चलाकर मिट्टी को भुरभुरा कर देते हैं तथा पाटा लगाकर समतल कर लेते हैं।

गड्ढे तैयार करना—तैयार खेत में पंक्ति से पंक्ति 2·5-3 मीटर तथा पौधों से पौधे की दूरी 2-2·5 मीटर रखकर बाग का रेखांकन कर लेते हैं 30 × 30 × 30 सेमी. आकार के गड्ढे खोदकर इसे 3 : 1 (3 भाग मिट्टी व एक भाग खाद) मिलाकर गड्ढे को भर देते हैं। दीमक तथा भूमिगत कीटों से बचाव के लिये आवश्यक कीटनाशक दवा 0·05 किग्रा. प्रति पेड़ देना अच्छा है।

किस्में—पपीते में नियन्त्रित परागण के अभाव तथा लैंगिक प्रवर्धन के कारण किस्में स्थाई नहीं हैं और एक ही किस्मों में बहुत भिन्नता होती है। निम्न कुछ जातियाँ अच्छी मानी जाती हैं—

सीओ-1, कुर्ग, हनीड्यु (मधु बिन्दु), राँची, वाशिंगटन, सीलोन, सिंगापुर, सोलो, कोयम्बटूर-1, 2।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा (बिहार) ने विगत वर्षों के 'रांची' किस्म पर किये प्रयोगों से चार शुद्ध किस्में पूसाडेलिस्स (पूसा 1-15), पूसा मैजेस्टी, (पूसा 22-3), पूसा जाइण्ट (पूसा 1-45 बी) तथा ड्वार्फ (पूसा 1-45 डी) विकसित की हैं।

पूसा डेलिसस किस्म उभयलिंगी होने से इसमें लिंग समस्या नहीं हैं। इससे प्रति पेड़ 50 फल (40 किग्रा. भार के) प्राप्त होते हैं। पूसा ड्वार्फ की 2-3 वर्ष की आयु में 1 से 1·5 मीटर ऊँचाई होने से फल तोड़ने की समस्या नहीं आती है।

पौध-प्रवर्धन :

बीज व बोआई—लगभग 500 ग्राम बीज की पौध एक हैक्टर के लिये पर्याप्त होती है। बीज को जून में नर्सरी में लगाने से पौधे जुलाई के अन्त तक लगाने योग्य हो जाते हैं।

पपीते के प्रवर्धन बीज से होता है। बीजों को छाया या धूप में सुखाकर किसी बोतल या जार में भरकर सील बन्द करके रख देते हैं।

बीजों को तैयार उठी क्यारियों में 2-3 सेमी. की दूरी पर 1 सेमी. की गहराई पर बोया जाता है। आजकल पोलीथीन की थैलियाँ, बड़े गमले या लकड़ी के बक्से भी काम में लाये जाते हैं। इनमें पत्ती का खाद, बालू तथा सड़ी गोबर की खाद बराबर मात्रा के मिश्रण कर प्रयोग करते हैं। बीजों के बोने के बाद मिट्टी की तह से ढँक देना चाहिये।

बोई क्यारियों या गमलों में प्रातः सायं हजारे से पानी देते रहते हैं। बोआई के 15-25 दिन के अन्दर बीज का अंकुरण होता है। छोटे पौधों में तीन

होने पर इन्हें क्यारियों से निकालकर अलग-अलग लगा देना चाहिये। जब पौधे 22 सेमी. ऊँचे या 2 माह की आयु के हो जावें तो इनको थोड़ा अधिक पानी और धूप दिखानी चाहिये जिससे ये अनुकूल व सहिष्णु हो जावें।

पौधों का प्रतिरोपण—तैयार गड्ढों में 2-3 पौध लगाना चाहिये। पौधों को सावधानी से निकालकर सायंकाल या बदली के दिन लगाना चाहिये।

फल आने पर नर पौधों को पहचान कर निकाल देना चाहिये। अच्छे परागण के लिये 5 प्रतिशत नर पौधे रहना आवश्यक है। कुर्ग हनी जाति में नर न होने से एक गड्ढे में अधिक पौधे लगाने की आवश्यकता नहीं होती है।

खाद—पौधे की अच्छी वृद्धि के लिये खाद की पूरी मात्रा देना अच्छा है। 20 किग्रा. गोबर या कम्पोस्ट की खाद, 1 किग्रा. अमोनिया सल्फेट, 0.50 किग्रा. सुपरफास्फेट तथा 0.50 किग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति पेड़ प्रति वर्ष देना अच्छा है। उर्वरक मिश्रण की आधी मात्रा को प्रारम्भ में पेड़ लगाने से पूर्व तथा शेष मिश्रण वर्षा के बाद देते हैं।

सिंचाई—पौधों को गड्ढों में लगाने के तुरन्त बाद सिंचाई करनी चाहिये। गर्मियों में 8-10 दिन तथा सर्दी में 10-15 दिन के अन्तर पर सिंचाई करनी चाहिये परन्तु पानी तने के पास नहीं रुकना चाहिये वरना तना गलन-सड़न होने की आशंका रहती है।

पौधे की देखभाल—प्रत्येक सिंचाई के बाद हल्की निराई-गुड़ाई करनी चाहिये। तने के पास मिट्टी ऊँची रखें तथा बाहर की ओर ढलवां।

पपीता लगाने के 5-6 माह तक अल्पकालीन सब्जियाँ जैसे—मिर्च, टमाटर, करेला आदि सफलता से बोई जा सकती हैं जिससे भूमि की भौतिक दशा में सुधार तथा आय में वृद्धि होती है।

पौधों को तेज धूप, वर्षा तथा पाले से रक्षा करना आवश्यक रहता है। पौधों को घास फूस से ढंक देते हैं। फलों को पक्षियों से हानि होती है जिससे इनको टाट या कागज से ढंक देना चाहिये।

फलन—पपीता वर्ष भर फूलता रहता है। जुलाई में प्रतिरोपित पौधे बसंत में फलने लगते हैं परन्तु तेज गर्मी व शुष्क वातावरण में फल-फूल आना बन्द हो जाता है फिर वर्षा में फलन प्रारम्भ हो जाता है। अच्छे विकसित, अपपके फलों को विकास के अनुसार धीरे-धीरे तोड़ते रहना चाहिये। फलों को तोड़ कर कृत्रिम रूप से पकाया जाता है।

फलों को सावधानी से तोड़ना चाहिए जिससे इनके छिलके पर कोई चोट

न आये। फलों को सावधानी से कागजों या पत्तों से लपेट कर टोकरियों में पैकिंग करके बिक्री के लिए भेजा जाता है।

उपज—प्रति पेड़ 30-150 फल उपज मिलती है जिनका भार 35-50 किग्रा. तक होता है।

कीट एवं रोग—पपीते के पौधों पर प्रत्यक्ष रूप से किसी कीड़े से हानि नहीं होती है परन्तु ये विषाणु के वाहक का काम करके रोग फैलाते हैं। निम्न रोग प्रमुख हैं—

फफूंदी जनित रोग :

1. जड़ तथा तना गलन रोग—इस रोग का प्रकोप वर्षा काल में अधिक होता है। भूमि के तल के पास का तने का छिलका पतला होकर गलने लगता है तथा जमीन के अन्दर जड़ें भी गल जाती हैं जिससे पत्तियाँ पीली होकर गिरने लगती हैं तथा पौधा गल कर गिर जाता है।

रोकथाम—(i) पौधे के आसपास पानी इकट्ठा नहीं हो, जल निकास का अच्छा प्रबन्ध करें।

(ii) रोगी पौधों को उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए।

(iii) तने के नीचे की 5 सेमी. मिट्टी हटा कर बोर्डो मिश्रण का दो बार छिड़काव करना चाहिये।

(2) डैम्पिंग ऑफ—पौध घर में छोटे-छोटे पौध गलकर नष्ट हो जाते हैं जिससे काफी हानि होती है।

रोकथाम—(i) पौध घर क्षेत्र की मिट्टी, खाद, बालू आदि को फार्मलीन से धूमित कर लेना चाहिए।

(ii) बीज को कवक नाशक रसायन एग्रोसन, जी. एन., सेरेसन आदि से उपचारित कर बोना चाहिये।

वायरस जनित रोग—मोजेक, पत्तियों का मुड़ना तथा डिसटारशन रिंग स्पॉट-ये वायरस से फैलते हैं।

मोजेक—इसमें पत्तियों का हरापन कम हो जाता है तथा डंठल छोटा रह जाता है। फल छोटे तथा कम लगते हैं।

पत्तियों का मुड़ना—इसमें पत्तियाँ पूरी मुड़ जाती हैं जिससे पौधों की वृद्धि रुक जाती है और फल नहीं लगते हैं।

रोकथाम—(i) कीटों के प्रकोप होने पर इनको नष्ट करने के लिए कीटनाशक रसायन छिड़कना चाहिये।

(ii) खीरा वर्गीय पौधे बाग में नहीं बोने चाहियें ।
(iii) पौधों का प्रतिरोपण वर्षा के बाद अक्टूबर में करना चाहिये ।
(iv) प्रतिरोधी किस्में बोनी चाहिये ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पपीते की खेती का निम्न बिन्दुओं पर वर्णन करो—
   (i) गड्डे तैयार करना । (ii) बीज की मात्रा (iii) पौधे तैयार करना
   (iv) पौधों की देखरेख (v) उपज ।
2. पपीते में लिंग समस्या तथा इसके समाधान के उपाय लिखो ।
3. निम्न पर टिप्पणी लिखो—
   (अ) पपेन
   (ब) पपीता का गलन रोग

बेर
(Ber)

वानस्पतिक नाम—Zizyphus jujuba (Z. Maurittana) कुल—Rhamnaceae

यह आम जनता का फल है जो देश के अधिकांश भागों में उगाया जाता है। सहिष्णुता होने तथा कम मेहनत से हर जगह उगाया जा सकता है। इसके पके फल स्वादिष्ट तथा काफी पौष्टिक होते हैं। इसे सुखाकर भी रखते हैं। इससे मुरब्बा, कैन्डी, तथा चटनी भी बनाते हैं। यह शीतल, दस्तावर, रक्तशोधक तथा प्यास को शांत करता है।

यह देश के बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा, गुजरात, आन्ध्रप्रदेश, पंजाब तथा तमिलनाडु राज्यों में अधिकता से पैदा किया जाता है जिसका क्षेत्रफल लगभग 5000 हेक्टर है। राज्य के हर स्थानों में इसकी खेती के लिए प्रोत्साहन दिया जा रहा है।

जलवायु—यह उष्ण तथा शुष्क जलवायु का फल है जिसे नमी तथा पानी की कम आवश्यकता होती है। अत्यधिक गर्मी तथा पाले का विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है परन्तु अत्यधिक वर्षा हानिकारक है।

भूमि—सामान्य वनस्पति उगने वाली भूमियों में उगाया जा सकता है परन्तु उर्वर दोमट मिट्टी अच्छी रहती है।

गड्ढे खोदना—उद्यान के लिए भूमि को एक गहरी तथा 2-3 देशी हल से जुताइयां करके पाटा लगाकर समतल व भुरभुरा कर लेते हैं। भूमि मई-जून माह में 12 मीटर की दूरी पर रेखांकन करके 75-1 घन मीटर आकार के गड्ढे खोदकर मिट्टी को बाहर निकाल देते हैं।

गड्ढों में मिट्टी के साथ 25 किग्रा. गोबर की खाद, 1 किग्रा. अमोनियम सल्फेट, 1 किग्रा. सुपर फास्फेट तथा दीमक से बचाव के लिये 30 ग्राम 5 प्रतिशत बी. एच. सी. धूल मिलाकर सतह से काफी ऊँचाई तक भर देना चाहिए।

किस्में—इस वर्ग की कई प्रजातियां उगाई जाती हैं। झरबेरी झाखिरी प्रजाति है जो जंगली रूप में स्वतः उगती है। स्थान एवं जलवायु के अनुसार इनकी अनेकों किस्में हैं।

मुरिया, पौंड़ा, बनारसी गोला व कड़का, सुम्रा, पेबन्दी, कैथली, दन्दान, उमरान, काठा आदि प्रमुख किस्में हैं। राज्य में सेव (अलवरी), तीखड़ी (जोधपुरी) प्रसिद्ध किस्में हैं।

प्रवर्धन—बेर का नया पौधा निम्न तरीकों से तैयार किया जाता है—

(i) बीज द्वारा—अधिकांश देशी बेर बीज द्वारा तैयार किये जाते हैं। एक स्थान पर स्थाई रूप से बीज बो देते हैं। बीज के ऊपर कठोर पर्त होने से इसको तोड़ देना चाहिए तथा 12% नमक के घोल में डुबोकर तैरते बीजों को फेंक देते हैं। इन बीजों को मार्च-अप्रैल में 30 सेमी. दूरी पर बो दिया जाता है। एक स्थान पर 2-3 बीज बोना चाहिए।

(ii) वानस्पतिक प्रवर्धन द्वारा—बेर में शील्ड तथा रिंग बडिंग अपनाई जाती है। वृद्धि नियंत्रक हार्मोन के प्रयोग से गूटी भी बांधी जा सकती है। छिप फाल्टिंग द्वारा भी नया पौधा तैयार करते हैं।

प्रसारण के लिये पौध घर में बीज से उगे 1-1½ वर्षीय मूलवृन्त पर अपेक्षित उन्नत किस्म से शाख चयन करके चश्मा चढ़ा दिया जाता है। कली के विकसित होने पर पौधे की जगह बदल कर सावधानी से दूसरे स्थान पर लगा देते हैं।

देशी बेर को चोटी कलम द्वारा अच्छी जाति के पौधे में बदल सकते हैं।

वृक्षारोपण—पौध घर में पौधे के 1-1½ वर्ष के होने पर सावधानी से निकालकर तैयार गड्ढों में वर्षा ऋतु में पौधों को बीचों-बीच लगा देते हैं। मिट्टी तने के पास ऊंची करके किनारे को ढालू रखते हैं।

खाद—प्रायः ऐसा देखा गया है कि बेर के पौधों को खाद नहीं दी जाती है परन्तु लगातार अच्छी वृद्धि तथा फल लेने के लिए प्रति वर्ष खाद देनी चाहिए। खाद निम्न प्रकार वर्ष में दो बार जुलाई-अगस्त तथा नवम्बर-दिसम्बर में देनी चाहिए—

पौधे की आयु (वर्ष)	खाद की मात्रा (किग्रा. में)		
	गोबर की खाद	अमो० सल्फेट	सु० फास्फेट
1	20	1.00	1.00
2	25	1.25	20

सिंचाई—पौधे के सूखा सहिष्णु होने से पानी की अधिक आवश्यकता नहीं होती है फिर भी प्रारम्भिक अवस्था में आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए। बड़े पौधों को पानी नहीं दिया जाता है क्योंकि गर्मियों से पूर्व फल तोड़ लिए जाते हैं। सर्दी में सुप्तावस्था में रहता है। फल आने के समय 2-3 सिंचाई करनी चाहिए।

निराई-गुड़ाई—वर्षा प्रारम्भ होने के समय पूरे उद्यान की गहरी जुताई या खुदाई करनी चाहिए। समय-समय पर वृक्ष के चारों ओर खुरपी से निराई-गुड़ाई कर देनी चाहिए।

काट-छांट—प्रारम्भ में पौधे का उचित ढांचा प्रदान करने के लिए काट-छाट करनी चाहिए। भूमि से 73 सेमी. की ऊँचाई तक की शाखायें काट कर मुख्य तने पर 4-5 शाखायें चुनते है। मई मे काट-छांट करते हैं। वर्षा में निकले नये प्ररोहों पर फूल-फल लगते हैं। पिछले वर्ष की शाखाओं का 30% भाग बहुत पतली तथा रोगी टहनियों को काट देना चाहिये।

फलन—चश्मा किये पौधों से 4-5 वर्ष की आयु मे फल आने प्रारम्भ हो जाते हैं। फूल सितम्बर-अक्टूबर में आते हैं तथा फल फरवरी से पकने प्रारम्भ होते हैं। मार्च तक सभी फल तोड़ लिये जाते हैं।

फल के छिलके के हल्के पीले पड़ने पर सावधानी से 'फ्रूट पिकर' से फल तोड़ना चाहिये, हिलाने से भूमि पर गिरे फलों को अधिक समय तक संग्रह नही कर सकते हैं।

विपणन—फलो की तुड़ाई के बाद इनको टोकरियों व बोरों मे भर कर बिक्री के लिये बाजार में भेज दिया जाता है।

उपज—विभिन्न किस्मों के अनुसार प्रति वर्ष प्रति पेड़ पूरी फलन आने पर 50-100 किग्रा. फल प्राप्त किये जा सकते है।

कीट एवं रोग :

बेर की मक्खी—इसके मेगट फलों में छेद करके गूदा खाते हैं और फल खराब हो जाता है। फल के मौसम के बाद ये मिट्टी में घुसकर अगले मौसम में बाहर निकल पुनः हानि पहुँचाते हैं।

रोकथाम—(i) प्रभावित फलों को इकट्ठा करके नष्ट कर देना चाहिए।
(ii) प्यूपा को नष्ट करने के लिए पेड़ के नीचे खुदाई करके मार्च-अप्रैल में खाद देनी चाहिये।
(iii) जनवरी-फरवरी के मध्य पौधों पर 250 मिली. मैलाथियान या एक किलो सेविन 200 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़कना चाहिये।

घास खाने वाली सूंडी—यह सूंडी एक द्रव-सा छोड़कर झिल्ली बनाकर उसके नीचे तने तथा शाखाओं की घास खाती है और फलों को भी खा जाती है।

रोकथाम—(i) तने पर बनी झिल्ली समय-समय पर उतार देनी चाहिए।

(ii) 200 मिली. रोगर या 8 मिली. डाइमेक्रान का 20 लीटर का घोल का छिड़काव करें।

चूर्णी फफूंदी (Powdery Mildew)—यह कवक द्वारा फैलता है। जिसका प्रकोप सर्दी में होता है। पत्तियों पर सफेद चूर्ण-सा हो जाता है जो फलों तक फैल जाता है जिससे उपज में कमी आ जाती है।

रोकथाम—घुलनशील गंधक (600 ग्राम 200 लीटर पानी) या केप्टान (400 ग्राम 200 लीटर पानी) का छिड़काव फूल आने से पूर्व और बाद मे 15 दिन के अन्तर पर कई बार करना चाहिये।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. बेर की खेती का वर्णन निम्न बिन्दुओं पर करो—
   (i) गड्ढे तैयार करना (ii) प्रतिरोपण
   (iii) खाद (iv) पौध लगाने का समय
   (v) पौध की देखरेख (vi) फलन (vii) उपज प्रति पेड़
2. बेरों की विभिन्न किस्में व प्रवर्धन की विधि लिखो।

———

खजूर
(Datepalm)

वानस्पतिक नाम—Phoenix dactylifera कुल—Palmoceae

खजूर एक प्राचीन एवं स्वास्थ्यवर्धक फल है जिसके रस से ताड़ी और गुड़ तैयार किया जाता है जो 5-6 वर्ष के वृक्ष से प्राप्त करते हैं। सूखी खजूर स्वादिष्ट तथा गुणों से भरपूर होती है। इसमें 70% कार्बोहाइड्रेट, 2.5% प्रोटीन, 0.4% वसा के अलावा खनिज तत्व काफी मात्रा में मिलते हैं।

यह रेगिस्तानी वृक्ष है जो मुख्य रूप से ईराक, अरब, मिस्र, अल्जीरिया, मोरक्को, लीबिया, ट्यूनीशिया देशों में अधिकता से उगाया जाता है। अरब लोगों के द्वारा भारत से लाया गया जिसको 1867 से उगाने पर ध्यान दिया गया। पंजाब, राजस्थान तथा गुजरात के कच्छ क्षेत्रों में प्रचुरता से उगाने के प्रयास किए जा रहे हैं।

जलवायु—यह गर्म-शुष्क जलवायु का फल है परन्तु जड़ों के लिए नमी आवश्यक है। पेड़ काफी सहिष्णु परन्तु पाले से प्रभावित होते हैं। परागण तथा फल तैयारी के समय अधिक गर्मी उपयुक्त है परन्तु वर्षा से फल खराब हो जाते है।

भूमि—इसके लिए अधिक गहरी बलुई या बलुई दोमट भूमि उपयुक्त है। क्षारीय भूमि में भी इसे उगाते हैं।

गड्ढे तैयार करना—पौधों के लिए 6 मीटर की दूरी पर 1 घनमीटर आकार के गड्ढे खोदते हैं। दीमक आदि कीटों से बचाव के लिए गड्ढों में गेमक्सीन प्रयोग करें। इसकी जड़ें 3 मीटर की गहराई से जल खींच लेती है जिससे रेगिस्तानी क्षेत्रों में गहरे गड्ढों में लगाते हैं।

किस्में खजूर उत्पादक देशों में इसकी सैकड़ों किस्मे उगाते हैं परन्तु इनमें इराकी खजूर, उत्तर अफ्रीका की डगलेट नूर किस्मे जग प्रसिद्ध है। पंजाब के अबोहर फल अनुसंधान केन्द्र, उ० प्र० के सहारनपुर फल अनुसंधान केन्द्रों पर खजूर तथा छुहारे की किस्मो पर कार्य हो रहा है।

खजूर की मेद जूल, जहीदी, खुदरवी, हिलावी, धमरोन, सईदी, हयानी, किस्में लोकप्रिय हैं। थूरी, डेग्लेटनूर, खुदरवी, मेदजूल छुहारे के लिए तथा जहीदी पिण्ड-खजूर के लिए अच्छी हैं।

पौध प्रवर्धन—खजूर के धर्लिंगिक प्रवर्धन 'सकर्स' के द्वारा होता है। सकर्स पेड़ के निचले भागों से निकलते हैं जिसके लिए वृक्षों में उचित खाद, सिंचाई करके इनकी वृद्धि कराते हैं। मार्च-अप्रैल में सकर्स निकलते समय इनकी निचली पुरानी पत्तियों को काट देते हैं और पौध घर में लगा कर आवश्यक देख-रेख करते रहते हैं।

पौधों को तैयार गड्ढों में वर्षा ऋतु में लगा देते हैं।

खाद—गड्ढों को भरते समय अच्छी सड़ी गली जीवांश खाद 100 किग्रा. दें। मई-नवम्बर में जीवांश खाद, 1.5 किग्रा. सुपर फास्फेट एकल, 1.0 किग्रा पोटेशियम सल्फेट तथा 1.5 किग्रा. यूरिया फरवरी तथा मई में अच्छे फलन के लिए दें।

सिंचाई उद्यान में नाली या थाला विधि से सिंचाई करें। ग्रीष्म ऋतु में 15 दिन के अन्तर पर सिंचाई करें। परागण तथा फल पकने के समय सिंचाई करने से फलों के खराब होने की आशंका रहती है।

निराई-गुड़ाई—समय-समय पर निराई-गुड़ाई करके खरपतवारों को निकालते रहें।

काट-छांट—पेड़ों के नीचे की सूखी पत्तियों को काटते-छांटते रहें। इन पत्तियों का उपयोग पंखे, चटाइयां तथा झाड़ू बनाने में करते हैं।

फलन—सकर्स द्वारा तैयार पौधे प्रतिरोपण के 8-10 वर्ष बाद तथा बीजू पौधे और देर से पुष्पित होते हैं। उत्तर भारत में फूल मार्च-अप्रैल में आते हैं जिसके फल जून-अगस्त में पकते हैं। जून के बाद पकने वाली किस्मों के वर्षा में खराब होने की आशंका रहती है जिससे फलों को थैली से ढक देते हैं।

फलों के परिपक्व से पूर्व गुच्छे को उतार कर तोड़ लेते हैं जिनको चटाईयों पर फैलाकर सुखाते हैं। फलों को इतना सुखाएँ कि वे सड़ें नहीं। इनको साधारण परिस्थितियों में टोकरियों में भरकर रखा जा सकता है।

उपज—प्रति पेड़ 40-100 किग्रा. उपज मिलती है। प्रति हेक्टर 200-300 क्विण्टल फल प्राप्त होते हैं।

कीट एवं रोग से रक्षा :

रेड वीविल—तना छेदक अधिक हानि पहुँचाते हैं। अंडे पत्ती के निचले भागों में देती है जिसके डिम्ब तने के अन्दर सुरंग बनाकर उसके गूदे को खाते हैं और तना सूखकर गिर जाता है। छेदों से गाढ़ा रस निकलता है।

रोकथाम—1. प्रारम्भिक दशा में डिम्ब को तार द्वारा छेद में से निकालकर नष्ट करें।

2. कटे स्थान पर तारकोल का लेप करें।

3. अधिक प्रभावित पेड़ों को समूल नष्ट करें।

4. बोर्डो मिश्रण का आवश्यकतानुसार छिड़काव करें।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. खजूर की खाद्य महत्ता लिखें ?

2. खजूर की खेती का निम्न बिन्दुओं पर वर्णन करो—

(i) गड्ढे तैयार करना (ii) किस्में (iii) पौध प्रवर्धन
(iv) सिंचाई (v) फलन (vi) उपज

3. निम्न पर टिप्पणी लिखिए—

(अ) छुहारे के लिए खजूर
(ब) खजूर को पकाना

अंगूर
(Grape)

वानस्पतिक नाम—Vitis vinifera   कुल—Vitaceae

अंगूर एक पौष्टिक तथा स्वादिष्ट फल है। इसे अधिकतर ताजा ही खाया जाता है। शर्करा 20 प्रतिशत, अधिक होने से शीघ्र पचनशील तथा शक्तिवर्द्धक है। इससे कई परिरक्षित पदार्थ, किशमिश, अंगूर रस, शराब, सिरका,बड़े पैमाने पर तैयार किये जाते हैं।

इसका मूल स्थान काकेशस और पाकिस्तान का भाग माना जाता है। भारत में बारहवीं शताब्दी में ईरान और अफगानिस्तान से लाया गया था। विश्व मे फ्रांस, इटली, स्पेन, यू. एस. ए., ईरान, टर्की, ग्रीस, अफगानिस्तान, सीरिया, रूस तथा आस्ट्रेलिया देशों में अधिकता से उगाया जाता है।

भारत मे इसकी खेती कर्नाटक, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश आदि प्रान्तों मे की जाती है। इसे 10,000 हेक्टर भूमि मे उगाया जाता है। अन्य राज्यो के अधिक वर्षा वाले आर्द्र क्षेत्रो को छोड़कर अधिकता से उगाने का प्रयास किया जा रहा है।

राजस्थान के जयपुर, जोधपुर, कोटा, गंगानगर, उदयपुर जिलो में राज्य सरकार द्वारा विशेष कार्यक्रम चलाया जा रहा है। पाली, अजमेर, भरतपुर, अलवर, झुंझुनू और सवाई माधोपुर जिलो मे भी प्रयास किये जा रहे हैं।

जलवायु—यह शीतोष्ण जलवायु का फल है। इसे समुद्र तट से लेकर 1900 मीटर ऊँचे वाले भागो मे सफलता से उगाया जाता है। अच्छे उत्पादन के लिये शुष्क तथा वर्षा रहित गर्मी का मौसम तथा 114° फा. तापमान अच्छा है। उत्तरी भारत मे जाड़ों मे अंगूर की लतायें सुप्तावस्था में रहती हैं परन्तु दक्षिणी व पश्चिमी भारत मे अधिक जाड़ा न होने से दो फसलें ली जाती हैं।

भूमि—अंगूर की अकड़ा जड़ें होने से शीघ्र ही पानी मे प्रभावित होती है। अतः अच्छे जल निकास वाली, जीवांश युक्त, बलुई तथा बलुई दोमट भूमि

अच्छी है । निम्न जल स्तर वाली लवण युक्त अम्लीय तथा क्षारीय चिकनी मिट्टी अनुपयुक्त है ।

गड्ढे तैयार करना—खेत को गहरी जुताई के बाद पर्याप्त जुताइयाँ करके तैयार कर लेते हैं । पाटा लगाकर समतल तथा भुरभुरा कर लेते हैं ।

पौधे लगाने के एक माह पूर्व पौधो को ट्रेनिंग की विशेष विधि के अनुसार 3 मीटर की दूरी पर 60×60×60 सेमी. आकार के गड्ढे खोदकर मिट्टी को बाहर निकाल देते हैं । गड्ढो में 25 किलोग्राम गोबर की खाद, 2 किलो सुपर फास्फेट, 5 किलो खली तथा 50 ग्राम 10 प्रतिशत बी. एच. सी. 5% एल्ड्रिन या क्लोरेडेन मिलाकर सतह से 15 सेमी. ऊँचाई तक भरकर सिंचाई कर देते हैं जिससे मिट्टी बैठ जावे ।

किस्में—अविभाजित भारत में 116 किस्में बोई जाती थी । अब आठ किस्मों को बड़े पैमाने पर उगाया जाता है ।

अंगूर की किस्मों को दो भागों में बांटा जाता है—

1. बेदाना (बीज रहित) किस्में—परलेट, ब्यूटी सीड लेस, हिमराड, पूसा सीड लेस, डिलाइट ।

2. बीजयुक्त (दानेदार) किस्में—गुलाबी, मोतिया, थ्यूसन व्हाइट, अरका हंस, अरका श्याम, अरका कंचन ।

इसके अलावा अनावे शाही, मोकरी, ब्लैक प्रिंस, बेंग्लोर, पर्पिल आदि भी उगाई जाती हैं । राजस्थान के लिये पारलेट की 'लूज पारलेट, ब्यूटी सीड लेस, थाम्सन, पूसा सीडलेस, अनावे शाही तथा सलेक्शन–7 अधिक उपयुक्त पाई गई है ।

प्रवर्धन—अंगूर का प्रवर्धन कटिंग (कलम) द्वारा किया जाता है । जहाँ कीड़े तथा रोगों का आक्रमण होता है वहां कलिकायन (चिप बडिंग) द्वारा भी पौधे तैयार किये जाते हैं । प्रसारण लेयरिंग द्वारा भी किया जाता है परन्तु यह अधिक सफल नही है ।

एक वर्ष पुरानी व परिपक्व 8 मिमी. मोटी शाखा से 25-30 सेमी. लम्बी 4-5 आँखें युक्त कलम तैयार कर लेते हैं जिसका ऊपरी सिरा तिरछा तथा निचला गोल रखते हैं । कटिंग को जनवरी-फरवरी में लगाया जाता है ।

कलमों से पौधे तैयार करने की विधियाँ हैं—

(i) सीधे स्थाई गड्ढों में– खेत में तैयार गड्ढो मे 2-2 कलमे लगा दी जाती हैं ।

(ii) पौध घर में– पौध घर के लिये 100 वर्ग मीटर स्थान चुनकर उसकी अच्छी तैयारी कर लेनी चाहिये । आवश्यकतानुसार क्यारियां बनाकर 500 ग्राम

5% बी. एच. सी. प्रयोग करनी चाहिये जिससे दीमक आदि का प्रकोप न हो। तैयार कलमों को 15 सेमी. की दूरी पर तिरछा रोप कर इनके पास की मिट्टी को दबा देनी चाहिये। कलमें लगाने के तुरन्त बाद तथा आवश्यकतानुसार सिंचाई तथा अन्य देख-रेख करते रहना चाहिये।

एक वर्ष के पौधे लगाने योग्य हो जाते हैं।

पौधे लगाना—पौधे शीतकाल में सुप्तावस्था में रहते हैं। इनको दिसम्बर से मध्य फरवरी तक लगाना अच्छा रहता है। वर्षा में भी लगाया जा सकता है। पौधों को सावधानी से निकालकर सायंकाल गड्ढों में बीचों बीच लगाकर तुरन्त हल्की सिंचाई कर देनी चाहिये।

खाद—स्थानीय मिट्टी की जाँच और जलवायु के अनुसार खाद की मात्रा तय करनी चाहिये। यदि पौधे की वृद्धि तथा फलन में अच्छे चल रहे हैं तो खाद की आवश्यकता नहीं है फिर भी आयु के अनुसार पौधों की जड़ों तथा शाखाओं को छँटाई के बाद जनवरी-फरवरी में काट देना चाहिये।

पौध की आयु (वर्षों में)	खाद की मात्रा प्रति पौध (किग्रा. में)			
	गोबर की खाद	अमोनियम सल्फेट	सुपर फास्फेट	म्यूरेट पोटाश
लगाते समय	20 25	—	2.0	—
प्रथम वर्ष	40	0.5	0.5	0.5
द्वितीय वर्ष	40	1.0	1.0	1.0
तृतीय वर्ष	40	2.0	1.5	2.0
चतुर्थ वर्ष	40	2.5	2 0	2 5
पंचम वर्ष	40	3.0	2.5	3.0

वर्षा ऋतु में बेलों में मछली तथा खून की खाद देना विशेष लाभप्रद रहता है। फलों को अधिक मीठा बनाने के लिए उर्वरक मिश्रण के साथ मैग्नीशियम सल्फेट तथा आयरन सल्फेट मिलाकर प्रति पौधा 200 ग्राम फरवरी माह में देना चाहिये।

अंगूर में जीवांश खाद अधिक मात्रा में देने से वानस्पतिक वृद्धि अधिक होती है परन्तु फल कम लगते हैं। पौधों में जस्ते, बोरान की कमी होने से फल कम तथा छोटे रह जाते हैं। अतः 0.1% जिंक सल्फेट, सुहागा का घोल अप्रैल में फल आने के समय छिड़कना चाहिए।

फलों का आकार व स्वाद उत्तम बनाने के लिए 'जिब्रेलिक एसिड' हार्मोन का (100 भाग 10 लाख पानी) एक छिड़काव मार्च-अप्रैल तथा दूसरा इसके एक

सप्ताह बाद करना चाहिए। छिड़काव के स्थान पर घोल को बोकर या शीशी में भरकर गुच्छों को डुबोना सुविधाजनक रहता है।

सिंचाई—हमारे देश में अंगूर की अधिक सिंचाई की जाती है जिसकी आवश्यकता नहीं है जबकि विश्व के कुछ भागों में बिना सिंचाई के अंगूर पैदा किये जाते हैं फिर भी बसन्त ऋतु में माह में एक बार, गर्मियों में मार्च-जून तक 6-8 सिंचाइयाँ करनी चाहिए। अंगूर के परिपक्व होने पर हल्की सिंचाई करने से अच्छे अंगूर मिलते हैं। वर्षा तथा जाड़े में सिंचाई नहीं करनी चाहिए। अंगूर में फल पकने तथा वर्षाकाल में सिंचाई नहीं करते हैं।

अंगूर में सिंचाई की अंगूठी विधि काम में लाते हैं।

निराई-गुड़ाई—प्रत्येक सिंचाई के बाद हल्की निराई-गुड़ाई करने से बेलों की अच्छी वृद्धि होती है।

बाग की देखभाल :

संधाई (ट्रेनिंग)—पौधे लगाने के बाद फलने के समय इसका निश्चित आकार होना चाहिए। जिसके लिए उचित काट-छांट द्वारा पौधों को ट्रेन करके सही आकार देते हैं। निम्न विधियाँ संधाई (Training) के काम आती हैं—

(i) हेड विधि इसमें पौधे को एक छोटी झाड़ी के रूप में रखते हैं जिसका मुख्य तना 90-120 सेमी. ऊँचा होता है। कलमों की रोपाई के $1\frac{1}{2}$-2 माह में पौधे 20-30 सेमी. ऊँचे हो जाने पर पार्श्व की शाखायें निकाल देते हैं जिससे पौधा लम्बाई में बढ़े। बेल के साथ 3 मीटर लम्बा बांस 15-20 सेमी दूरी पर गाड़ कर बेल को चढ़ाते हैं। सिरे की अन्तिम 3-4 कलियों को शाखाओं में 15-45 सेमी. तक बढ़ने देते हैं, जिनकी संख्या छंटाई के समय 3-10 तक कर दी जाती है। यह सस्ती एवं सरल विधि है।

(ii) मण्डप या परगोला विधि—यह विधि अधिक ओज वाली अनाबे शाही, सलेक्शन-7, किस्मों में काम में लाई जाती है। इसमें पत्थर, सीमेंट, लकड़ी या लोहे के खम्भे 3–4 मीटर की दूरी पर पंक्ति में लगाते हैं जिन पर $2\frac{1}{2}$ मीटर की ऊँचाई पर तार, बल्ली या एंगिल रखकर मंडप बना देते हैं।

इसमें पौधे कुछ दूरी पर लगाये जाते हैं। प्रारम्भ में ट्रेनिंग एक समान होती है। इस प्रमुख तने को ऊँचाई पर ले जाकर गांठों से निकले प्ररोहों को पण्डाल की चारों दिशाओं में ट्रेन किया जाता है।

इसमें उपज अधिक मिलती है। गुच्छे नीचे लटकते रहते हैं जिससे सूर्य की तेज रोशनी का प्रभाव नहीं होता है तथा चिड़ियाँ भी हानि नहीं पहुँचाती हैं।

(iii) टेलिफोन या कारडन विधि (Cordon System)—यह पण्डाल विधि का परिमार्जित रूप है। इसमें 3 मीटर लम्बे खम्बे 8-10 मीटर की दूरी पर

गाड़ दिए जाते हैं। किनारे पर 6×6×00.6 मीटर के एंगिल के फ्रेम काम में लेते हैं। खम्भों के सिरे पर 1.15 मीटर लम्बी एंगिल्स की भुजा के समानान्तर लगा देते हैं जिससे ये टेलीफोन के खम्भे (T) की भाँति दिखाई देते हैं जिसमें तार बांध दिये जाते हैं।

बेलों की 2½ मीटर की ऊँचाई होने पर ऊपर की कली तोड़ देते हैं जिससे सिर के नीचे वाली कलियाँ शाखाओं में विकसित हो सके। इनमें से दो स्वस्थ शाखाओं को तार के साथ बांस बाँध कर सहारा देकर बढ़ने देते हैं। इनके एक मीटर लम्बी होने पर काट-छांट करके 10-12 तृतीय शाखायें रहने देते हैं।

(iv) ट्रेलिस विधि— इसे निफिन या केन विधि भी कहते हैं जो कम प्रोज वाली किस्मों में काम लाई जाती हैं। इसमें 3 मीटर के एंगिल आइरन के खम्भे 3 मीटर की दूरी पर गाड़कर उन पर 2 या 3 तार (75, 90 और 150 या 60, 105 और 150 सेमी.) लगा दिये जाते हैं।

अंगूर की बेलों को ऊपर वाले तार की ऊँचाई तक बढ़ने देते हैं। यहाँ पर दो कलियों को शाखाओं में तार पर खम्भे के दोनों ओर बढ़ने देते हैं। बाद में नीचे के तार पर दो कलियों को शाखाओं के रूप में बढ़ने देते हैं। तने पर शाखाओं की दूरी 15-20 सेमी. रहने पर अधिक उपज मिलती है।

कटाई-छंटाई उत्तर भारत में अंगूर जाड़े में प्रसुप्ति अवस्था (Dormancy) में रहता है जिससे पत्तियां गिर जाती हैं तथा वृद्धि नहीं होती है और फसल एक बार ही आती है। काट-छांट जनवरी-फरवरी में की जाती है।

पेंसिल की मोटाई के प्ररोहों को 3-5 गांठ छोड़ कर का दिया जाता है, सूखी, रोग-ग्रस्त, कमज़ोर शाखों जो परिपक्व नहीं हैं काटने से पूर्व शाखाओं की पत्तियाँ हटा देनी चाहिए जिससे धूप से कलिकायें फूल जायें। प्रत्येक शाखा पर 5-9 कलिकायें किस्म के अनुसार रखी जाती हैं। कभी-कभी द्वितीय शाखा को मोड़कर बाँध देते हैं जिससे इनकी दूरी सीमित रहे।

अंगूर की छँटाई में 'स्पर' व 'केन' विधियां काम में आती हैं। गत वर्ष की वृद्धि (केन) जो फल चुकी है तथा पकी लकड़ी (स्पर) होती हैं। स्पर में 3-4 कलियाँ तथा केन में 8-10 कलियाँ छोड़कर शेष को छांट देते हैं। स्पर प्रूनिंग गुलाबी, मोतियाँ आदि तथा केन प्रूनिंग परलेट, पूसा सीड लेस, हिमराड आदि किस्मों में अपनाई जाती है।

फलन —पौधों को उचित देखरेख करने पर इनसे दूसरे वर्ष फल लगने लगते हैं। पौधों पर मार्च-अप्रेल में फूल खिलना प्रारम्भ होता है और फल लगने लगते हैं जो किस्म, वातावरण में तापमान और आर्द्रता के अनुसार मई-जून तक पकने लगते हैं। अंगूरों को चिड़ियों व गिलहरियों आदि से अप्रेल-जून तक बचाव करना चाहिये।

अंगूर के फलों को पौधे पर पूर्ण पकने पर गुच्छों को कैंची या डंठल सहित काटकर सावधानी पूर्वक टोकरी में रखना चाहिये। सड़े-गले, खाये तथा सूखे दानों को गुच्छे से सावधानी से अलग करना चाहिये। इनको बांस की टोकरी, लकड़ी या कार्ड बोर्ड के बक्सों में पुआल बिछाकर कागज को फैलाकर गुच्छे रखे जाते हैं।

अंगूर को संग्रहण करने के लिए डंठल को हटा कर रखा जाये। इनको तोड़ने के बाद 36-40° फा. तापमान पर 6-24 घण्टे रखकर शीत संग्रहण में 30-31° फा. ताप तथा 87-92 प्रतिशत आर्द्रता पर 6-8 सप्ताह तक रखा जा सकता है।

उपज अंगूर से अधिक उपज लेने के प्रयासों से लतायें कमजोर हो जाती हैं तथा बाद में उत्पादन काफी कम हो जाता है। अतः मध्यम उपज लेना ठीक रहता है। प्रति बेल 8-10 किग्रा अंगूर मिलते हैं। बेलों को बढ़ने के साथ उपज बढ़ने लगती है। 6 वर्ष की बेल की उपज स्थिर हो जाती है। 100-150 क्विण्टल प्रति हैक्टर उपज मिल जाती है।

कीट और रोग :

कीट :

चैफर बीटिल—वर्षारम्भ से पूरी वर्षा में हानि पहुँचाता है। कीट दिन में झाड़ी आदि में छिपे रहते हैं। रात में पत्तियों के फलक को खाकर छेद कर देते हैं जिससे पौधे कमजोर हो जाते हैं।

रोकथाम—कीट के आक्रमण होते ही 10 प्रतिशत बी. एच. सी. का बुरकाव या एक प्रतिशत वेटेबल डी. डी. टी. का नियमित छिड़काव करना चाहिए।

स्केल्स - इस कीट की अनेक जातियां हानि पहुँचाती हैं जो सफेद अण्डाकार-सा 5 मिली मीटर लम्बा होता है जो शाखाओं के मोड़ के भाग से रस चूसता है जिससे वे शाखायें सूख जाती हैं और अधिक प्रकोप होने पर पूरा पौधा ही सूख जाता है।

रोकथाम—(i) शीत सुप्तावस्था में तने तथा शाखाओं के ढीले छिलके हटाकर आॅयल इमल्शन (चार गैलन तेल, 100 गैलन पानी) का छिड़काव करना चाहिए।

(ii) 0.5 प्रतिशत फोलिडोल का छिड़काव एक वर्षीय पुरानी शाखाओं पर करना चाहिए।

चूर्णी फफूंदी—उत्तरी भारत में यह रोग नहीं लगता है परन्तु हिमालय की तलहटी तथा दक्षिणी भारत में कवक द्वारा फैलता है जिससे पौधों की पत्तियां प्ररोह तथा फलों पर सफेद चूर्ण-सा फैल जाता है। यह अधिक आर्द्रता वाले वातावरण में फैलता है।

रोकथाम—गर्मी में 8-15 दिन के अन्तर पर गंधक के चूर्ण का बुरकाव या घोल छिड़कना चाहिए।

मृदु रोमिल फफूंदी या तुलासिता (Downy Mildew)—इसमें पत्तियों पर भूरे रंग के धब्बे हो जाते है जिससे पत्तियाँ सूख जाती हैं। फलों पर प्रभाव होने पर ये छोटे होकर गिर जाते हैं।

रोकथाम—बोर्डो मिश्रण (5 : 5 : 50) का 2-3 बार छिड़काव लाभप्रद है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. अंगूर की संधाई की विभिन्न विधियाँ बताइये।
2. अंगूर की खेती का निम्न बिन्दुओं पर वर्णन करो—
   (i) गड्ढे तैयार करना (ii) उन्नत जातियाँ (iii) पौधे लगाना
   (iv) सिंचाई (v) फलन का समय (vi) उपज प्रति वृक्ष
3. अंगूर प्रवर्धन की विधियाँ बताओ।

आँवला
(Indian Goose berry)

वानस्पतिक नाम—Emblica Officinalis   कुल—Euphorbiaceae

आँवला विटामिन 'सी' (100 ग्राम गूदे में 500–700 मिलीग्राम विटामिन (सी) का प्रमुख स्रोत है। गूदे के कसैले स्वाद के कारण इसे ताजे फल के रूप में नही खाते हैं। इससे मुरब्बा, अचार के अलावा चटनी बनाई जाती है। सूखे फलो से बहुपयोगी 'त्रिफला चूर्ण' बनाया जाता है जो आँख तथा पेट के रोगों में लाभप्रद है।

यह उष्ण, कटिबन्ध के दक्षिण पूर्व एशिया के अतिरिक्त दक्षिण भारत का फल है। भारत के अलावा लंका, मलयेशिया तथा चीन देशों में प्रचुरता से उगाया जाता है। इसे हिमालय की तलहटी से लेकर दक्षिण भारत के 1500 मीटर ऊँचे भागों में जंगली रूप में उगाते हैं। व्यवसायिक रूप से उत्तर प्रदेश के उद्यानों में उगाते हैं।

जलवायु—यह उपोष्ण से उष्ण जलवायु के क्षेत्रों में सरलता से उगाया जा सकता है। सूखी तथा नम दशाओं के अलावा लू तथा पाले के पौधो पर प्रभाव नही होता है। उत्तर भारत का उच्च ताप 46° सेल्सियस पौधों को विशेष प्रभाव नही करता है। शीतकाल में वृक्षो से पत्ती- तथा उपशाखाएं गिर जाती हैं, बसंत मे नई वृद्धि होती है।

भूमि यह अधिक बलुई भूमि को छोड़कर अच्छे जल निकास वाली उपजाऊ सभी भूमियों में सफलता से उगाया जा सकता है।

गड्ढे तैयार करना— तैयार भूमि में मई-जून माह मे 10 मीटर की दूरी पर एक घन मीटर आकार के गड्ढे तैयार करते हैं। गड्ढो की खुदाई के 15-20 दिन बाद 10-15 किग्रा. गोबर की खाद मिलाकर भर देते हैं।

किस्में—बनारसी, चकिया, हाथीझूल, (फ्रांसिस) हरे, गुलाबी आंवला, आनन्द –1, आनन्द—2।

राज्य मे देशी किस्में चोमू, पुष्कर प्रचलित हैं। बड़े आकार की रेशे रहित किस्में अच्छी होती हैं। कुछ किस्मो में फाँकों की धारियां सुस्पष्ट दिखाई देती हैं।

पौध प्रवर्धन—पौधे बीज के अलावा भेंट कलम, शील्ड कलिकायन से तैयार किये जाते हैं। पूरी तरह पके फलों से प्राप्त बीजों को पौध घर में फरवरी में बोते हैं। नये बीजू पौधों पर निकले नए प्ररोहों पर उच्च-कोटि के आंवले की कलिका चढ़ा कर पौधों को अच्छी किस्मों मे बदलते हैं।

प्रतिरोपण—वर्षारम्भ होते ही जुलाई में तैयार गड्ढों में पौधों को लगा देते हैं।

खाद - पौधों में दस वर्ष की आयु तक 30-40 किग्रा. गोबर की खाद, 0.7-0 9 किग्रा. नत्रजन उर्वरक, 1.0 किग्रा. सुपर फास्फेट एकल तथा 1.0-1.5 किग्रा. पोटाश प्रति पेड़ प्रति वर्ष, वर्ष में दो बार सितम्बर-अक्टूबर तथा अप्रैल-मई में देना उपयोगी पाया गया है।

सिंचाई—पौधे लगाने के तुरन्त बाद फिर 15 दिन के अन्तर पर सिंचाई करें। पुष्पन आने पर उद्यान की अप्रैल से जून तक सप्ताह में दो बार सिंचाई करें।

निराई-गुड़ाई—सिंचाई तथा वर्षा के बाद आवश्यकतानुसार गुड़ाई करते रहो।

पौधों की काट-छांट—पौधे के मुख्य तने पर 0.75 मीटर की ऊँचाई तक कोई शाखा न छोड़कर 4-6 शाखाओं को उचित दूरी पर बढ़ने देते हैं। सूखी, रोगी, टूटी, कमजोर तथा भाड़ी शाखाओं को काट देते हैं। जड़ों के समीप निकले प्ररोहों को निकालते रहें।

फलन—आंवले के वृक्ष में फल देर से आते हैं। चश्मा लगे पेड़ से 10वें साल में थोड़े फल लगने शुरू होते हैं। बसंत काल में नई वृद्धि के साथ फूल आने लगते हैं जो अधिक संख्या में नर होते हैं। अगस्त तक फल का भ्रूण सुप्तावस्था में रहता है। अगस्त में भ्रूण वृद्धि के साथ फल का आकार बढ़ने लगता है जो जनवरी-फरवरी तक पूर्ण विकसित होते हैं।

फलों के विकास काल में इनकी चिड़ियों आदि से रक्षा करना अति आवश्यक है। फलों को रंग, आकार तथा पकने की दशा के अनुसार तोड़ते रहते हैं। इनको टोकरियों तथा बोरियों में भरकर बिक्री के लिए भेजा जाता है।

उपज – अच्छी व्यवस्था करने पर 2-3 क्विण्टल प्रति पेड़ तथा 200-250 क्विण्टल प्रति हेक्टर फल प्राप्त होते हैं।

कीट रोग—प्राय: प्रकोप नहीं होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. आंवले को उगाने की विधि का निम्न शीर्षकों पर वर्णन करो –
   (अ) भूमि व गड्ढे तैयार करना (ब) किस्में (स) पौध प्रतिरोपण
   (द) पौधों की देख-रेख (य) फलन तथा उपज
2. निम्न पर टिप्पणियां लिखो—
   (i) त्रिफला चूर्ण। (ii) पौध प्रवर्धन

फालसा
(Falsa)

वानस्पतिक नाम—Grewia Subinaecuqalis कुल—Tiliaceal

फालसा नगरों की समीपवर्ती क्षेत्रों में उगाया जाता है। यह विटामिन ए, सी के अतिरिक्त फास्फोरस तथा लोहा तत्व प्रदान करता है। इससे 50 60% प्राप्त रस को पानक तथा शर्बत बनाने में उपयोग किया जाता है। तने से टोकरियों तथा शाकों को सहारा देने के काम में लाते हैं; छिलके से रस्सी बनाई जाती है।

यह भारत का देशज है जो पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश के अलावा महाराष्ट्र, गुजरात, आंध्रप्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल राज्यों में अधिकता से उगाया जाता है।

जलवायु—उपोष्ण जलवायु का फल है जो गर्म तथा शुष्क मैदानों मे उगाया जाता है। अधिक तथा न्यून ताप पौधों को प्रभावित नहीं करता है परन्तु पुष्पन के समय वर्षा हानिकारक है।

भूमि—यह विविध प्रकार की मृदाओं, उद्यान, सड़कों के पार्श्व-भूमि मे उगाकर उनका सही उपयोग किया जा सकता है। अच्छी उपज के लिए अच्छे जल निकास वाली दोमट भूमि अच्छी है।

भूमि में पर्याप्त मात्रा में जीवांश खाद का प्रयोग करके अच्छी तरह तैयार कर लेते हैं। उद्यान में 2.5-3 मीटर की दूरी पर नालियां बना लेते हैं।

पौध-प्रवर्धन फालसे का प्रवर्धन बीज द्वारा किया जाता है। बीज को सुखाकर कांच के जार में संग्रहित करते हैं। बीज को पौध घर में मई के अंत में 22-30 सेमी. की दूरी पर 5-8 सेमी. गहराई पर बो देते हैं, जो उचित देखरेख करने पर 15-20 दिन में अंकुरित हो जाते हैं। 3 माह के पौधो को प्रतिरोपित किए जाता है। कलम तथा वायवीय गूटी द्वारा पौधे तैयार किए जाते हैं।

प्रतिरोपण—तैयार नालियों में पौधो को 2.5-3 0 मीटर की दूरी पर जुलाई-अगस्त तथा फरवरी-मार्च में प्रतिरोपित करते है। एक हेक्टर में 1100-1500 पौधे लगाये जा सकते हैं।

किस्में – फालसे की विशेष प्रचलित किस्मे नही है। स्थानीय लम्बी, छोटी तथा शरबती प्रजातियां किस्मे उगाई जाती हैं। लम्बी किस्मे अधिक फल देती हैं।

खाद – फालसे के पौधों में विशेष रूप से खाद प्रयोग नहीं करते हैं परन्तु 100 किग्रा. नाइट्रोजन, 40 किग्रा. फास्फोरस तथा 25 किग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर देना अच्छा है। पौधों की काट-छाँट के बाद 15 किग्रा. गोबर की खाद प्रति पौधे में दें। यदा-कदा जड़ों को खोलने के बाद पर्याप्त मात्रा में गोबर की खाद के अलावा 0.25 किग्रा सुपर फास्फेट, 100 ग्राम यूरिया तथा पोटाश मिट्टी में भलीभांति मिलाकर सिंचाई करते हैं।

सिंचाई—यह सूखा सहिष्णु पौधा है फिर भी मार्च से मई तक 20-25 दिन तथा मई में 15-20 दिन के अन्तर पर सिंचाई करें। खाद प्रयोग के बाद सिंचाई अवश्य करें।

निराई-गुड़ाई—पौधों की काट-छाँट के बाद 2 जुताइयाँ करके खरपतवारों को रोका जा सकता है। जीवांश खाद के प्रयोग के बाद सिंचाई करके जुताई करें जिससे खाद भी मिल जावेगी तथा घास-फूस नष्ट होंगे।

काट-छाँट—यह महत्वपूर्ण क्रिया है। पौधे जनवरी माह में सारी पत्तियाँ गिरा देते हैं। पौधों की एक मीटर की ऊँचाई से सिराहीन कर देते हैं। रूखी-सूखी पतली टहनियों को प्रतिवर्ष काट कर अलग कर देते हैं।

अन्तराशस्य—वर्षा ऋतु में हरी खाद देने वाली फसलें उर्द, मूँग, लोबिया आदि ली जा सकती हैं।

फलन—पौधे लगाने के दूसरे वर्ष से फलन करते हैं। कटी-छँटी शाखाओं पर मार्च-अप्रैल मे प्ररोह निकलते हैं। शाखाओं की वृद्धि के साथ फूल निकलते हैं जिन पर विकसित फल मई में पकने लगते हैं।

फल बहुत छोटे लगते हैं जो धीरे-धीरे पकते रहते हैं। इनको छोटे बच्चों से तुड़ाया जाता है। फलों के शीघ्र खराब हो जाने के कारण इनको शीघ्र ही बिक्री के लिए टोकरियों में भरकर भेजा जाता है।

उपज—प्रति पेड़ से 6-7 किग्रा., 600-800 क्विण्टल प्रति हेक्टर फालसा प्राप्त होता है।

कीट रोग—फालसा में विशेष कीट एवं रोग का प्रकोप नहीं होता है। कभी-कभी छिलका खाने वाली इल्ली हानि पहुँचाती है। इसे आवश्यक रसायन से नष्ट करें।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. फालसा उगाने की विधि का वर्णन कीजिए?
2. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—
   (अ) फालसा का उपयोग
   (ब) पौध प्रवर्धन

खण्ड (ब)

फल-परिरक्षण

(Fruit-Preservation)

अध्याय—25

फल–परिरक्षण व्यवसाय का महत्व एवं स्थिति

देश में विभिन्न फलों के अचार, मुरब्बा आदि बनाने के साथ कुछ सब्जियाँ ग्वार, गोभी, धनिया, मेथी, आलू आदि को सुखाने की प्रथा काफी प्राचीन है परन्तु इन सभी को देशी विधि से परिरक्षित किया जाता है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद परिरक्षण को वैज्ञानिक तथा व्यवस्थित रूप में विकसित किया गया। ब्रिटिश काल में कुछ खाद्य परिरक्षण संस्थान सैनिकों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए प्रारम्भ किए गए। देश में 1935 में प्रथम व्यावसायिक संस्थान बम्बई में स्थापित किया गया तदनुपरांत मद्रास, कलकत्ता, उत्तर प्रदेश, पंजाब में स्थापित हुए।

स्वतंत्रता के बाद केन्द्रीय सरकार ने केन्द्रीय खाद्य प्रौद्योगिक अनुसंधान संस्थान, मैसूर में स्थापित किया जहाँ पर फल परिरक्षण पर विभिन्न अनुसंधान किए गए। लखनऊ, नागपुर, बम्बई, त्रिचुर, चण्डीगढ़, त्रिवेन्द्रम में अनुसंधान केन्द्र कार्य कर रहे हैं। फल-शाकों से परिरक्षित पदार्थ, निर्माण तथा, इनमें काम आने वाली विविध यंत्र, सामग्री तथा उत्पादन के निर्यात, बिक्री की व्यवस्था हेतु केन्द्र सरकार ने वाणिज्य व्यवसाय मंत्रालय के अन्तर्गत 'खाद्य परिरक्षण व्यवसाय विकास संस्थान स्थापित किया। परिरक्षण को सरल बनाने के लिए विविध साहित्य प्रकाशित किया गया। 1973 से खाद्य परिरक्षण व्यवसाय बोर्ड को खाद्य, कृषि, सामुदायिक विकास तथा सहकारिता मंत्रालय के साथ जोड़ दिया जिसका कार्य नए उद्योगों की स्थापना के लिए उचित मार्ग दर्शन, फल उत्पाद नियम बनाना है। देश में बोर्ड से मान्यता प्राप्त 1155 फल परिरक्षण उद्योग कार्य कर रहे हैं जहाँ पर विभिन्न फलों से पेय पदार्थ, अचार डिब्बाबंद फल, शाक, अचार, चटनी आदि परिरक्षित पदार्थ बनाए जाते हैं।

जिन स्थानों में शाकों तथा फलों की अधिकता होती है वहां से अन्य प्रदेशों मे भेजने में काफी व्यय होता है जिससे स्थानीय लोगों के क्रय न करने पर फल खराब हो जाते हैं । इनको ज्यों का त्यों या अन्य पदार्थों में परिणित करके परिरक्षित किया जाता है जिनमें आलू का सुखाना प्रमुख हैं ।

प्राकृतिक अवस्था में आंधी-वर्षा से फल शाक झड़ते रहते हैं जिनसे स्वादिष्ट व्यंजन तैयार किये जा सकते हैं-अचार, सिरका, फलों के रस आदि हिमाचल प्रदेश में राज्य सरकार ने सेब से रस निकालने का उद्योग लगाया है जहां से यह रस विभिन्न रेलवे स्टेशनों पर उपलब्ध कराया जा रहा है ।

दक्षिण भारत मे आम, केला, चीकू, पपीता, अनन्नास, काजू, संतरा, नारियल, आदि फल बहुतायत से पैदा होते हैं । उत्तर मे सेब, आलू, नाशपाती, अखरोट, बादाम, बेरी, आदि तथा मैदानी भाग मे आम, अनार, जामुन बेर, अमरूद आदि के अलावा विभिन्न सब्जियाँ पैदा की जाती हैं । इनको एक स्थान से दूसरे स्थानों पर भेजना पड़ जावे और इनका मूल्य अधिक न बढ़े, जिससे ये सामान्य व्यक्ति को उपलब्ध हो सके जो परिरक्षण विज्ञान के विकास से ही संभव है ।

राजस्थान में संतरा, चकोतरा, अनार, बेर आदि फल अधिकता से उगाए जाते हैं जो अन्य भागों में पहुंचाने पर काफी मंहगे हो जाते हैं । इनकी आवश्यकता से अधिक मात्रा को शीत-गृहों में रखा जाता है तथा विभिन्न पेय पदार्थ, बेर का मुरब्बा, अनारदाना, टमाटर से चटनी, सॉस, फल शाक, अचार आदि पदार्थों के निर्माण के उद्योग स्थापित किए गये है । ग्रामीण स्तर पर आलू, ग्वार, काचरी, मैथी आदि शाको को सुखाना, आम का अमचूर, पापड़ बनाना, मटर की डिब्बाबंदी आदि कार्य प्रमुख है ।

वर्तमान में परिवहन सुविधायें बढ़ रही हैं । जनसंख्या की वृद्धि के साथ बेरोजगारी की समस्या पैदा हो रही है । तकनीकी ज्ञान की कमी नहीं है परन्तु आम जनता की खाद्य प्रवृत्ति को बदलना मुख्य है । इन सभी के साथ परिरक्षण के लिए बिजली, चीनी, उपकरण, अन्य कच्चा माल सुलभता से उपलब्ध होने पर इस व्यवसाय में 'नई क्रांति' आ सकती है । राज्य व केन्द्र सरकार इस व्यवसाय मे प्राप्त उत्पाद को बाजार प्रदान करने के प्रयास कर रही है । इस प्रकार फल परिरक्षण व्यवसाय का भविष्य उज्ज्वल है ।

परिरक्षण के उद्देश्य - आज के भौतिक युग मानव पृथ्वी पर ही नहीं अनजान स्थानों; अंतरिक्ष खोज आदि नये काम में कटिबद्ध हो रहा है जिस पर उसने कुछ सीमा तक सफलता प्राप्त की है । मानव को अपनी भोजन की आवश्यकता पूर्ति हेतु विभिन्न खाद्य पदार्थों की आवश्यकता होती है । भोजन के तत्व शाको व फलो में अधिक होते हैं परन्तु इनको सदैव ताजी दशा में नही रखा जा सकता है । इससे परिरक्षण की आवश्यकता होती है, जो विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति करती है ।

1. अतिरिक्त उत्पादन की सुरक्षा—खेतों तथा उद्यानों में फलों को काफी अधिक मात्रा में पैदा किया जाता है। इस उपज को सामान्य वातावरण की स्थिति में सुरक्षित नहीं रखा जा सकता है। जिसका परिरक्षण विधियों से सुरक्षित रखा जा सकता है जिससे वे मौसम में रोगी तथा अन्य व्यक्तियों को उपलब्ध हो सकेंगे।

2. शाक तथा फलों की उपज से अधिक लाभ प्राप्त करना—एक निश्चित मौसम में फलों एवं शाकों को उस समय बाजार में बेचना सम्भव नहीं हो पाता है तथा अपेक्षाकृत मूल्य कम मिलता है। दूरस्थ स्थानों पर भेजने पर इनके खराब होने की आशंका रहती है।

इस अतिरिक्त उत्पादन को परिरक्षित करके बाद में आवश्यकतानुसार बेचने पर अधिक लाभ मिलेगा।

3. आहार को संतुलित बनाना—मानव के आहार को सतुलित बनाने के लिए विभिन्न भोज्य तत्वों की आवश्यकता होती है जिनकी पूर्ति विभिन्न शाकों-फलों से होती है। आहार को इनको उचित मात्रा में समावेश करने मानव का स्वास्थ्य तथा कार्य क्षमता अच्छी होती है।

4. बेरोजगारी समस्या को दूर करना—फल एवं शाक परिरक्षण व्यवसाय में प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित मजदूर, कारीगर, संचालक, सहायक आदि की आवश्यकता होती है। इनके लिए कच्चे माल (फल-शाक) के उत्पादन, से लेकर इनके उद्योग स्थानों पर भोजन तथा इनसे विभिन्न परिरक्षित पदार्थों को तैयार करने में अनेक बेरोजगारों को काम मिलेगा। फल परिरक्षण को उद्योग रूप देने की ओर विशेष ध्यान देना आवश्यक है।

5. राष्ट्रीय आय में वृद्धि—फल परिरक्षण कार्य को व्यावसायिक रूप देने से फलों-शाकों के परिरक्षित उत्पाद अधिक मात्रा में बनेंगे जिसमे लोगों की आय बढ़ने के साथ राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी।

6. विदेशी मुद्रा अर्जन—देश मे प्रति वर्ष आम, संतरा, माल्टा, मौसमी, केला, अनन्नास, बेर अनेकों शुष्क फल तथा फलों में बने उत्पादो को विदेशो मे भेजा जाता है जिनसे अमूल्य विदेशी मुद्रा अर्जित की जाती है।

7. राष्ट्र रक्षा के लिए - देश की विशाल सीमा की सुरक्षा मे हमारे सैनिक दिन-रात तैयार रहते हैं। ये स्थान समुद्री तट, मैदानी भाग तथा पर्वतीय शृंखला हो सकती हैं। इन सैनिकों को स्वस्थ-चुस्त रखने के लिए सतुलित तथा पौष्टिक आहार पहुँचाना जरूरी है जो फल परिरक्षण से ही संभव हो सकता है।

8. विविध उद्योगों को प्रोत्साहन—देश में बढ़ती जनसंख्या तथा इनके रहन-सहन में उच्चता के कारण फल-शाकों का उपयोग बढता जा रहा है। इससे इनका उत्पादन भी काफी [illegible] है जिससे इनको विविध रूपों मे शीत गृहो मे संग्रहण,

विविध पदार्थों के बनाने की आवश्यकता हो रही है। बड़े तथा छोटे घरेलू उद्योग स्थापित होते जा रहे जहां हैं शाकों को सुखाने से लेकर अचार, मुरब्बा, पेय पदार्थ, चटनी आदि रूप में फलों को परिरक्षित किया जा रहा है।

फलों एवं शाकों के बिगड़ने के कारक

फल और सब्जियां शीघ्र खराब होने वाला कच्चा माल समझा जाता है इनको साधारण स्थितियो मे सुरक्षित नहीं रखा जा सकता है। अधिक फल और शाक गूदेदार, रसदार मुलायम होती हैं जिससे वे शीघ्र खराब हो जाती हैं। इनके बिगड़ने के निम्न कारक प्रमुख हैं —

(अ) भौतिक कारक (ब) रासायनिक कारक (स) जैविक कारक

(अ) भौतिक कारक—

(i) अधिक नमी के कारण—फलों एवं शाकों में जल की मात्रा 60-70% तक होती है, शेष जैव एवं अजैव पदार्थ। वायुमण्डल की नमी (आर्द्रता), सिंचाई के कारण फल-शाक सड़-गलकर खराब हो जाते हैं। सूखे फल तथा तरकारियां भी वातावरण की नमी पाकर फफूंदी ग्रस्त होकर खराब हो जाते हैं। विभिन्न प्रकार के अन्य जैव नमी मे वृद्धि करते हैं।

(ii) अधिक ताप—फलो एवं शाकों में नमी की मात्रा अधिक होती है। वातावरण मे 5°-60°C ताप पर इनकी वृद्धि अधिक होती है। इनकी आवश्यक वृद्धि के लिए 24-30°C (75-86°F) ताप आवश्यक है। अप्रिय गंध आने से ये खाने योग्य नहीं रहती हैं।

(iii) फलो-शाको के परिपक्व होने पर इनको तोड़ते समय इन पर घाव, फट-फट जाने से ये संग्रहित तथा भेजने में असुविधा होती है तथा खाने के काम मे नहीं आते हैं।

(iv) फल तथा शाकों को पैकिंग करके भेजते समय अधिक दाब पड़ जाने से ये बेडौल तथा पिलपिले हो जाने से उपयोग मे आने योग्य नही रहते हैं तथा इनका संग्रहण भी नही किया जा सकता है।

(ब) रासायनिक कारक—फल-शाको में जल की मात्रा अत्यधिक होने तथा ताप परिवर्तन के साथ विभिन्न जैविक क्रियाओं के कारण अनेक रासायनिक परिवर्तन होते हैं जिनमें कुछ परिवर्तन विशेष हैं—

(1) अल्कोहल का विकास—फल-शाकों को शीत भण्डार से निकालने के बाद कई दिनों तक ढेर में पड़े रहते हैं। पौधों से तुड़ाई के बाद भी कई बार ढेर में पड़े रहते हैं, जिससे इनका कार्बोहाइड्रेट एन्जाइमों के विकसित होने से अल्कोहल में बदल जाते हैं और इनके स्वाद, गंध को खराब कर देते हैं। जिससे ये उपयोग में नहीं आते जा सकते।

(ii) खटास का बढ़ना—विभिन्न परिरक्षित पदार्थ, अचार, पेय तथा खाद्य पदार्थों पर विकसित होकर उनको खराब कर देते हैं। विभिन्न फलों तथा शाको में अम्ल की अलग-अलग मात्रा पाई जाती है। सेम, चुकंदर, स्ट्राबेरी, आलू, टमाटर, अंजीर, नाशपाती, खुबानी, आडू, संतरा, अनन्नास, सेब, चकोतरा, कमरख आदि फल तथा इनके उत्पाद अम्लीय जीवाणु के कारण खराब हो जाते हैं और उपयोग में आने योग्य नहीं रहते।

(स) जैविक कारक—फल एवं शाकों को खराब करने में जैविक कारकों का महत्वपूर्ण योगदान रहता है जो खेत से लेकर भण्डारण तथा उपभोक्ता के पास पहुँचने तक हानि पहुँचाते हैं। निम्न कारक प्रभावित करते हैं।

(i) फफूँदी (Moulds)—ये मृत परजीवी हैं जो नमी युक्त खाद्य पदार्थों डबलरोटी, चटनी, सूखे फल, मेवा, अचार आदि पर सफेद, हरे नीले तथा काले रंग के रुई के रेशे के समान रचना दिखाई देती है। ये इनको पूर्णतया नष्ट कर देती है। ये वर्षाकाल में पेड़ पौधों, फलों तथा पौध घर में टमाटर, मिर्च आदि को गला देते हैं। विभिन्न खाद्य पदार्थ जिनमें परिरक्षक पदार्थ नहीं मिलाया गया है। फलरस, जैम, जैली, आदि की सतह पर फफूँदी गंध पैदा करते हैं और ये उपयोग में नहीं आ पाते हैं।

(ii) जीवाणु (Bacteria)—जीवाणु भी सूक्ष्म एक कोशीय वनस्पतियाँ हैं जो विभिन्न आकारों में हर जगह उपस्थित रहती हैं। ये सभी फल शाको की ऊपरी सतह पर आते हैं फिर भी फसल काटते समय अन्य जीवाणु लग जाते है और ये कुछ समय बाद खराब हो जाते हैं, इनकी वृद्धि के लिए थोड़ा सा शर्करायुक्त पदार्थ चाहिए जिससे ये वृद्धि करके उस पदार्थ को खराब कर देते हैं।

(iii) प्रकिण्व (Yeasts)—ये एक कोशीय अण्डाकार या वृताकार होते है। इनमें कवक जाल तथा पर्णहरित नहीं होता है। अन्य पदार्थों पर पूर्णतया आश्रित रहते हैं। प्रकिण्व में किण्वन शक्ति अधिक होने से ये फल शाकों के मांड (Starch), शर्करा (Sugar) को मद्यसार (Alcohol), CO_2 के रूप में रूपान्तरित हो जाते है। प्रकृति में पाये जाने वाला प्रकिण्व सेकेरोमाइसिस पास्तरिनस फलो के रस में कडुवापन पैदा करता है। आचार तथा खाद्य पदार्थों में आभासी प्रकिण्व दुर्गन्ध तथा कोहरा या धुंध (Mist) पैदा करते हैं जिससे वे खाने योग्य नहीं रहते।

(iv) किण्वक (Enzyme)—ये प्रोटीन युक्त पदार्थ है जिनको जैव उत्प्रेरक (Organic Catalyst) कहते हैं। जैव उत्प्रेरक, रासायनिक क्रिया में तीव्रता लाते हैं। किण्वक प्रत्येक कोश में उपापचय (Metabolic) क्रिया में उत्प्रेरण करके कोशिकाओं में जीव द्रव्य (Protoplasm) के संचयन में सहायक होते है। किण्वक रासायनिक तथा भौतिक प्रतिक्रियाओ से किण्वीकरण करके गुण अवगुण पैदा करता

है। पेड़-पौधों का बीजांकुरण वृद्धि, फूलना, फलना, पकना आदि सभी क्रियाएँ किण्वक के द्वारा होती हैं। नवजात फलों में मांड निर्माण, शर्करा में बदलना किण्वक के कार्य हैं।

फल-शाकों को यथा समय न तोड़ने पर ये स्वतः गिर जावेंगे तथा सूक्ष्म जीवों के प्रवेश से उनमें किण्वन क्रिया से मद्यसार बनेगा। मद्यसार पर फल-मक्खी आकर्षित होती है। जीवाणु निवेशित करके सिरके में बदल देता है और फल-शाक लापरवाही से खराब हो जाते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. फल परिरक्षण व्यवसाय का क्या महत्व है? बेरोजगारी समस्या के समाधान में इसकी उपयोगिता को लिखिए।
2. फल-परिरक्षण के क्या लाभ हैं? यह राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में किस प्रकार सहायक है, लिखिए?
3. फलों एवं शाकों के बिगड़ने के विभिन्न कारकों को लिखिए? इनके संरक्षण के उपायों को लिखिये।
4. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—
   (अ) फल परिरक्षण संस्थान
   (ब) ताप का शाकों एवं फलों पर प्रभाव
   (स) फल परिरक्षण के उद्देश्य

फल–परिरक्षण के सिद्धान्त
(Principles of Fruit Preservation)

फल-परिरक्षण के सिद्धान्तों को समझने से पूर्व इनके खराब होने के विभिन्न कारकों का ज्ञान होना आवश्यक है। शाक-फलों को जीवाणु, कवक, खमीर, एन्जाइम आदि खराब करते हैं। अस्वच्छता से जीवाणु फलों एवं खाद्य सामग्री को खराब करते हैं। मीठे पदार्थों को खमीर और फलों को पकाने में एन्जाइम मदद करते हैं। एन्जाइम्स की क्रियाशीलता फलों को सड़ा भी देते हैं। संग्रहण में ध्यान न देने पर भी ये पदार्थों को खराब कर देते हैं जिससे वे उपयोग के योग्य नहीं रहते हैं। अतः इन सभी कारकों को रोकने में जो भी विधियाँ प्रयोग की जाती हैं, वे ही सिद्धान्त होंगे।

फल-शाकों एवं इनके उत्पादों का परिरक्षण वैज्ञानिक नियमों पर आधारित है। परिरक्षण की विधियों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है—

(अ) अस्थाई परिरक्षण (ब) स्थाई परिरक्षण

(अ) अस्थाई परिरक्षण (Tamporary Preservation)—इन विधियों से संसाधित उत्पादों को कुछ समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है। निम्न विधियाँ प्रयुक्त होती हैं—

1. निरोगावस्था (Asepsis)—खाद्य पदार्थों को मानव शरीर की भाँति सूक्ष्म जीवों के प्रवेश से बचाकर निरोग अवस्था मे रखा जावे जिससे ये सड़ने-गलने से बचे रहेंगे। शाकों तथा फलों का उत्पादन शुद्ध तथा साफ वातावरण में किया जावे। मल-मूत्रादि से युक्त शहर के गंदे नाले के पानी से न सींचा जावे क्योंकि इनमें रोगजनित जीवाणु पाये जाते हैं।

फल शाकों को तोड़ने व एकत्रित करने वाले निरोग हों। फलों तथा तरकारियों को तोड़ने के बाद धोकर साफ करें। जिससे पौध संरक्षण में प्रयुक्त रसायन का अंश, धूल आदि साफ हो जाते हैं।

2. न्यून ताप परिरक्षण (Low Temperature Preservation)—सभी को विदित है कि गर्मी में खाद्य पदार्थ सर्दी की अपेक्षा शीघ्र खराब हो जाते हैं

जिसका मुख्य कारण है अधिक तापमान। सूक्ष्म जीवों के विकास के लिए एक निश्चित तापमान, आर्द्रता की आवश्यकता होती है। इनको 10°C से अधिक ताप मिलने पर ये खाद्य पदार्थों को विघटन क्रिया करके खाद्य पदार्थों को खराब कर देते हैं।

रेफ्रीजरेटर, शीत भण्डार आदि में खाद्य पदार्थों का परिरक्षण किया जाता है। इन यन्त्रों से साधारणतया 4°-10°C ताप नियन्त्रित किया जाता है। देश के विभिन्न भागों में सहकारी, राज्य सरकार तथा व्यक्तिगत शीत भण्डार संचालित किये जा रहे है जहाँ आलू, अन्य शाकों तथा फलों को भण्डारित किया जाता है।

3. आर्द्रता अपवर्जन परिरक्षण (Preservation by Exclusion of Moisture)—सूक्ष्म जीवों की वृद्धि के लिए निश्चित तापमान के साथ (नमी) की आवश्यकता होती है। इसी कारण खुले वातावरण में सूखे फल नमी पाकर फफूँदी ग्रस्त हो जाते हैं। नमी सोखने से पदार्थों में पाई जाने वाली शर्करा घुल जाती है और ये जीवाणु वृद्धि करके उसे खराब कर देते हैं। वर्षा के दिनों मे यह क्रिया अधिक होती है। सूखे आलू (चिप्स), मटर, हलुआ आदि को वायुरोधी पैक, प्लास्टिक की थैली या मोम लगे कागज से पैक किया जाता है।

4 आर्द्रता संरक्षण या मोमलेपन (Moisture retension or Waxing)—गर्म वातावरण मे पौधों से अधिक वाष्पीकरण होता है। इसे रोकने के लिए कुछ पोधो में स्वमेव मोमलेपन हो जाता है। उद्यान विशेषज्ञों ने यह क्रिया अपनाई। मोमलेपन से फल-शाकों पर लगे सूक्ष्म जीवों को नष्ट करने के साथ उनको सुरक्षित रखते हैं। बाहर भेजने वाले फलो-शाकों पर मोम के साथ सूक्ष्म जीवीनाशक रसायन निश्चित अनुपात मे मिलाकर छिड़का जाता है। यन्त्र भी उपयोग में लाया जाता है। केला, आम, संतरा, टमाटर आदि में मोमलेपन के परिणाम उत्साहजनक रहे हैं।

चावल के मांड में पपीते, केले, चीकू आदि फलों को डुबोकर रक्षण के प्रयोग किये जा रहे हैं।

5. वायु अपवर्जन क्रिया (By exclusion of air)—खाद्य पदार्थ वायु में सम्पर्क में आने पर स्वतः खराब हो जाते हैं। विभिन्न तेल, घृत, मक्खन आदि वायु के सम्पर्क से विकृत गंधी (Rancid) हो जाते हैं। परन्तु कैनीकृत। डिब्बाबन्द (Canned) किये तेल, घी आदि खराब नहीं होते हैं। फल रस, अचार, सूखे तथा निर्जलीकृत उत्पादकों को डिब्बाबन्द करके वायु से वंचित रखे जाने से खराब नहीं होंगे।

6. मृदु प्रतिरोधियों द्वारा (By mild Antiseptic)—वे रसायन जिनकी न्यून मात्रा मानव शरीर को हानि नही पहुँचाते तथा खाद्य पदार्थों में सूक्ष्म जीवों की वृद्धि को रोकते हैं या नष्ट करते हैं, प्रतिरोधी कहलाते हैं जैसे-शर्करा, तेल,

लवण, सिरका आदि। अचारों में लवण, तेल, सिरका आदि फलपेयों में शर्करा तथा परिरक्षण एक या एक से अधिक मिलाकर, परिरक्षित किया जाता है।

7. पास्तुरीकरण (Pasturization)—खाद्य पदार्थों को 60° से 80° से.ग्रे. (140°-176° फा.) निश्चित समय (30 मिनट) तक ताप प्रदान कर प्रविष्ट सूक्ष्म जीव निष्क्रिय या नष्ट हो जाते हैं। इससे खाद्य पदार्थों के गुणों में कोई अन्तर नहीं आता है। इस क्रिया को पास्तुरीकरण कहते हैं।

बड़े नगरों में दूध वितरण इसी क्रिया द्वारा करते हैं। फल तथा शाकों के सूप पास्तुरीकरण करके बाजारों में भेजा जाता है।

(ब) स्थायी परिरक्षण (Permanent Preservation)—खाद्य पदार्थों को अधिक समय तक सुरक्षित रखने में जो तकनीक प्रयोग की जाती है, स्थायी परिरक्षण है। इस विधि में खाद्य पदार्थों में प्रविष्ट सूक्ष्म जीवों को पूर्णतया नष्ट करते हैं और इनके पुनः प्रवेश को भी प्रतिरोधकों द्वारा रोका जाता है जिससे खाद्य पदार्थ को अधिक समय सुरक्षित बना रहे। निम्न विधियाँ प्रयुक्त की जाती हैं—

1. सुखाना (Drying)—सूक्ष्म जीव तथा उनके बीजाणु को 65° से 115° से. (149°-239° फा.) ताप पर नष्ट हो जाते हैं। फल-शाकों को निम्न विधियों से सुखाते हैं—

धूप में सुखाना—आदिकाल से घरों में शाक-सब्जियों तथा फलों को सुखाया जाता रहा है। आलू, कैरी, आम, केला, मछली, शाक सब्जी को आवश्यकतानुसार सुखाते हैं। इन खाद्यों को आवश्यकता के समय काम में लेते हैं। इनको मोमलित कागज, वायुरोधी डिब्बों, पॉलिथीन की थैली में पैक करते हैं।

निर्जलीकरण—निश्चित ताप पर सुखाने की विधि को निर्जलीकरण कहते हैं। अंगीठी, स्टोव, बिजली की अंगीठी की सहायता से बन्द वातावरण में निश्चित ताप पर सुखाया जाता है। धूप में सुखाये गए खाद्यों की तुलना में ये अधिक सुन्दर तथा स्वादिष्ट होते हैं। इन यन्त्रों से फल तथा तरकारियों को सुखाने के लिए उनको आवश्यकतानुसार ताप प्रदान करके सुखाते हैं। कम शर्करा वाले खाद्य पदार्थों से अधिक जल विसर्जित किया जा सकता है।

2. जीवाणु विहीनीकरण (Sterilization)—फल तथा शाकों को निर्जलीकृत करने पर रंग, स्वाद बदल जाने के साथ पोषक तत्वों में कमी आ जाती है। खाद्यों विशेष प्रकार के पात्रों में भरकर "कैनीकरण" तथा बोतलीकरण (Bottling) निर्जलीकृत करते हैं। फलों-शाकों को वांछित आकार में काटकर नमक या चीनी के घोल में डिब्बों में भरकर जीवाणु विहीनीकृत किया जाता है; एक निश्चित ताप पर 100°C पर 30 मिनट। खट्टे फलों को 115°C ताप 30 60 मिनट तक जीवाणु रहित करते हैं।

3. प्रतिरोधी वस्तुओं द्वारा (By Antiseptic)—प्रतिरोधी पदार्थ दो प्रकार के होते हैं—

(1) रासायनिक, (2) खाद्य वस्तु प्रतिरोधी।

रासायनिक प्रतिरोधी में सैलिसिलिक अम्ल, फार्मल्डिहाईड तथा पोटेशियम मेटाबाई सल्फाइट, सोडियम बेंजोइट आदि मान्यता प्राप्त रसायन हैं। इनकी सूक्ष्म मात्रा विभिन्न उत्पादकों में मिलाने से सूक्ष्म जीव निष्क्रिय हो जाते हैं क्योंकि ये सूक्ष्म जीवों के लिए विषतुल्य है। कार्बन डाइ ऑक्साइड परिरक्षण रसायन के रूप में विभिन्न फलों तथा पेय जलों में भरा जाता है। इनको कार्बनीकृत पेय कहते हैं जो बाजारों में साधारण रूप में मिलते हैं। 60% शर्करा खाद्य तथा पदार्थों मे मिलाई जाने से सूक्ष्म जीव निष्क्रिय हो जाते हैं। क्योंकि जल स्वतन्त्र रूप से नहीं मिलता है। जैम, जैली, मार्मलेड, मुरब्बा, फल मिश्री आदि इसी नियम के आधार पर बनाये जाते हैं। 15–20% लवण, 2-3% सिरका, तैल आदि प्रयोग में लेते हैं।

4. किण्वीकरण द्वारा परिरक्षण (By fermentation)—सूक्ष्म जीव तथा किण्वकों की क्रिया से कार्बोहाइड्रेट अपघटन (Decomposition) या संयुक्त पदार्थों का विघटन हो जाता है, किण्वन क्रिया का मूल आधार, 'किण्वक' (Enzyme) है।

सूक्ष्म जीव, खाद्य पदार्थों को खराब करने के साथ कुछ उनके रूप को बदल कर उपयोग के योग्य बना देते हैं। इन खाद्यों की सुगंधी तथा गंध में अन्तर आ जाता है। जैसे दूध से दही, अंगूर रस से मदिरा, मदिरा से सिरका।

वनस्पति-मंड, शर्करा आदि खमीरों (Yeasts) के कारण किण्वन से मद्यसार (Alcohol) पैदा होता है, जिसकी प्रतिशत 18% होती है। मदिरा बनने पर यह जीवाणुओं के प्रवेश के कारण सिरके में बदल जाता है। सिरके में 5-7% एसिटिक अम्ल पाया जाता है।

कार्बोहाइड्रेट में लैक्टिक जीवाणु की क्रिया से लैक्टिक अम्ल बन जाता है। अचार को इस विधि से बनाते हैं।

5. हिमीकरण परिरक्षण (By Freezing)—फल-तरकारियों में 60-70% जल की मात्रा होती है, शेष अंश अथवा अजैव पदार्थ। हरी मटर, सेम की फलियाँ और दाने, गाजर, भिण्डी, रसभरी, अमरूद, अंगूर, आडू, खुबानी, तरल फल (बेरी), स्ट्रॉबेरी आदि फलों को विशेष विधि से 0° से. (32° [illegible]) ताप पर एक वर्ष तक रखा जाता है। इस ताप पर इनके अन्दर पाये [illegible] हिमीकृत [illegible] है। फलों को शर्करा के घोल से डिब्बों में भर [illegible] को उबले जल में डालकर थोड़ी देर तक उबालने [illegible]

जीवों को निर्जलीकृत करने के लिए 50,000 हजार रोंट्स की आवश्यकता होती है। यह क्रिया विशेष उपकरणों द्वारा सावधानी से विशिष्ट वैज्ञानिकों के निरीक्षण में की जाती है।

7. परिरक्षक के रूप में प्रतिजैविकी (Antibioticsas Preservatives)—

कुछ सूक्ष्म जीवों के उपापचयी (Metabolic) उत्पादों में जीवाणुनाशक शक्ति (Germicidal) होती है, इसे 'प्रतिजैविकी' के नाम से पुकारते हैं। खाद्य वैज्ञानिकों ने प्रयोग अनुसंधान करके खाद्यान्नों में प्रतिजैविक द्वारा परिरक्षण पर विविध प्रयोग किये परन्तु प्रतिजैविकों के परिरक्षण में प्रयोग की सम्भावना विशद अनुसंधानों पर निर्भर होगी जिससे भविष्य में इनका उपयोग किया जा सकेगा।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. फल परिरक्षण के विभिन्न सिद्धांतों की विवेचना कीजिए ?
2. फल परिरक्षण में अस्थाई परिरक्षण विधियों का वर्णन कीजिए ?
3. फल परिरक्षण के लिए किन-किन विधियों को उपयोग में लाया जाता है ? प्रत्येक विधि का संक्षेप में वर्णन कीजिए ?
4. निम्न क्रियायें क्यों करते हैं—

   1. सुखाना 2. पाश्चुरीकरण 3. हिमीकरण परिरक्षण
5. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

   (अ) प्रतिजैविकी

   (ब) परिरक्षित पदार्थ

   (स) आर्द्रता अपवर्जन परिरक्षण

फल एवं शाकों के उत्पादों का वर्गीकरण

(Classification of Fruits & Vegetable Products)

प्राचीन समय से देश में फल एवं शाकों से विभिन्न प्रकार के उत्पादों को बनाया जाता रहा है। गृहणियां इन कार्यों में निपुण होती हैं। फल तथा सब्जी के इन उत्पादों को विभिन्न पारिवारिक, सामाजिक आयोजनों में उपयोग होता रहा है। इनके परिरक्षण की आवश्यकता एवं विभिन्न सिद्धांतों की जानकारी के साथ यह आवश्यक है कि फल एवं शाकों के उत्पादों की रचना, विशिष्टता, बनाने की विधियों तथा इनके उपयोग विधि के आधार पर वर्गीकरण आदि की विस्तृत जानकारी अत्यन्त आवश्यक है।

फल एवं शाकों के उत्पादों को कई प्रकार से वर्गीकृत किया जाता है —

1 सुखाए गए तथा निर्जलीकृत उत्पाद — ताजे शाकों तथा फलों की अन्दर की नमी कम करने के लिए सुखाया जाता है जिससे शाकों में नमी 12% से कम तथा फलों में 15–25% रखते हैं।

(अ) धूप में सुखाए गए उत्पाद — फल एवं शाकों को तैयार करके धूप में सुखाते हैं। जैसे - आलू, मैथी, धनियां, फूलगोभी, ग्वार, अंगूर, अंजीर, कच्चे आम, आंवला आदि।

(ब) निर्जलीकृत उत्पाद — फल एवं शाकों को कृत्रिम रूप से मशीनों (Dehydrators) द्वारा सुखाते हैं जिसे निर्जलीकरण कहते हैं। इन मशीनों का तापमान, आर्द्रता तथा वायु की गति नियन्त्रित करते हैं। जैसे — मटर, फूलगोभी, पत्तागोभी, आलू, गाजर आदि शाकें तथा आम, केला, सेब आदि फलों को इस विधि से सुखाते हैं।

2. नमक द्वारा परिरक्षित उत्पाद — कई शाकों तथा फलों को साधारण नमक से परिरक्षित किया जाता है, जो प्राकृतिक परिरक्षक का कार्य करते हैं। इस वर्ग में सभी अचार शामिल हैं।

(अ) किण्वित अचार — खीरा, पत्तागोभी, अदरख, आंवला आदि।

(ब) साधारण अचार — आम, नीबू, मिर्च, कटहल, करेला आदि।

(स) तेल में परिरक्षित अचार—आम, मिर्च, कटहल आदि

(द) सिरके में परिरक्षित अचार मिर्च अदरक, प्याज, लहसुन आदि

3. शर्करा परिरक्षित उत्पाद—इस वर्ग में वे सभी फल एवं शाकों के उत्पाद आते हैं जिनमें शर्करा 68% से अधिक होती है।

(अ) जैम, जैली मार्मलेड—इनमें फलों को पूरा, उनका रस, निचोड़ तथा गूदे को शर्करा के साथ गर्म करके बनाते हैं जो गाढ़े रूप में होते हैं। कभी-कभी फलों के छिलके के टुकड़े भी इनमें पाए जाते हैं जैसे माम लेड।

(ब) मुरब्बा, फल मिश्री, रवेदार तथा चमकीकृत उत्पाद—इनमें फल तथा शाकों के टुकड़ों को शर्करा की चाशनी में परिरक्षित करते हैं।

(स) सान्द्रित फल उत्पाद फलों के रस को उस समय तक सान्द्रित करते हैं जब तक उनमें प्राकृतिक शर्करा की मात्रा 68% तक हो जाती है। जैसे—सेब, संतरा, अनन्नासरस।

4 रासायनिक पदार्थों द्वारा परिरक्षित उत्पाद—फल एवं शाकों के उत्पादों को काफी समय सुरक्षित रखने के लिए रासायनिक परिरक्षित (Preservatires) उपयोग किए जाते हैं। साधारण तौर पर पोटेशियम मेटाबाई सल्फाइट तथा सोडियम बैंजोएट प्रयोग होते हैं जो बैंजोइक अम्ल तथा सल्फरडाई आक्साइड पैदा करते हैं।

रंगहीन पदार्थों में पुटेशियम मेटा बाई सल्फाइट प्रयोग करते हैं क्योंकि इसका गंधक तत्व पदार्थों का रंग उड़ाते हैं जैसे नीबू का पानक। सोडियम बैंजोएट रंगीन पदार्थों के परिरक्षण में काम आते हैं। जैसे—टमाटर सॉस, टमाटर का गाढ़ा रस आदि।

5. उच्च तापमान द्वारा परिरक्षित उत्पाद कुछ फल एवं शाकों के उत्पाद को उच्च तापमान के प्रयोग द्वारा परिरक्षित किया जाता है।

(अ) पाश्चुरीकृत उत्पाद प्रायः तरल, अर्द्धतरल उत्पाद पाश्च्युरीकरण द्वारा परिरक्षित किए जाते हैं जिससे सभी हानिकारक अतिसूक्ष्म जीव नष्ट हो जाते हैं। जैसे—फल-रस पेय, फल गूदा, टमाटर का गाढ़ा रस आदि,

(ब) उत्पाद—इसमें अम्लीय प्रकृति के उत्पाद, जिनका पी. एच. मान 4–5 या कम होता है, को पाश्च्युरीकृत करके विशेष प्रकार के पात्रों में भरा जाता है फिर इनको 60–80°C तापमान पर 30 मिनट तक गर्म करके जीवाणु रहित किया जाता है। जैसे—विभिन्न फलों के रस।

(स) संसाधित उत्पाद - इसमें कम तथा मध्यम अम्लीयता वाले पदार्थों से थर्मोफिलिक, मीसोफलिक, प्यूटरीफैक्टिव सूक्ष्म जीवाणुओं को निष्क्रिय किया जाता है। इसमें उत्पादों को अधिक तापमान 115–118°C तथा 4 8 कि.ग्रा. प्रति वर्ग इंच दाब पर 45–60 मिनट तक रखा जाता है।

6. अल्पतापमान द्वारा परिरक्षित उत्पाद—ताजे फलों तथा शाकों को अल्प तापक्रम के द्वारा रासायनिक क्रिया फल विकारों की क्रिया तथा सूक्ष्म जीवों की वृद्धि और क्रियाशीलता में कमी लाकर परिरक्षित करते हैं।

(अ) प्रशीतक, शीतगृहों में रखे फल एवं शाक उत्पाद—इसमें फलों एवं शाकों को रेफ्रीजरेटर शीत गृहों में 0–15°C तापमान पर अस्थाई तौर पर रखा जाता है।

(ब) हिमीकृत फल तथा सब्जी उत्पाद—इसमें ताजे फल, सब्जी तथा इनके उत्पादों को 15-29°C तापमान पर भण्डारित किया जाता है। ये उत्पाद प्राकृतिक रूप, गंध तथा पोषकता में बने रहते हैं। जैसे—आम का गूदा, मटर, फलों के रस आदि।

7. विकिरण द्वारा परिरक्षित उत्पाद—इसमें विकिरण के विभिन्न स्रोतों जैसे—कोबाल्ट-60, यूरेनियम-230, अल्फा, गामा तथा बीटा किरणों से विशेष सावधानीपूर्वक उपचारित कर परिरक्षित किया जाता है। यह परिरक्षण की नवीनतम विधि है जिसका प्रयोग अभी प्रारम्भिक स्थिति में है। प्याज, लहसुन, आलू डिब्बाबन्द उत्पादों को इस विधि से परिरक्षित किया जाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. विभिन्न फलों एवं शाकों के उत्पादों का उदाहरण सहित वर्गीकृत कीजिए।
2. क्षेत्र में तैयार किए जाने वाले विभिन्न उत्पादों की सूची तैयार कीजिए?
3. निम्न पर टिप्पणी लिखिए—
   (अ) निर्जलीकरण
   (ब) विकिरण द्वारा परिरक्षित उत्पाद
   (स) पाश्च्युरीकृत उत्पाद।

———

डिब्बाबन्दी
(Canning)

फल एवं शाकों को परिरक्षित करने की यह एक महत्वपूर्ण विधि है। डिब्बा बन्दी से फलों व शाकों को परिरक्षित कर अतिरिक्त मौसम में इनकी कमी की पूर्ति कर सकते हैं।

डिब्बाबन्दी—फल एवं शाकों को अन्य खाद्य पदार्थों की भांति यथा विधि तैयार कर पात्रों में भरकर वायुरुद्ध अवस्था में सीलबन्द कर, ऊष्मा ससाधन कर उसके भीतर स्वत. पाये जाने वाले विकृति कारकों, सूक्ष्म जीवाणुओं को सम्पूर्ण रूप से नष्ट करना और फल एवं सब्जियों की खराबियों से बचाना, डिब्बाबन्दी कहते हैं।

डिब्बाबन्दी में प्रयुक्त किये जाने योग्य फल एवं शाकें—डिब्बाबन्दी में फलों एवं शाकों को उनके पी. एच मान के आधार पर विशिष्ट प्रकार के पात्रों में भण्डारित किया जाता है।

कम अम्लता वाले फल एवं शाकें—मटर, फूलगोभी, गाजर आदि जिनका पी. एच. मान 5.3 से अधिक होता है, जो थर्मोफिलिक मिजोफिलिक व अवायुवीय जीवाणुओं के द्वारा खराब होती हैं। इन उत्पादों को लम्बे समय तक दाब पर जीवाणुओं रहित करके गधंक रोधी डिब्बों में परिरक्षित करते हैं।

मध्यम अम्लता फल एवं शाकें—भिण्डी, सीताफल आदि का पी. एच. मान 4.5 से 5.3 तक होता है। ये चपटे आकार के खटास पैदा करने वाले जीवाणुओं और शाकाणुओं के द्वारा खराब होते है। इन उत्पादों को अत्यधिक ताप एवं दाब (240-250°F तथा 1.5 पौण्ड) पर सादे डिब्बों में रखते हैं।

अम्लीय फल एवं सब्जियाँ—अनन्नास, आम, अमरूद आदि का पी. एच. मान 3.7-4.5 तक होता है। ये लेक्टिक अम्ल शाकाणु, खमीर, फफूंदी आदि से खराब होते हैं। इनको 212°F ताप पर 30-45 मिनट तक पर साधारण पात्रों में परिरक्षित करते है।

अधिक अम्ल वाले फल एवं शाकें—नीबू वर्गीय फलों का पी. एच. मान 3.7 से नीचे होता है। अधिक अम्ल के कारण खमीर, फफूंदी, लेक्टिक अम्ल के

जीवाणुओं से खराब हो जाते हैं। इनको 212°F ताप पर 25-30 मिनट तक जीवाणुरहित कर अम्लता रोधी पात्रों में परिरक्षित करते है।

डिब्बाबन्दी की प्रक्रिया :

फल एवं शाकों का चयन—डिब्बाबन्दी के लिए अच्छी उन्नत किस्म के स्वस्थ, पके, दाग रहित फलों एवं शाकों को चुने। शाक ताजे एवं मुलायम हों।

छँटाई तथा श्रेणीकरण—फलो एवं शाकों को रंग, आकार एवं किस्म के आधार पर छांटकर श्रेणीबद्ध करते हैं। बड़े उद्योगों मे डिस्क या रोलट ग्रेडर से फलों को छांटा जाता है। आम, आड़ू आदि बड़े फलों की छँटाई उनके आधा काट लेने के बाद करते हैं।

धोना—फल एवं शाकों को पर्याप्त स्वच्छ पानी से धोते हैं। शाकों को 1% पोटेशियम परमेंगनेट के घोल से धोना अच्छा रहता है।

छीलना—फलों एवं शाकों को धोने के बाद चाकू से छीला जाता है। मशीनों को भी छीलने मे प्रयुक्त किया जाता है।

फलों को काटना—आम, सेब आदि फलो के टुकड़े स्टेनलेस स्टील के चाकू से काटे जाते हैं। बड़े उद्योगों मे फलों की छिलाई-कटाई का कार्य मशीनो से किया जाता है।

ब्लॉचिंग—डिब्बाबन्दी के लिए चुने फलो एवं शाकों को उबलते पानी में निश्चित अवधि तक रखकर तुरन्त ठण्डे पानी में डालना, ब्लॉचिंग कहलाता है। इससे ऐंजाइम्स की क्रियाओं को कम तथा पदार्थो से विभिन्न गैसों का निष्कमण हो जाता है। विभिन्न प्रकार के शाकों-फलो को 2-5 मिनट तक रखा जाता है।

कटे हुए फलों एवं शाकों को तारकी टोकरियों मे रखकर मलमल के कपड़े में बांधकर गर्म पानी में 1 से 3 मिनट तक डुबोकर रखते हैं जिससे इनका छिलका मुलायम हो जाता है और रंग बना रहता है।

डिब्बों की भराई—डिब्बाबन्दी मे विभिन्न प्रकार के डिब्बे काम में लाते हैं—

(i) सादे टीन के डिब्बे—आम संतरा, अनन्नास, सेब आदि खट्टे फलो मे काम आते है।

(ii) अम्ल प्रतिरोधी डिब्बे—अधिक अम्लीय फल जैसे-नीबू जातीय फल बेरी आदि के फलों की डिब्बाबन्दी मे काम आते हैं।

(iii) गधंक प्रतिरोधी डिब्बे—विभिन्न प्रकार की शाकें जैसे-मटर, पत्तागोभी, फूलगोभी, भिण्डी, काशीफल, आदि को इन डिब्बों मे बन्द करते हैं। पॉलिथीन की थैलियो मे भी मटर, सेब आदि की डिब्बाबन्दी की जाती है।

साफ, जग तथा जीवाणु एवं नमीरहित डिब्बो को काम मे लाते हैं। इन डिब्बों मे से फलों एवं शाकों को 1 से 2 सेमी. डिब्बा खाली रखकर भर देते है। बड़े उद्योगो मे भराई का काम मशीनो से किया जाता है।

डिब्बों में शक्कर या नमक का घोल भरना—फलों एव शाकों के प्राकृतिक स्वाद बनाए रखने के लिए घोल भरा जाता है ।

शक्कर का घोल—फलों में चीनी का घोल भरा जाता है शक्कर का 20-25° ब्रिक्स वाले घोल को काम में लाते हैं ।

नमक का घोल—शाकों में 2-3 प्रतिशत नमक का घोल प्रयोग करते है ।

डिब्बों में घोल 175°-180°F ताप पर 0.75-1.25 सेमी. जगह खाली रखकर भर दिया जाता है जिससे ढक्कन लगाने में आसानी रहती है ।

वायु निष्क्रमण (Air Exhausting) डिब्बों को सील करने से पूर्व इनके अन्दर की वायु को (गर्म पानी के टब में डिब्बो में रखकर) वायु निकाल देते हैं । डिब्बो में भरे फलो एवं शाकों की किस्म के अनुसार 180°-190°F ताप पर 5-25 मिनट तक रखा जाता है जिससे डिब्बों मे उपस्थित वायु गर्म होकर आयतन बढ़ने के फलस्वरूप बाहर निकल जाती है ।

सील बन्द करना—डिब्बो से वायु निष्क्रमण के बाद केन सीलर मशीन या डबल सीलर मशीन से डिब्बों को सीलबन्द किया जाता है ।

संसाधन (Processing)—डिब्बाबन्द फल एवं शाको मे विद्यमान जीवाणुओ को निष्क्रिय बनाने के लिए सीलबन्द डिब्बों की प्रोसेसिंग की जाती है । इसमे निश्चित ताप एवं समय का विशेष ध्यान रखना पड़ता है जिससे उनका प्राकृतिक स्वाद एवं गंध बनी रहती है ।

इसके लिए विशेष प्रकार के 'मोटो वलेव प्रेशर कुकर' प्रयुक्त करते है जिनमे ताप एवं दाब को नियन्त्रित किया जा सकता है । डिब्बों को इनके अन्दर रखकर प्रोसेस किया जाता है । प्रोसेसिंग मे विशेष ध्यान रखना पड़ता है अन्यथा डिब्बाबंद पदार्थ के खराब होने की आशंका रहती है ।

ठण्डा करना प्रोसेसिंग के बाद गर्म डिब्बों को ठण्डे पानी या खुली हवा मे रखकर ठण्डा किया जा सकता है अन्यथा अन्दर के पदार्थ अधिक पक जाते हैं ।

परीक्षण—डिब्बे के शीर्ष पर लोहे की छड़ से हल्की चोट करने पर यदि गूँजदार आवाज आती है तो सीलिंग ठीक हुई है । खोखली आवाज दोषपूर्ण सीलिंग का सूचक है ।

लेबिल लगाना एवं भण्डारण—डिब्बों में वांछित लेबिल लगाकर साफ एव ठण्डे स्थानों मे भण्डारित किया जाता है ।

मटर की डिब्बाबन्दी—मटर की पूर्ण विकसित, हरी और स्वस्थ फलियो को चुनकर पर्याप्त पानी से धोएँ । मटरो को छील-छीलकर दानों को पानी भरे बर्तन में डालते जाये । तैरने वाले दाने को हटा दे । क्योंकि ये ठीक नही होते हैं । मटर को आकार के अनुसार श्रेणीबद्ध करें ।

मटर को बारीक मलमल के कपड़े में बांधकर उबलते हुए पानी में 2 मिनट रखकर ब्लांचिग करें। मटर को ठण्डे पानी में डुबोयें।

मटर के दानों को साफ, जीवाणु रहित डिब्बो में तीन चौथाई तक भरे। 2 प्रतिशत सान्द्रता वाला नमक का घोल (98 भाग पानी में 2 भाग नमक) गर्म (175°-180°F) करके डिब्बे में 2 सेमी. खाली रखकर भर देते हैं।

मटर भरे डिब्बो को वायु निष्क्रमण हेतु गर्म पानी 20 मिनट तक रखते हैं और उपयुक्त ढक्कन लगाकर बन्द करते हैं।

15 पौण्ड दाब पर बड़े आकार के ओटोक्लेव प्रेशर कुकर में 240°G ताप पर 40 मिनट तक प्रोसेस करने के बाद इनको ठण्डे पानी मे रखकर ठण्डा करते हैं। डिब्बों को सुखाकर लेबिल लगा देते हैं और उपयुक्त नमी रहित ठण्डे स्थानो पर भण्डारित करते हैं।

आम के टुकड़ों की डिब्बाबन्दी—पूर्ण विकसित एव स्वस्थ आमो को चुनकर अच्छी तरह पर्याप्त पानी से धोकर स्टेनलेस स्टील के तेज धार वाले चाकू से छिलते हैं। आम को समान आकार के टुकड़ो मे काटते हैं।

28° ब्रिक्स सान्द्रता वाली चाशनी तैयार कर छान लेते है। जीवाणु रहित साफ डिब्बे को लेकर इसमें आम के टुकड़ो को भर कर तैयार चाशनी मे डाल देते है। डिब्बे का $\frac{1}{8}$ भाग खाली रखते हैं।

आम भरे पात्रो को 20 मिनट तक गर्म पानी मे रखकर इनकी वायु निष्क्रमित की जाकर डबल सीमर मशीन से सील कर देते हैं।

डिब्बों को 212° फे. ताप पर 25 मिनट तक प्रोसेस कर ठण्डे पानी में रखकर ठण्डा किया जाता है। डिब्बो को सुखाने के बाद लेबिल लगाकर ठण्डे नमी रहित साफ स्थानों पर भण्डारित किया जाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. फलों एवं शाकों की डिब्बाबन्दी क्यों आवश्यक है? इसकी विधि को लिखिए?
2. शाकों तथा फलों की डिब्बाबन्दी मे क्या अन्तर है?
3. मटर की डिब्बाबन्दी किस प्रकार करते हैं, लिखिए?
4. डिब्बाबन्दी के विभिन्न चरणों का एक क्रमबद्ध विवरण लिखिए।
5. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए—
   (अ) कॉर्क सीलिंग मशीन
   (ब) 2 प्रतिशत नमक का घोल
   (स) प्रोसेसिंग

अध्याय–29

फल पाक, अवलेह एवं मुरब्बा बनाना
(Jam, Jelly & Morabba Making)

फल पाक, अवलेह एवं मुरब्बा सामान्य परिरक्षित पदार्थ है जो फलो के गूदे, रस तथा शर्करा के साथ पकाकर तैयार किए जाते हैं। शर्करा की मात्रा 65 5% या अधिक होने से इनके खराब होने की समावना कम रहती है।

ये विभिन्न प्रकार के कटे, फटे, गिरे, छोटे आकार के फलों से घर पर बनाए जा सकते हैं। इन सभी की खाद्य महत्ता अधिक होने से शक्ति तथा उर्जा के अच्छे स्रोत हैं। विभिन्न खाद्य तत्वों के अतिरिक्त विटामिन्स तथा खनिज लवणो को प्रदान करते हैं।

इन सभी उत्पादो का संग्रहण सरलता से किया जाता है जिससे दिन प्रति-दिन के भोजन तथा विदेशो में भेजकर विदेशी मुद्रा के अच्छे साधन सिद्ध हुए हैं।

फल पाक (Jam)—फलों के गूदे मे शर्करा तथा साइट्रिक अम्ल को मिलाकर उष्मोपचार से सान्द्रीकृत करके तैयार पदार्थ है।

फल—यह विभिन्न प्रकार के फलों से बनाया जाता है—

(i) पर्याप्त पेक्टिन वाले फल—सेव, अमरूद, पपीता, आम, करौंदा, माल्टा, संतरा आदि।

(ii) मध्यम या कम पेक्टिन वाले फल—अनन्नास, रसभरी, नासपाती, आडू, आलूबुखारा, बेर, स्ट्राबेरी, खुबानी आदि।

फल पाक एक फल या कई फलों को मिलाकर बनाये जा सकते हैं।

फल पाक बनाना—

फलों का चयन एवं सफाई—फल पाक के लिए स्वस्थ, नेदागी फलो को चुनते हैं। कभी-कभी साधारण दबे तथा कटे फलों को भी काम मे ला सकते हैं। फलों को अच्छी तरह धोकर साफ किया जाता है।

फलों का गूदा तथा रस तैयार करना—

फलों से गूदा एवं रस उनकी किस्म के अनुसार प्राप्त किया जाता है। गूदेदार फलों सेव, नासपाती, पपीता आदि के छिलके को स्टेनलेस चाकू की सहायता

से छील देते हैं। फलों के खराब भाग, बीज, गुठली आदि को स्टील की चाकू से अलगकर, गूदे को छोटे छोटे 4-6 से०मी० आकार के टुकड़े काट लेते हैं।

रसदार फल—संतरा, माल्टा आदि से रस प्राप्त करने के लिए इनके छिलके उतार कर अलग कर लेते हैं। फलों से रस प्राप्त करने के लिए रस निकालने की मशीन या अन्य उपकरणों की सहायता ली जाती है।

फलों के गूदे को मुलायम करना—मुलायम गूदे वाले फल—आम, पपीता, आलूबुखारा के गूदे को बिना पकाए लकड़ी की चम्मच से कुचलकर मुलायम कर लेते हैं।

कठोर गूदे वाले फल—सेब, नासपाती, अमरूद, बेर के फलों के गूदे को मुलायम करने के लिए कटे टुकड़ों को उचित मात्रा मे जल मिलाकर (1 किग्रा. गूदा तथा 250 मि०ली० पानी) 20-30 मिनट तक मंद आंच पर पकाया जाता है जिससे गूदा पककर मुलायम हो जाता है।

चीनी मिलाना—चीनी की मात्रा फल की किस्म, खटास तथा पेक्टिन की मात्रा के आधार पर तय की जाती है। सामान्यतया खट्टे फलों में समान मात्रा तथा मीठे फलो मे 3/4 कि.ग्रा. चीनी प्रति किलोग्राम गूदे के अनुसार मिलाई जाती है।

फल पाक को पकाना—गूदे मे चीनी मिलाकर तेज आंच पर पकाते हैं। पकाते समय कड़छी से लगातार हिलाते रहने से गूदा नहीं जलता है। इसका 215° फे० ताप होने पर खटास के आधार पर 2-5 ग्राम साइट्रिक अम्ल मिला देते हैं। 8-10 मिनट बाद ताप 220° फे० ताप होने पर फल पाक तैयार होने लगता है। तैयार होने की परीक्षाकर आंच से उतार लेते है।

फल पाक परीक्षण—

तापमापी द्वारा—गर्म किए जा रहे पदार्थ का तापमान 222.5° फे० ताप होने पर इसे उतार लिया जाता है।

भार द्वारा - समान मात्रा मे चीनी मिलाने पर तैयार पदार्थ का भार चीनी के भार का लगभग 1·5 गुनी हो जाता है।

रिफ्रेक्टोमीटर—इस यन्त्र से फल पाक मे उपस्थित घुले ठोस पदार्थ की प्रतिशत मात्रा ज्ञात की जाती है। पदार्थ को इस यंत्र से देखने पर 68% सान्द्रीकृत शर्करा आने पर फल-पाक तैयार हो जाता है।

प्लेट विधि—एक चम्मच फल पाक को प्लेट में रखकर ठंडा करें। यदि प्लेट को टेढ़ा करने पर पानी न निकले, तो फल पाक तैयार है।

पैकिंग—तैयार पदार्थ को 200° फे० तक ठंडा करने के बाद साफ, सूखी, जीवाणु रहित कांच के पात्र को लकड़ी के तख्ते पर रखकर ऊपर तक भर दिया जाता है। पात्रो पर ढक्कन लगाकर 8-10 घण्टे के लिए रख देते हैं। उत्पाद को

काफी समय तक अच्छी दशा में रखने के लिए पिघले पैराफिन मोम की पर्त फलपाक पर डाल देते हैं जिससे नमी का प्रवेश नहीं हो पाता है। पुनः ढक्कन अच्छी तरह बन्द करके लेबिल लगाकर ठण्डे स्थानों पर संग्रहित किया जाता है।

सेब का फल पाक—सेब का गूदा—1 कि.ग्रा.

चीनी —750 ग्राम

साइट्रिक अम्ल—5 ग्राम

पानी —250 मि.ली.

सतरे का रंग – अल्प मात्रा

अवलेह (Jelly)

फलों से प्राप्त पेक्टिन निचोड़, साइट्रिक अम्ल तथा शर्करा के साथ सान्द्रीकृत किया गया शहद की भांति ठोस पारदर्शी पदार्थ है।

व्यावसायिक पेक्टिन को शर्करा तथा साइट्रिक अम्ल के साथ मिलाकर कृत्रिम अवलेह भी बनाया जा सकता है। इसमें पेक्टिन 0·5–0·6 प्रतिशत, शर्करा 68 प्रतिशत तथा साइट्रिक अम्ल 0·4-0·6 प्रतिशत मात्रा रखते हैं।

फल—ऐसे सभी फल जिनमें पेक्टिन पर्याप्त मात्रा में होती है, अवलेह के लिए अच्छे हैं।

पर्याप्त पेक्टिन वाले फल—अमरूद, सेब, नासपाती, नीबू, अंगूर, संतरा (खट्टी किस्म के)।

मध्यम या कम पेक्टिन वाले फल—लोकाट, अनन्नास, रसभरी, खुबानी, आड़ू आदि।

फलों का चुनाव—अवलेह के लिए ताजे, स्वस्थ, गद्दर फलों को चुनते हैं क्योंकि इनमें पेक्टिन पर्याप्त मात्रा में होती है। मुलायम तथा अधिक पके फल नहीं चुनते हैं फिर भी कुछ पके फल लेने से प्राकृतिक स्वाद एवं सुगंध आ जाती है।

फलों को तैयार करना—फलों पर लगी पत्तियां, डण्ठल आदि तोड़कर पर्याप्त पानी से धोकर अच्छी तरह से साफ करते हैं। फलों के 0·6 से॰मी॰ मोटे गोल टुकड़े छिलके सहित काट लेते हैं। संतरा, नीबू जैसे रसदार फलों के छिलके उतार लेते हैं।

पेक्टिन तैयार करना—फलों की कोशिकाओं से पेक्टिन अलग करने के लिए फलों के टुकड़ों को स्टील के भगोने में रखकर इतना पानी मिलाते हैं कि वे ढँक जावें। धीमी आंच पर एक निश्चित अवधि तक पकायें। तेज आंच पर अधिक समय तक पकाने पर पेक्टिन में कमी आ जाती है।

अमरूद —30-35 मिनट

सेब, मीठा जामुन —20-30 मिनट

अंगूर —5-10 मिनट

फलों को पकाने के बाद जेली बैग या मारकीन के कपड़े में फलों को रखकर बिना दबाए निचोड़ प्राप्त करते हैं। पेक्टिन निचोड़ का परीक्षण आंच से उतारने के पूर्व कर लेते है।

पेक्टिन परीक्षण—

स्प्रिट या अल्कोहल परीक्षण—किसी बीकर या टेस्ट ट्यूब में फलों से प्राप्त रस की एक चम्मच लेकर ठण्डा करते हैं। मिथाइलेटेड स्प्रिट या अल्कोहल दो चम्मच दीवाल के सहारे डालते हैं। एक मिनट तक ठण्डा होने के लिए रखने पर यह दही की भांति जम जाता है। इस जमे पदार्थ को प्लेट में गिराने पर यदि पदार्थ एक थक्के मे गिरे तो यह 'अ' श्रेणी पेक्टिन, दो टुकड़ो मे गिरे तो 'ब' श्रेणी पेक्टिन तथा तीन या अधिक मे गिरे तो 'स' श्रेणी की पेक्टिन है।

जेलीमीटर परीक्षण—यह कांच की बनी एक विशेष नली होती है जिसके दोनो मुँह खुले होते हैं। इसका आधा भाग चौड़ा जिस पर $\frac{1}{4}$, $\frac{3}{4}$, 1, $1\frac{1}{4}$ के चिन्ह बने होते है। शेष नीचे का भाग संकरा होता है।

परीक्षण के लिए जेली मीटर को बाये हाथ के अंगूठे व छोटी अंगुली से मुँह बन्द करते हुए पकड़ते है। इसमे फलो के 70-100° फे० तक गर्म रस को भरते हैं फिर एक मिनट तक अंगुली हटाने पर रस जेलीमीटर मे जिस निशान पर रुकता है, उतनी ही पेक्टिन की मात्रा मानते हैं। यदि स्तर एक पर है तो समान मात्रा मे चीनी तथा $\frac{3}{4}$ आने पर रस की कुल मात्रा के $\frac{3}{4}$ भाग चीनी मिलाई जाती है।

चीनी मिलाना—पेक्टिन निचोड़ को 2-3 घण्टे तक रखने पर इसके निचोड़ के ऊपर साफ तरल पदार्थ आ जाता है। इसको साइफन विधि से अलग करके माप लेते हैं। वांछित मात्रा में चीनी मिलाकर गर्म करके चीनी के घोल को छान लेते हैं। छने घोल को तेज आंच पर गर्म करते हैं। 215° फे० तापमान होने पर साइट्रिक अम्ल मिलाते हैं। इस तापमान पर तीनों पदार्थ मिल जाते है और तेज उबाल आते है। इसे चम्मच से नही चलाते हैं अन्यथा जाल (Net work) टूटने से अवलेह का जिलेटिनीकरण नही होता है। 200° फे० ताप पहुँचने पर पकाना बन्द कर अन्तिम परीक्षण करते है।

अवलेह परीक्षण

बूंद परीक्षण—पकाए पदार्थ में से एक चम्मच लेकर इसे कुछ समय तक ठण्डा करके बीकर से पानी में कुछ बूंदें डालते हैं। बूंदो के पानी मे बिना घुले जमना, अवलेह तैयार स्थिति है।

2. चम्मच परीक्षण (Spoon Test)—गर्म किए अवलेह में से एक चम्मच पदार्थ लेकर हवा में ठण्डे होने पर लटकाने पर यदि यह एक पर्त के रूप मे तिकोनी चादर बनकर लटकी रहे, तो अवलेह की तैयारी की अन्तिम स्थिति आ गई है।

3. पर्त परीक्षण (Sheet Test)—गर्म किए जा रहे पदार्थ को एक प्लेट में डालकर ठण्डा करते हैं तो यह सम पर्त में जम जाता है, अवलेह तैयारी की स्थिति है।

4. जेली तापमापी— पकाए जा रहे पदार्थ का तापमान 221° फे० होना अवलेह के तैयारी की स्थिति है।

5. रिफ्रैक्टोमीटर परीक्षण—इस यंत्र से तैयार पदार्थ में चीनी की प्रतिशत मात्रा जानते हैं। चीनी का प्रतिशत 65 तक पहुँचना, जैली की तैयारी स्थिति होती है।

अवलेह के तैयार होने के अन्तिम बिन्दु उसमें उठ रहे बुलबुलो पर निर्भर करता है। पात्र में भूरे रंग के बुलबुले किनारो से अंदर आरहे हो तो यह स्थिति तैयारी की है। अन्तिम बिन्दु के आने पर आंच से उतार चीनी के मैल को कड़छी से उतार लेते हैं।

भरना – अवलेह को गर्म दशा में चौड़े मुंह वाले साफ, जीवाणुरहित कांच के पात्रों में भरकर ठण्डे स्थान पर रातभर के लिए रखने पर अवलेह जम जाता है। शीशी पर लेबिल लगाकर संग्रहित करते हैं।

अच्छे अवलेह का परीक्षण—

1. यह चमकदार पारदर्शक या अल्प पारदर्शक होता है।
2. दबाने पर स्पंज की भांति होता है।
3. अवलेह का स्वाद फल की भांति होता है।
4. अच्छे अवलेह को चाकू से काटने पर कटे रूप में ही कटता है और सतह को दबाने पर फैल जाता है।
5. अवलेह के जमने पर इसे पात्र से बाहर गिराने पर दीवाल के बिना चिपके सारी जमी एक साथ बाहर आता है।

अवलेह बनाते समय की कठिनाइयां—

अवलेह का न जमना—पेक्टिन निचोड़ में पेक्टिन की मात्रा कम होने पर चीनी मिलाते हैं तो यह जमती नहीं है। कम समय तक पकाने पर भी नहीं जमती है।

अवलेह का अपारदर्शी होना - पेक्टिन निचोड़ प्राप्ति के समय कपड़े को दबाने या निचोड़ने पर-रस मे गूदा आ जाता है जिससे अवलेह धुंधला हो जाता है। पेक्टिन की अधिकता तथा कम मात्रा मे चीनी मिलाने यह-जमने पर बेंत की भांति हो जाती है।

रिसती अवलेह (Weeping Jelly)—पेक्टिन निचोड़ में साइट्रिक अम्ल की मात्रा अधिक होने पर अवलेह शहद की भांति हो जाता है। कभी-कभी निचोड़ मे पेक्टिन कम तथा चीनी अधिक मिलाने से यह स्थिति हो जाती है।

फल पाक तथा अवलेह में अन्तर

फल पाक	अवलेह
1. यह एक या एक से अधिक फलों से बनाया जा सकता है।	1. यह एक ही किस्म के फलों से बनाया जाता है।
2. यह फलों के गूदे तथा रस दोनों से बनता है।	2 यह फलों की कोशिकाओं से प्राप्त पेक्टिन निचोड़ से तैयार किया जाता है।
3. यह साधारण कटे, दबे, खराब फलों से इन भागों को निकालने के बाद शेष भाग से बनाया जा सकता है।	3. अवलेह बनाने से अच्छे स्वाद, गदर फलों को काम में लाते हैं।
4. यह अपारदर्शक गाढ़ा पदार्थ है।	4. यह अल्प पारदर्शक गाढ़ा पदार्थ होता है।
5. अवलेह में रंग व सुगंध नहीं मिलाते हैं।	5. फल की प्रकृति के अनुसार रंग व सुगंध मिला सकते हैं।
6. यह रबर की भांति लचीला नहीं होता है।	6. यह रबर की भांति लचीला, 'स्पजी' होता है।

मुरब्बा (Morabb)—

मुरब्बा रेशे रहित, पूर्ण विकसित फलों से या उनके बड़े-बड़े टुकड़ों को चीनी के साथ मिलाने से बनता है जिससे फल मुलायम हो जाते हैं। इस प्रक्रिया में शर्करा की मात्रा फल पदार्थ से अधिक लेते हैं। चीनी को उस समय तक गाढा करते रहते हैं, जब तक तैयार पदार्थ में चीनी की मात्रा 68 प्रतिशत तक नहीं हो जाती है।

सिद्धान्त—मुरब्बा, बनाने में फलों को स्थाई रूप से कम से कम 68 प्रतिशत शर्करा में परिरक्षित किया जाता है क्योंकि सूक्ष्म जीव शर्करा की इस सान्द्रता में क्रियाशील नही हो पाते हैं।

फल—आँवला, आम, सेब, गाजर, बेल, पेठा आदि।

फलों का चुनाव—मुरब्बा के लिए स्वस्थ, ताजे, अधपके या हरे पूर्ण विकसित फलो, शाकों को चुनते हैं इनको पर्याप्त पानी से धोकर सुखा लेते हैं। फलो के छिलकों को स्टेनलेस स्टील के चाकू से छीलकर उचित आकार के टुकड़ो में काट

लेते हैं। फलों में चीनी के घोल के अच्छी तरह प्रवेश के लिए स्टील के कांटों से गुदाई की जाती है।

फलों को उपचारित करना—सख्त गूदे वाले फलों को उबलते पानी में कुछ समय तक रखते हैं जिससे गूदे के मुलायम होने से चासनी अच्छी तरह सोखी जाती है तथा फल पकाने पर सिकुड़ते नहीं हैं।

कसैले स्वाद वाले फल—आँवले को पानी, फिटकरी के घोल में रखने से 'टैनिन' दूर हो जाती है फिर इनको कांटों से गुठली तक गोद कर पानी से धो लेते हैं। इन फलों को 5-6 मिनट गर्म उबलते पानी में रखकर ब्लांचिंग करते हैं जिससे फल मुलायम हो जाते हैं।

पकाना—फलों की किस्म के अनुसार समान या डेढ़ गुनी चीनी लेते हैं। चीनी में उचित मात्रा 2-3 ग्राम साइट्रिक अम्ल डालकर निश्चित अनुपात में पानी मिलाकर हल्की चाशनी बनाकर छान लेते हैं फिर इसी चाशनी में फलों के टुकड़ों को मन्द आंच पर फलों के मुलायम होने तक पकाते हैं जब तक चाशनी गाढ़ी हो जाती है।

भरना—तैयार मुरब्बे को साफ जीवाणु रहित चीनी मिट्टी या कांच के पात्रों में भरकर परिरक्षित करते हैं।

आँवले का मुरब्बा

सामग्री—आँवला—1 कि.ग्रा., चीनी—1-5 कि.ग्रा., साइट्रिक अम्ल—3 ग्राम।

विधि—बड़े आकार के पूर्ण, विकसित, रेशे रहित स्वस्थ फलों को लेते हैं जिनसे उत्तम गुणों का मुरब्बा बनता है।

फलों को पर्याप्त पानी से धोकर साफ कर लेते हैं और साफ पानी में 4 दिनों तक रखने पर इनका कसैलापन, 'जो टैनिन के कारण होता है, दूर हो जाता है। पानी को प्रतिदिन बदलते रहते हैं। पांचवें एवं छठे दिन फलों को 2 प्रतिशत फिटकरी के घोल में रखने पर शेष कसैलापन भी दूर हो जाता है। फलों को अच्छी तरह धोकर स्टील के कांटों से गुठली तक गोदते हैं तथा फलों को फिर साफ पानी से धो लेते हैं।

गर्म उबलते पानी में फलों को 5 6 मिनट तक रखकर ब्लीचिंग करते हैं जिससे फल मुलायम हो जाता है। फलों को निकालकर तुरन्त ठण्डे पानी से धोते हैं।

भगोने में चीनी की पर्त फिर फल, फिर चीनी तथा फल इसी प्रकार तह लगाते हुए रात भर के लिए रखते हैं जिससे फल से पानी बाहर आकर चीनी को घुला देता है, यह क्रिया रसाकर्षण (Osmosis) के द्वारा होती है।

फलों को निकालकर चीनी के घोल में साइट्रिक अम्ल मिलाकर चाशनी बनाते हैं। चाशनी को मलमल के कपड़े से छानकर फलो पर डाल देते हैं। तीन से 4 दिन तक फलो को निकालकर चाशनी को उबालने व उसे फलों पर डालने की क्रिया करते रहते हैं। इससे चीनी फलों के अन्दर रसाकर्षण पहुंचकर पानी बाहर लाकर चाशनी को पतला करता है। तैयार मुरब्बे की चाशनी में चीनी की मात्रा 68 प्रतिशत होने पर इसे साफ जीवाणुरहित पात्रों में भण्डारित किया जाता है। चीनी की प्रतिशत रेफ्रेक्टो मीटर से मालूम करते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. फल पाक, अवलेह तथा मुरब्बा किन-किन फलों से बनाया जाता है, लिखिए।
2. आदर्श जैली की क्या विशेषताएं हैं ? अमरूद की जैली बनाने की विधि लिखिये।
3. फल पाक तथा अवलेह बनाने के 'अन्तिम बिन्दु' परीक्षण किस प्रकार करते है ? लिखिये।
4. 5 कि.ग्रा. सेब से फल-पाक बनाने की विधि बताइये ?
5. 4 कि ग्रा आंवले का मुरब्बा बनाने की विधि को बताइये ?
6. निम्न पर टिप्पणी लिखिए—
   (अ) पेक्टिन परीक्षण
   (ब) अवलेह की विशेषतायें
   (स) पर्त-परीक्षण
   (द) फिटकरी, साइट्रिक अम्ल का कार्य

फल पानक एवं शर्बत

(Squash & Sharbat)

फल एवं शाकों के पेय उत्पाद प्राचीन परिरक्षित उत्पादों में से एक हैं जिनको घरों तथा कक्षाओं में आसानी से कम समय में बना सकते है ।

ये पेय पदार्थ ग्रीष्मकाल मे लोकप्रिय पेय हैं जो शक्तिवर्द्धक एवं पौष्टिक होते हैं । ये शरीर में ताजगी एवं शीतलता प्रदान करते हैं । इनको आसानी से किसी भी समय उपयोग में लाया जा सकता है ।

फल पेय विविध प्रकार के होते हैं जिनकी संरचना एवं निर्माण विधि अलग-अलग होती हैं । इन उत्पादों को दो वर्गों में बाँटा जाता है—

(अ) किण्वीकृत (Fermented Drinks) – जो पेय उत्पाद फलो एवं शाको के किण्वीकरण से तैयार किए जाते हैं । जैसे—कॉजी, ताड़ी, साइडर, विभिन्न-मदिरा आदि ।

(ब) अकिण्वीकृत (Non fermented Drinks) – ये उत्पाद बिना किण्वीकरण के बनाए जाते हैं । जैसे फल रस, नेक्टर, पानक, मधु पेय, शर्बत, फल शर्बत, सांद्र फल रस आदि ।

परिरक्षण का सिद्धान्त—फल मधु पेय, पानक, शर्बत, शर्करा तथा रासायनिक पदार्थों के द्वारा परिरक्षित किए जाते हैं ।

फल-पानक (Squash)—यह एक ऐसा उत्पाद है, फलों का रस जो विभिन्न अनुपातों मे शर्करा के साथ परिरक्षण से बनता है जिसमे रासायनिक परिरक्षित पदार्थ निश्चित अनुपात में मिलाया जाता है ताकि उत्पाद अधिक समय तक परिरक्षित रह सके ।

फल—विभिन्न रसदार फल—संतरा, माल्टा, नीबू, नारंगी, फालसा, जामुन, आम, अानन्नास आदि ।

फलों का चुनाव—इसके लिए स्वस्थ एव पूर्ण पके फलों को लेते हैं । ऐसे फल जिनमें गलने, सड़ने या खमीरीकरण की क्रिया होने लगी हो, उनको अलग कर दें ।

रस प्राप्त करना—विभिन्न फलों से रस प्राप्त करने की अलग विधि है। माल्टा, नीबू, मौसमी को दो टुकड़ों में काट लेते हैं तथा रस निचोड़क से रस अलग करते हैं। संतरे के छिल्के को छीलकर फांकों से बीजों को निकालकर रस निकालने की मशीन से रस निकालते हैं। आम का रस हाथ से निचोड़कर अलग करते हैं।

फलों के रस को बारीक कपड़े या छलनी से छानकर इसकी मात्रा ज्ञात करते हैं।

चीनी का शर्बत बनाना—फलों से प्राप्त रस की मात्रा के समान शर्करा लेते हैं। चीनी की आधी मात्रा में पानी लेकर इसे मंद आंच पर गर्म करते हैं तथा चीनी साफ करने के लिए 4 ग्राम साइट्रिक अम्ल मिलाकर उबाल आने पर छानकर ठण्डा करते हैं।

शर्बत तथा फलों के रस मिलाना—चीनी के शर्बत (Syrup) के ठण्डा होने पर फल के रस को धीरे-धीरे मिलाते हैं।

रंग तथा परिरक्षित पदार्थ मिलाना—फल के प्राकृतिक रंग के अनुसार उचित मात्रा में मीठा रंग रस की थोड़ी मात्रा में घोलकर पूरे पानक में मिला देते हैं।

पानक को तुरन्त या कुछ समय में ही उपयोग में लाना है तो परिरक्षित पदार्थ मिलाना आवश्यक नहीं है। अधिक समय तक परिरक्षित करने के लिए सोडियम बेंजोइट या पुटेशियम मेटाबाइ सल्फाइट 715 मि. ग्रा. प्रति किलोग्राम के हिसाब से मिलाते हैं। इसे थोड़े पानक की मात्रा में घोलकर पूरे पानक में मिला देते हैं।

भण्डारण—साफ बोतलों को 21..° फे के गर्म पानी में 30 मिनट तक रखकर जीवाणु रहित कर लेते हैं। बोतलों को सुखाकर पानक को भर कर मशीन से कार्क लगा दिया जाता है। कार्क या ढक्कन पर पिघला मोम लगाने से वायु प्रवेश नहीं करती है।

बोतलों पर लेबिल लगाकर नमी रहित ठण्डे स्थानों पर रखते हैं।

शर्बत (Sharbat)—शर्करा का ऐसा सान्द्र घोल जो कृत्रिम रंग एवं सुगंध से बनाया जाता है। यह शर्करा से परिरक्षित किया जाता है।

शर्बत के प्रकार—(1) फलों के रस युक्त शर्बत (Fruit Syrap)

(2) खुशबूदार शर्बत (Synthetic Syrup or Sharbat)

1. फलों के रस युक्त शर्बत—इसमें चीनी प्रतिशत मात्रा अधिक, रस की 25 प्रतिशत मात्रा कम होती है। चीनी की प्रतिशत मात्रा 65% से अधिक होने पर रासायनिक परिरक्षित पदार्थ को नहीं मिलाते हैं। फालसा, अंगूर, लेमन, नारंगी आदि से बनाते हैं।

आवश्यक सामग्री—फलों का रस—1 कि. ग्रा., शक्कर—2 कि.ग्रा., पानी—300 मिली., साइट्रिक अम्ल—8 ग्राम, रंग, सोडियम बेंजोएट—आवश्यकतानुसार।

बनाने की विधि—अच्छे स्वस्थ फलों को लेकर पानी से धोकर साफ कर लेते हैं। फलों से उचित यन्त्र की सहायता से रस प्राप्त कर छानकर माप लिया जाता है। रस के अनुसार चीनी की मात्रा लेकर पानी के साथ उबालते हैं तथा अम्ल मिला देते हैं। चीनी के शर्बत को छानकर ठण्डा कर फलों के रस को मिलाकर 105-107° से. ग्रे. तापमान पर उबालकर ठण्डा कर लेते हैं। आवश्यकतानुसार रंग तथा परिरक्षित पदार्थ मिलाकर बोतलों में भर सीलबन्द करके शुष्क तथा ठण्डे स्थानों पर रखते हैं।

2. खुशबूदार शर्बत—यह कृत्रिम पेय पदार्थ है। मुख्य रूप से खस, केवड़ा, गुलाब, चन्दन, संतरा, लेमन आदि के बनाए जाते हैं।

आवश्यक सामग्री—शक्कर—1 कि.ग्रा., पानी 500 मिली., साइट्रिक अम्ल—5-8 ग्राम, (संतरा, माल्टा, मौसमी में) रंग खुशबू—आवश्यकतानुसार।

बनाने की विधि—शक्कर, पानी, साइट्रिक अम्ल मिलाकर गर्म करके मैल अलग कर देते हैं। इसे छानकर ठण्डा करते हैं। रंग व खुशबू कम से थोड़े शर्बत में घोलकर पूरे में मिला दिया जाता है।

साफ जीवाणुरहित बोतलों में भरकर, लेबिल लगाकर ठण्डे एवं शुष्क स्थानों में संग्रहित करते हैं।

पानक एवं शर्बत में अन्तर

पानक	शर्बत
1. फलों में रस की मात्रा, 25% तक अवश्य ही रखी जाती है।	1. इसमें फलों का रस प्रयुक्त नहीं करते हैं।
2. पानक में खुशबू नहीं मिलाते हैं।	2. इसमें खुशबू पर्याप्त मात्रा में मिलाई जाती हैं।
3. रासायनिक परिरक्षित पदार्थ मिलाते हैं।	3. इसमें रासायनिक परिरक्षित पदार्थ नहीं मिलाते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. फल एवं शाकों के पेय उत्पादों को लिखिए ?
2. संतरे के पानक बनाने की विधि का वर्णन कीजिए ?
3. आम का शर्बत किस प्रकार बनाते हैं ? लिखिए ।
4. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए —
   (अ) पानक एवं शर्बत में अन्तर
   (ब) फल उत्पादों का भण्डारण
   (स) चीनी का सीरप बनाना ।

चटनी एवं सॉस बनाना
(Chutney & Sauce Making)

चटनी—यह एक प्रचलित परिरक्षित पदार्थ है जिसका प्रयोग देश के सभी घरों में भोजन के साथ किया जाता है। यह विभिन्न फलों एवं शाकों से बनाई जाती है जो स्वादिष्ट एवं जायकेदार होती है। घरों पर खट्टे फलों, शाकों को नमक, मिर्च, धनियां के साथ कूट-पीसकर बनाते हैं जो कम समय तक काम आ सकती है परन्तु परिरक्षण के लिए पकी चटनी बनाना अच्छा रहता है।

'चटनी एक मसालेदार, गंधयुक्त, पका हुआ परिरक्षित पदार्थ है जो विभिन्न प्रकार के फलों एवं शाकों की फांकों एवं लच्छों द्वारा अकेले या सामूहिक रूप से तैयार की जाती है।'

प्रकार—यह दो प्रकार की होती है—(1) मीठी चटनी (2) खट्टी चटनी।

फल—आम, सेब, आंवला, इमली, कमरख, खुबानी, करोंदा, आड़ू, छुआरा।

शाक—टमाटर, मिर्च, प्याज, अदरक।

आम की चटनी बनाना

आवश्यक सामग्री—

आम की फांके/लच्छा	—1 कि.ग्रा.
चीनी	—1 कि.ग्रा.
नमक	—25 ग्राम
अदरक (कटा हुआ)	—15 ग्राम
प्याज/लहसुन	—40 ग्राम (आवश्यकतानुसार)
मसाला	—30 ग्राम
लाल मिर्च	—15 ग्राम
सौंठ	—5 ग्राम
किशमिश, छुहारे	—150 ग्राम
सिरका	—150 मि. ली.

बनाने की विधि—पपपके आमों को अच्छी तरह धोकर साफ करने के बाद छिलके को छीलकर वांछित आकार की फांके व लच्छे बना लेते हैं। भगोने में फाकों के साथ थोड़ा पानी डालकर मन्द आंच पर उबालने से ये मुलायम हो जाते हैं। इसके बाद चीनी डालकर पकाते हैं। प्याज, लहसुन इच्छानुसार डालते हैं। इसे व मसाला तथा नमक को डालकर उबालते हैं। उत्पाद को उतार कर किशमिश, छुहारे की फाकें तथा सिरका डालकर पुनः इसे 5 मिनट तक और उबालते हैं।

उत्पाद को मामूली ठण्डा करके साफ; जीवाणु रहित चौड़े मुँह वाली कांच की बोतलों में भरकर वायुरोधी सील लगाकर भण्डारित किया जाता है।

टमाटर की चटनी

सामग्री—टमाटर की फाकें —1 कि. ग्रा.
शर्करा —1 कि. ग्रा.
प्याज/लहसुन —110 ग्राम
अदरक —75 ग्राम
लाल मिर्च —20 ग्राम
मसाला —30 ग्राम
नमक —50 ग्राम
सिरका —500 मि. ली.

बनाने की विधि—पूर्ण पके विकसित अच्छे फलों को धोकर साफ करके फाँकों में काट लेते हैं तथा कठोर भाग, बीजों को भी अलग कर लेते हैं। भगोने में टमाटर की फाँकों को डालकर थोड़े पानी के साथ गर्म करते हैं। प्याज, लहसुन, मसाला तथा शर्करा आदि को डालकर इसे गाढ़े होने तक उबालते हैं। इस स्थिति के आने तक पदार्थ को चम्मच से चलाते रहना आवश्यक है।

भगोने को उतारकर सिरके को डालकर पुनः चटनी के गाढ़े होने तक पकाते रहते हैं। उत्पाद को नीचे उतार कर थोड़ा ठण्डा करते हैं। साफ निजर्मीकृत बोतलों में भरकर वायुरोधी सील करके ठण्डे व शुष्क स्थान में भण्डारित करते हैं।

सॉस (Sauce)—

यह एक अर्द्ध ठोस द्रव है जो फल या सब्जी के गूदे या रस को मसाले, नमक, शर्करा, सिरका, गाढ़ा करने वाले पदार्थ, खाद्य रंग एवं रासायनिक परिरक्षक सहित गाढ़ा करके बनाया जाता है। इसमें ठोस की मात्रा 16 प्रतिशत तक हो।

सॉस के प्रकार

(अ) पतला सॉस—इसमे सिरका, फल, शाकों का रस /गूदा, मसालों का निचोड़ तथा कुल ठोस पदार्थ 16-20 प्रतिशत होता है।

(ब) गाढ़ा सॉस— इसमें कुल ठोस पदार्थ की मात्रा 20-28 प्रतिशत तथा मसालों के निचोड़ की मात्रा भी अधिक होती है।

सॉस बनाने के लिए उपयुक्त सामग्री

शाक—सोयाबीन, हरीमिर्च, पेठा, काशीफल, गाजर, सेब, खुम्मी, टमाटर प्रायः टमाटर का सॉस अधिक प्रचलित है जिसको घरों, जलपान गृहों तथा होटलों में उपयोग किया जाता है। भोजन के स्वाद तथा पोषण वृद्धि के कारण इसे अधिकता से प्रयोग किया जाने लगा है।

टमाटर का सॉस बनाना—

सामग्री—टमाटर	—1 कि. ग्रा.
चीनी	—70-80 ग्राम
नमक	—10-12 ग्राम
प्याज (कटा)	—50 ग्राम
लहसुन	—15 ग्राम
लाल मिर्च पाउडर	—10 ग्राम
गर्म मसाला	—10-15 ग्राम
सिरका	—5 मि. ली.
सोडियम बेंजोएट	—750 मि. ग्रा.

बनाने की विधि—स्वस्थ, गहरे लाल रंग के पके टमाटरों के डंठलों आदि को तोड़ने के बाद साफ पानी से धोकर साफ करते हैं। टमाटरों को उबलते पानी में 2-5 मिनट तक रखकर ठण्डे पानी में डाल देते हैं, इसे ब्लांचिंग कहते हैं।

पीलिंग चाकू की सहायता से टमाटर के छिलके को अलग कर गूदे को लकड़ी के चम्मच से कुचलकर पल्पिंग मशीन से छान लेते हैं। इस रस की मात्रा ज्ञात कर लेते हैं।

सॉस पकाना—रस की मात्रा के अनुसार अन्य सामग्री तौल लेते हैं। रस को भगोने में पकाते हैं। पकाते समय अदरक, प्याज, लहसुन तथा मसालों को कपड़े की पोटली में बांधकर रस में लटका देते हैं। रस के गाढ़े होकर आधा रह जाय तो मसाले की पोटली निचोड़कर निकाल देते हैं। सिरका, नमक तथा परिरक्षक पदार्थ मिलाकर थोड़ा और 5 मिनट तक गरम करते हैं।

सॉस के परीक्षण के लिए—इसको चम्मच में लेकर प्लेट पर डालने पर यदि सॉस के चारों ओर पानी उभरता है, तो और थोड़ा गर्म करते हैं। तैयार सॉस को उतार कर थोड़ा ठंडा (87·7° से. ग्रे.) होने पर गर्म-गर्म ही साफ जीवाणु रहित बोतलों में ऊपर तक भरकर सीलबन्द करते हैं।

सीलबन्द बोतलों को 15-20 मिनट तक उबलते पानी में रखकर पास्तुरीकरण करते हैं। बोतलों के ठण्डा होने पर लेबल चिपकाकर गत्ते के डिब्बों में रखकर ठण्डे एवं शुष्क स्थानों पर भण्डारित करते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सॉस एवं चटनी में क्या अन्तर है ? लिखिये।
2. टमाटर की सॉस बनाने की विधि का वर्णन कीजिए।
3. आम की मीठी चटनी निर्माण की विधि को लिखिए ?
4. चटनी बनाने में प्रयोग किए जाने वाले अवयव कौन-कौन से हैं, लिखिए।

अचार

(Pickles)

भारतीय स्थितियों में विभिन्न प्रकारों का अचार का उपयोग प्राचीनकाल से किया जाता रहा है। इनको घरेलू उपयोग के अतिरिक्त व्यावसायिक स्तर पर भी तैयार करते हैं।

साधारण तौर से कच्चे आम, नींबू, कटहल, लसोढ़ा, कैर, करौंदा, मिर्च, अदरक, शलजम, गोभी आदि फलों एवं शाकों के अचार बनाते हैं जो स्वादिष्ट व पाचक होने के साथ सुधावर्द्धक भी होते हैं।

अचार—नमक एवं सिरका के साथ फल और सब्जियों के परिरक्षित पदार्थ को आचार कहते हैं। इसमें प्रायः कई प्रकार के मसालों व तेल का भी प्रयोग किया जाता है।

अचार के प्रकार—यह तीन प्रकार के होते हैं—

1. नमक से तैयार किए अचार
2. सिरके से तैयार किए अचार
3. तेल से तैयार किए अचार

अचार के नमक, सिरका व तेल मुख्य अवयव हैं। इनकी पर्याप्त मात्रा अलग-अलग या सभी को एक साथ प्रयोग किया जाता है।

साधारण नमक के 15-20 प्रतिशत घोल अचार को खराब होने से बचाते हैं क्योंकि इस सान्द्रता पर खमीर व लैक्टिक अम्ल वाले जीवाणु निष्क्रिय हो जाते हैं।

सिरके में एसिटिक अम्ल 2-10 प्रतिशत वाला प्रयोग किया जाता है जो फलों-शाकों के रस के बाहर आने पर इसका अपेक्षित स्तर आ जाता है।

प्रायः सरसों, तिल, मूंगफली आदि के तेलों को अचार बनाने में उपयोग करते हैं जो अचार को बाहरी जीवाणु व फफूंद से बचाते हैं।

विभिन्न मसालों जैसे—लाल मिर्च, काली मिर्च, काला नमक, सैंधा नमक, अजवाइन, मेथी, जीरा, कलौंजी, सौंफ, धनियां, हींग, हल्दी, प्याज, लहसुन, सौंठ आदि का अचार बनाने में प्रयोग करते हैं।

अचार के फल व शाक—

फल—कच्चा आम, नीबू, कटहल, आंवला, केर, करौंदा, लसौड़ा, कमरख आदि।

शाक—करेला, मूली, गाजर, शलजम, मटर, हरी व लाल मिर्च, फूलगोभी, सेम।

अचार बनाने की विधि—

फलों व शाकों का चुनाव तथा सफाई—अचार के लिए हरे, अधपके गदरार, स्वस्थ व पूर्ण विकसित फलों व शाकों का चुनाव करते हैं। चुने फलों-शाकों को पर्याप्त साफ पानी या 1% पुटेशियम परमैंगनेट के घोल से धोकर सुखा लेते हैं।

फल-शाकों को तैयार करना—अचार के लिए बड़े आकार की शाकों को काटकर उचित आकार के टुकड़े काट लेते हैं तथा इनको थोड़ासा उबालकर छाया में सुखा लेते हैं।

फलों के छिलकों को छीलकर या छिलके सहित चाकू से चार या आवश्यक आकार के टुकड़ों में काट लेते हैं। कटहल, आंवला, लसौड़ा, सैंजना को थोड़ासा उबाल कर छाया में सुखाकर नमी रहित कर लेते हैं।

छिलके वाले फलों में नमक, हल्दी मिलाकर कुछ समय के लिए धूप में 3-5 दिन तक रखने पर उनका छिलका पीले रंग का मुलायम हो जाते हैं। मसाले के चूर्ण, लाल मिर्च आदि मिलाकर सिरका व तेल मिलाकर चीनी मिट्टी, शीशे, प्लास्टिक के जार में भरकर तैयार होने के लिए रख देते हैं।

नीबू का मसालेदार अचार

सामग्री—नीबू—1 किग्रा, नमक—150 ग्राम, काला नमक—100 ग्राम, जीरा व काली मिर्च—20 ग्राम, हल्दी—25 ग्राम, मसाला 20 ग्राम।

विधि—पूर्णतया स्वस्थ-पके नीबू के फलों को गीले कपड़े से साफ करके 4-4 टुकड़ों में काटते हैं। हल्दी व नमक इन टुकड़ों पर बुरक कर 2-4 दिन के लिए रखते हैं। इन टुकड़ों को बीच-बीच में हिलाते रहते हैं। दिन में नीबूओं को धूप में तथा रात में ठण्डे स्थान पर रखते हैं। नीबूओं के छिलके मुलायम होने पर मसालों को मिला देते हैं यदा-कदा 2-3 दिन में बर्तन को हिलाते रहने से अचार शीघ्र ही खाने योग्य बन जाता है। अचार के पात्र पर ढक्कन लगाकर ठण्डे शुष्क स्थानों में भण्डारित करते हैं।

नीबू का मीठा मसालेदार अचार

आवश्यक सामग्री—नीबू—1 किग्रा, शक्कर—200 ग्राम, नमक—150 ग्राम, जीरा व काली मिर्च—20 ग्राम, मसाला—20 ग्राम।

विधि—पूरी तरह पके स्वस्थ नीबू के फलों को साफ करते हैं। फलों को लम्बाई में चार भागों में इस प्रकार काटते हैं कि वे एक सिरे से जुड़े हों। नीबुओं

को दबाकर कुछ मात्रा में रस निकालकर इसके बीज निकाल दें। सभी मसालों को मिलाकर कटे फलों मे भरकर बर्तन में रखते हैं। रस को फलों के ऊपर डाल देते हैं फिर बर्तन को 15 दिन धूप मे रखते हैं। बर्तन को प्रतिदिन 3-4 बार हिलाते रहते हैं। शक्कर मिलाकर पुनः 3-4 दिन तक धूप में रखते हुए हिलाते रहते हैं। अचार के पात्र पर लेबिल लगाकर ठण्डे शुष्क स्थानो मे भण्डारित करते हैं।

आम का अचार -

आवश्यक सामग्री—आम की फाकें—1 किग्रा., नमक—100 ग्राम, हल्दी—25 ग्राम, लाल मिर्च (पिसी)—25 ग्राम, हींग—1 ग्राम, राई—10 ग्राम, धनिया—50 ग्राम सौंफ—25 ग्राम, कलौंजी—10 ग्राम, मेंथी—10 ग्राम, जीरा—10 ग्राम, सरसो का तेल 300 मि. ली.।

बनाने की विधि—पूर्ण विकसित, मोटे छिलके और अधिक खटास के आम लेते हैं। आम जरा भी पके न हों क्योंकि मिठास से अचार का स्वाद व गंध खराब हो जाती है। फलो के तोड़ने के तुरन्त बाद अचार बनाते हैं, देरी से बनाने पर टुकड़ो को नमक मिलाकर रख देते हैं।

आम को गीले कपड़े से साफ कर तेज चाकू या सरोते से काटकर गुठली निकाल देते है। आम के टुकडो में हल्दी नमक मिलाकर लकड़ी, चीनी मिट्टी अथवा प्लास्टिक के बर्तन मे रखकर 4-5 दिनों तक धूप मे रख देते हैं। छिलके के हरेपन कम होकर पीला पड़ने लगे तो मोटे-पिसे मसाले उचित मात्रा में मिला देते हैं। मसाले के साथ थोड़ा सरसो का तेल प्रयोग करते हैं। बर्तन में रखकर ऊपर तक पर्याप्त मात्रा में तेल भर देते हैं जिससे आम पूरे ढक जायें। एक दो सप्ताह में देखभाल के बाद अचार खाने योग्य हो जाता है।

गर्म विधि - अचार बनाने के समय मे 2-3 दिन की कमी कर सकते है। आम की फाकों को हल्दी, नमक, पिसी मिर्च तथा थोड़े पानी में घुली हींग में मिलाकर 2-3 घण्टे तक रख देते हैं। तेल की आधी मात्रा लेकर आम को डालकर कढ़ाही मे गरम करते हैं तथा आम को बराबर चम्मच से चलाते रहे जिससे तली मे लगकर न लगे। गर्म आम की फांकों को जार में रखकर मसाले मिला देते है। तेल काफी गर्म करके जार में अचार के ऊपर डाल देते हैं जो पूरी तरह ढक जावें। ढक्कन लगाकर अचार के बर्तन को ठण्डे-शुष्क स्थानों पर भण्डारित करते हैं।

आंवले का अचार

आवश्यक सामग्री—आंवला—1 किग्रा, नमक—150 ग्राम, राई—40 ग्राम, मिर्च—30 ग्राम, हल्दी, मैंथी, सौंफ, गर्म मसाला—प्रत्येक 20-20 ग्राम, सरसो का तेल—300 मिली.।

बनाने की विधि स्वस्थ एवं पूर्ण विकसित फल लेकर ताजे पानी में धोकर साफ करते हैं। फलों को कुछ समय तक गर्म पानी मे रखकर ब्लांचिंग करके छाया

में सुखा देते हैं। सरसों के तेल में सभी मसाले डालकर गर्म करने के बाद आंवले तथा नमक डालकर थोड़ी समय के लिए पकाकर थोड़ा ठण्डा होने के बाद बर्तन में भर देते हैं। अचार को 4-5 दिन धूप में रखें तथा समय-समय पर हिलाते रहते है। अचार को ठण्डे-शुष्क स्थानों पर भण्डारित करते है।

मिश्रित शाकों का अचार

सामग्री—फूल गोभी के टुकड़े–500 ग्राम, शलजम के टुकड़े–250 ग्राम, गाजर के टुकड़े–250 ग्राम, प्याज–100 ग्राम, अदरक–50 ग्राम, लहसुन–20 ग्राम, मिर्च पिसी–20 ग्राम, गर्म मसाला–30 ग्राम, राई–30 ग्राम, नमक–75 ग्राम, गुड़–200 ग्राम, सरसों का तेल–250 मि.ली, सिरका–10 मि.ली।

बनाने की विधि—पूर्ण विकसित साफ फूलगोभी, लाल गाजर और अच्छी किस्म की शलजम लेते हैं। इनको अच्छी तरह धो लेते हैं। फूल गोभी को टुकड़ों में काटते हैं। गाजर को धोने के बाद गोल टुकड़े तथा शलजम के टुकड़े कर लेते हैं। इन सभी को कुछ मिनट गर्म पानी में रखकर ब्लांचिंग करके, बाहर निकालकर कटहरा करते हैं, सभी मसालों को अच्छी तरह से पीसकर, तेल में भूनकर प्याज, अदरक व लहसुन मिलाते हैं। इसमें गुड़ मिलाकर घुलने तक गर्म करते हैं।

सम्पूर्ण सामग्री में ब्लांचिंग की गई सब्जियों को अच्छी तरह मिलाते हैं। सिरका मिलाकर बर्तन में भरकर 3–4 दिन धूप में रखते हैं तथा समय-समय पर हिलाते रहते हैं। बर्तन का ढक्कन बन्द करके भण्डारण करते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. अचार की परिभाषा कीजिए? अचार बनाने की सामान्य प्रक्रिया बताइए।
2. 5 कि.ग्रा. नीबू का मसालेदार अचार बनाने की विधि लिखिए?
3. विभिन्न शाकों का मिश्रित अचार किस प्रकार बनाते हैं? लिखिए।
4. अचार बनाने में विभिन्न सामग्री का क्या महत्व है? बताइए।
5. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—
   (अ) विभिन्न अचार।
   (ब) अचार का महत्व।
   (स) सिरका-एसिटिक अम्ल।

—